

A torch to life style which leads to enlightenment

जैव जीवन शैली

मुनि मजितप्रभसागर

प्रिय शिष्य मुनि
मनितप्रभ ने
संघ को जैन
जीवन शैली
के रूप में एक
अनूठा उपहार
दिया है। यह
ग्रन्थ जैन धर्म



दर्शन के परिप्रेक्ष्य में आचार-विहार,
आहार, जाप आदि आवश्यक विषयों
को अपने आप में समेटे हुए है। इसमें
धर्म दर्शन की गूढ़ पंक्तियों को अत्यन्त
सरलता के साथ समझाया गया है। यह
जैन धर्म की कुंजी है। अपने अध्ययन,
स्वाध्याय और संयम-क्रियाओं की
नियमितता के साथ साथ लेखन की
प्रवृत्ति में निरन्तरता बनाये रखना,
मुनि मनित के अप्रमत्त योग की अनूठी
विशेषता है। सर्जन उसका स्वाध्याय है।
उसकी प्रवृत्ति में निवृत्ति की प्रेरणा है।
कामना है कि उसके पुरुषार्थ का
परिणाम संघ को निरन्तर प्राप्त होता
रहे।

मणिप्रभसागर



जैन जीवन शैली
अपने आप में
सम्पूर्ण ग्रन्थ
है। इसमें किसी
एक विषय की
नहीं अपितु
सम्पूर्ण जीवन
की मीमांसा की

गयी है, जो जीवन जीने की कला को
नया निखार दे, आचार में संस्कार के
रंग भर दे, बोलने- चालने का ढंग
सिखा दे। जैन दर्शन और जीवन के
प्रति बेहतरीन नजरिया देने वाली इस
अद्वितीय पुस्तक के लेखक आत्मीय
बंधु मुनि श्री मनितप्रभसागरजीम. ढेर
सारी बधाईयों के पात्र है। शीघ्र ही इस
ग्रन्थ का द्वितीय खण्ड प्रकाशित हो,
इसी प्रतीक्षा में... !

साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री

*Right Path towards basic life,
Rather than glamorous life style.*

जैन जीवन शैली



*Business Management से पहले कीजिये
Life Management*

मुनि मनितप्रभासागर

जहाज मंदिर प्रकाशन पुष्प

138

सार्थक जीवन की ओर बढ़ते कदम
अपने पास रखिये हरदम
JAIN LIFE STYLE



आशी :

पू. उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.

लेखन :

मुनि मनितप्रभसागर

संपादन :

पू. साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.

प्रति : 1000 (2012)
2000 (2012)

प्रिंटिंग मूल्य : 130 रुपये

विक्रय मूल्य : 100 रुपये (पुनः प्रकाशनार्थ)

प्राप्ति स्थल : श्री जिनकान्तिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट
जहाज मन्दिर
माण्डवला-343042 (जालोर-राज.)
फोन : 02973-256107

समर्पण

आत्म-भूमि में संस्कारों का बीजारोपण किया जिन्होंने,
जीवन-प्रतिमा को साधना की छैनी से तराशा जिन्होंने,
मोह छोड़कर संयम-पथ की आज्ञा दी जिन्होंने,

उन्...

परम आदरणीय

पिताश्री

बाबूलालजी लूंकड़

एवं

मातुश्री

सौ. कमलादेवी लूंकड़

को

सादर

मुनि मनितप्रभासागर

जब कभी आप अकेलापन महसूस कर रहे हो :-

- आवास में अथवा प्रवास में
- उत्सव में अथवा उद्यान में
- परिवार में अथवा बाजार में
- यात्रा में अथवा मित्रों के बीच

तब आपके अकेलेपन और उदासी को बांट लेगी

JAIN LIFE STYLE

- जो जीवन को दे सही दिशा !
- मस्तिष्क को दे सकारात्मक चिन्तन !
- होठों पर सजा दे सुन्दर मुस्कान !

बाल, युवा और वृद्ध
सभी के लिये उपयोगी,
एक अनूठा-मीठा उपहार ... !

इस *Life Style* की *Sweet Smile* को
हरदम अपने पास रखिये !

रखिये तो पढ़िये भी सही ! पढ़िये तो समझिये भी सही !
समझाने - समझाने के साथ जीवन में उतारिये भी सही !

अर्थ सौजन्य

पूजनीया बहिन म.

साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा.

की सुशिष्या

पू. साध्वी श्री नीलांजनाश्रीजी म.सा.

पू. साध्वी श्री दीप्तिप्रज्ञाश्रीजी म.सा.

पू. साध्वी श्री विभाजंनश्रीजी म.सा.

के शासन प्रभावक

चातुर्मास (2069) के उपलक्ष में उनकी प्रेरणा से

बाड़मेर जैन समाज भवन

10 वीं ए रोड़, सरदारपुरा

जोधपुर - 343042 (राज.)

कृपया

- ॥ पुस्तक को जमीन पर न रखें ।
- ॥ पुस्तक को फाड़े-बिगाड़े नहीं ।
- ॥ पुस्तक का झूठे मुँह स्वाध्याय न करें ।
- ॥ पुस्तक को झूठे व गंदे हाथ न लगायें ।
- ॥ पुस्तक को रद्दी में न बेचें ।
- ॥ पुस्तक का दुरुपयोग न करें ।
- ॥ पुस्तक के प्रति सदैव श्रद्धाशील रहे।

सूचना

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन ज्ञान-खाते की राशि से हुआ है अतः मूल्य चुकाकर ही श्रावक-श्राविका इसका उपयोग करें, अन्यथा ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है ।

हमारे प्रकाशन

प्रवचन साहित्य

उठ जाग मुसाफिर भोर भई	(अप्राप्य)
अमर भये ना मरेंगे	(अप्राप्य)
बीती रजनी जाग जाग	(अप्राप्य)
पाथेय / आचार्य जिनकान्तिसागरसूरि	15 रुपये
अनुगूंज / आचार्य जिनकान्तिसागरसूरि	30 रुपये
मपि मंथन / मणिप्रभसागर	30 रुपये
जागरण / मणिप्रभसागर	30 रुपये
विद्युत् तरंगें / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभा	30 रुपये
नवप्रभात / मणिप्रभसागर	25 रुपये
अहं कोऽस्मि / मणिप्रभसागर	5 रुपये
वक्त की आवाज / मणिप्रभसागर	5 रुपये
मन के घोड़े की थामे लगाम / मणिप्रभसागर	5 रुपये
जैन धर्म और विज्ञान / मणिप्रभसागर	5 रुपये
प्रवाह (खण्ड-1) / मुनि मनितप्रभसागर	50 रुपये
प्रवाह (खण्ड-2) / मुनि मनितप्रभसागर	50 रुपये
पूज्य उपाध्याय श्री हैदराबाद चातुर्मास के संपूर्ण प्रवचन डीवीडी	100 रुपये
पर्युषण प्रवचन सीडी	50 रुपये

काव्य साहित्य

चिंतन चक्र	(अप्राप्य)
अमीझरणा	(अप्राप्य)
पूजन सुधा	(अप्राप्य)
वंदना	(अप्राप्य)
बज उठी बांसुरी	(अप्राप्य)
समर्पण	(अप्राप्य)

चौबीशी	(अप्राप्य)
शत्रुंजय स्तवनावली	(अप्राप्य)
जय सिद्धाचल	(अप्राप्य)
तीर्थकर तारणहार रे	(अप्राप्य)
संगीत के स्वर	(अप्राप्य)
स्तुति स्तवन सज्जाय संग्रह	(अप्राप्य)
ऋषिदत्ता रास / मणिप्रभसागर	10 रुपये
मलयसुंदरी रास / मणिप्रभसागर	20 रुपये
पूजन वाटिका / मणिप्रभसागर	50 रुपये
नाच उठा मन मोर / मणिप्रभसागर	40 रुपये
सुधारस / मणिप्रभसागर	10 रुपये
प्रतिध्वनि / मणिप्रभसागर	10 रुपये
पल दो पल / मणिप्रभसागर	5 रुपये

कथा साहित्य

राही और रास्ता	(अप्राप्य)
अधूरा सपना	(अप्राप्य)
इनसे शिक्षा लो	(अप्राप्य)
दिशा बोध	(अप्राप्य)
गुरुदेव की कहानियाँ भाग - 1 / मणिप्रभसागर	20 रुपये
गुरुदेव की कहानियाँ भाग - 2 / मणिप्रभसागर	20 रुपये
भीगी भीगी खुशबू / विद्युत्प्रभाश्री	20 रुपये
जटाशंकर / मणिप्रभसागर	25 रुपये
सेठ श्री मोतीशा / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभा	60 रुपये
खुशबू कहानियों की / मुनि मनितप्रभसागर	80 रुपये
प्रिय कहानियाँ / मुनि मनितप्रभसागर	20 रुपये
मधुर कहानियाँ / मुनि मनितप्रभसागर	20 रुपये
दिव्य कथा किरण / साध्वी विश्वज्योतिश्री	20 रुपये

इतिहास

दादा चित्र संपुट	(अप्राप्य)
नाकोड़ा तीर्थ का इतिहास	(अप्राप्य)
अनुभूति अभिव्यक्ति	(अप्राप्य)

क्षमाकल्याण चरित्रम्	(अप्राप्य)
करुणामयी माँ	(अप्राप्य)
जैन तीर्थ परिचायिका	100 रुपये
तस्मै श्री गुरुवे नमः / मणिप्रभसागर	50 रुपये
गुरुदेव / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभा	30 रुपये
कुशल गुरुदेव / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभा	30 रुपये
जहाज मंदिर का इतिहास / मणिप्रभसागर	5 रुपये
गच्छ गौरव गाथा / मुनि मनितप्रभसागर	20 रुपये

आवश्यक सूत्र

पंच प्रतिक्रमण विधि सहित	50 रुपये
पंच प्रतिक्रमण अर्थ सहित	80 रुपये
पंच प्रतिक्रमण सूत्र	20 रुपये
दो प्रतिक्रमण सूत्र	10 रुपये
दो प्रतिक्रमण विधि सहित	भेंट
दो प्रतिक्रमण सूत्र अंग्रेजी / अनु. मुनि मनितप्रभसागर	30 रुपये

तत्त्वज्ञान

प्यासा कंठ मीठा पानी / मुनि मनितप्रभसागर	200 रुपये
जीव विचार प्रकरण सार्थ / मुनि मनितप्रभसागर	50 रुपये
जीव विचार प्रश्नोत्तरी / मुनि मनितप्रभसागर	50 रुपये
नवतत्त्व प्रकरण सार्थ / साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री	40 रुपये
नवतत्त्व प्रकरण प्रश्नोत्तरी / साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री	60 रुपये
चैत्यवंदन भाष्य सार्थ / साध्वी विज्ञांजनाश्री	50 रुपये
प्रत्याख्यान भाष्य सार्थ-प्रश्नोत्तरी / मुनि मनितप्रभसागर	80 रुपये
प्रथम कर्मग्रंथ सार्थ / मुनि मनितप्रभसागर	50 रुपये
प्रथम कर्मग्रंथ प्रश्नोत्तरी / मुनि मनितप्रभसागर	50 रुपये
द्वितीय कर्मग्रंथ सार्थ / साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री	100 रुपये
दण्डक प्रकरण सार्थ-प्रश्नोत्तरी / मुनि मनितप्रभसागर	90 रुपये
दण्डक प्रकरण सार्थ-प्रश्नोत्तरी / साध्वी प्रियस्नेहांजनाश्री	60 रुपये
जैन जीवन शैली / मुनि मनितप्रभसागर	100 रुपये
प्रीत की रीत / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभा	20 रुपये
ज्ञानसार अर्थ (पद्यानुवाद) / मणिप्रभसागर	40 रुपये
स्वाध्याय माला / संकलन	30 रुपये
संस्कृत चैत्यवंदन स्तुति संग्रह / संकलन	10 रुपये
प्रीत प्रभु से कीजिये / साध्वी विज्ञांजना श्री	5 रुपये

शोध प्रबन्ध

द्रव्य विज्ञान / साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री	50 रुपये
सूत्रकृतांग का दार्शनिक अध्ययन / साध्वी डॉ. नीलांजनाश्री	50 रुपये

विविध

विहार डायरी / मणिप्रभसागर	80 रुपये
स्तोत्र वाटिका / संकलन	20 रुपये
प्रव्रज्या योग विधि / सं. मणिप्रभसागर	30 रुपये
विज्ञान के आलोक में जैन धर्म / डॉ. एम. आर. गेलडा	50 रुपये
दीक्षा रंगशाला (भाग 1 से 8) / मिश्रीमल बोथरा	20 रुपये प्रत्येक
सुप्रभातम् / संकलन	भेंट
भव आलोचना / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
श्रमण आलोचना / मुनि मनितप्रभसागर	भेंट
क्षमापना / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
मिच्छामि दुक्कडम् / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
मिती मे सव्वभूएसु / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
खामेमि सव्व जीवे / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
खमिअव्वं खमाविअव्वं / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
खमतखामणा / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
मिथ्यादुष्कृतम् / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
खमाऊँ सा / मुनि मनितप्रभसागर	5 रुपये
लाईफ मेनेजमेन्ट / मुनि मनितप्रभसागर	10 रुपये
जहाज मंदिर पत्रिका का मासिक – प्रकाशन	
पंचांग का प्रतिवर्ष प्रकाशन	

प्राप्ति स्थल :

व्यवस्थापक, श्री जिनकांतिसागरसूरि स्मारक ट्रस्ट
जहाज मंदिर, मांडवला-343042, जिला-जालोर (राजस्थान)
दूरभाष : 02973-256107
व्यवस्थापक, श्री जिन हरि विहार धर्मशाला
तलेटी रोड़, पालीताणा-364270 (गुजरात)
दूरभाष : 02848-252653

अनुक्रमणिका

1. मंगलम्
2. अभिनन्दनम्
3. स्वकथनम्

जैन जीवन शैली

(जैन आराधना मीमांसा)

1. नवकार : जिसकी महिमा अपरम्पार 07
2. तीर्थकर और समवसरण 12
3. चौबीस तीर्थकर एवं महाश्रमण महावीर 15
4. त्रिषष्टिशलाका पुरुषों का परिचय 18
5. सिद्ध परमात्मा का स्वरूप 20
6. मुनि जीवन की पहचान 23
7. पंच परमेष्ठि के रंगों का वैज्ञानिक विश्लेषण 32

(जैन क्रिया मीमांसा)

8. अतिक्रमण का प्रतिक्रमण 37
9. समत्व की उपासना : सामायिक 41
10. चतुर्विंशतिस्तव और वंदनक 44
11. पापों की आलोचना : प्रतिक्रमण 45
12. संवर की साधना : प्रत्याख्यान 47

(जैन तत्त्व मीमांसा)

13. तत्त्वत्रयी : सुदेव, सुगुरु, सुधर्म 53
14. रत्नत्रयी : सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र 55
15. अष्ट प्रवचन माता : समिति और गुप्ति 57
16. नवतत्त्व : जिनवाणी का सार 59

जैन जीव मीमांसा

- | | |
|-----------------------------------|----|
| 17. निगोद से मोक्ष की यात्रा | 65 |
| 18. जीव सृष्टि का परिचय | 67 |
| 19. नरक : दुःखों का महासागर | 73 |
| 20. देवलोक : सुख का कल्पवृक्ष | 76 |
| 21. प्राण एवं पर्याप्ति का विवेचन | 79 |

जैन दर्शन मीमांसा

- | | |
|-----------------------------------|----|
| 22. जैन धर्म क्या है? | 83 |
| 23. जगत क्या है? | 86 |
| 24. उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी | 89 |
| 25. लोक का स्वरूप | 96 |
| 26. जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त | 98 |

जैन कर्म मीमांसा

- | | |
|----------------------------------|-----|
| 27. जैन कर्मवाद | 103 |
| 28. कर्म के भेद व प्रभेद | 109 |
| 29. कर्म का फल | 115 |
| 30. बंध के कारण : मुक्ति के उपाय | 117 |
| 31. चौदह गुणस्थानक | 122 |

जैन विचार मीमांसा

- | | |
|---|-----|
| 32. मिथ्यात्व का त्याग : सम्यक्त्व का राग | 125 |
| 33. संज्ञा का शमन | 131 |
| 34. कषाय : जन्म-मरण की आय | 133 |
| 35. विकथा की विकटता | 135 |
| 36. लेश्या-विज्ञान | 137 |
| 37. सम्बोधि के सोपान | 140 |

जैन आचार मीमांसा

38. प्रातः जागरण विधि	145
39. जिन मंदिर दर्शन एवं पूजन विधि	148
40. कैसे सुने प्रवचन?	160
41. उपाश्रय में कैसा हो आचरण हमारा?	163
42. सुपात्रदान की विधि	165
43. श्रावक जीवन की साधना	173
44. धर्म के चार प्रकार	177
45. तप के बारह भेद	181
46. रात्रि शयन से पूर्व आत्म-चिन्तन	183

जैन आहार मीमांसा

47. कैसे करें भोजन?	187
48. अभक्ष्य का भक्षण : बड़े जन्म-मरण	191
49. सप्त व्यसन : नरक का द्वार	191
50. द्विद्वल अर्थात् पापों का दल दल	196
51. रात्रि भोजन : दुर्गति का कारण	199
52. चलित रस का करें निषेध	202
53. अनन्तकाय का भोजन : अशाता का सर्जन	204
54. मजेदार (?) पदार्थों का परिहार	207
55. जितनी जयणा, उतनी शाता	212

जैन जीवन मीमांसा

56. बने हमारा जीवन... खुशियों का मधुबन	217
57. समझ का उपयोग : शान्ति के प्रयोग	220
58. नीति-न्याय से करें व्यवसाय	224
59. कैसा हो घर-गाँव हमारा?	228
60. मृत्यु कैसे बने महोत्सव?	233

जैन पर्व मीमांसा

- | | |
|------------------------------------|-----|
| 61. जैन पर्व—साधना | 237 |
| 62. पर्व तिथि में करणीय एवं अकरणीय | 239 |
| 63. त्यौहार कैसे मनाये? | 241 |

जैन इतिहास मीमांसा

- | | |
|----------------------------------|-----|
| 64. आत्म—कल्याणी : जिनेश्वर वाणी | 245 |
| 65. जिनशासन के चमकते सितारे | 252 |
| 66. खरतरगच्छ का स्वर्णिम इतिहास | 254 |

जैन ध्यान मीमांसा

- | | |
|----------------------------|-----|
| 67. जाप से कटते हैं पाप | 265 |
| 68. माला—जाप के प्रयोग | 269 |
| 69. हस्तांगुली जाप | 272 |
| 70. ध्यान का विधान | 279 |
| 71. नवकार मंत्र की साधना | 284 |
| 72. नवग्रह दोष निवारण विधि | 289 |

स्वास्थ्य मीमांसा

- | | |
|-----------------------------------|-----|
| 73. प्राणायाम | 293 |
| 74. मुद्रा—विज्ञान | 297 |
| 75. ध्यान—आसन | 305 |
| 76. बन्ध, नाडी और चक्रों का वर्णन | 310 |

परिशिष्ट

पारिभाषिक शब्दकोष

मंगलम्

जैन दर्शन अपने आप में जीवन जीने की कला है। इसमें अतीत, वर्तमान और भविष्य का संतुलन है। जो व्यक्ति जैन दर्शन का रहस्य समझ लेता है, वह व्यक्ति वर्तमान में दुख मिलने पर भी दुखी नहीं हो सकता और सुख मिलने पर उछल भी नहीं सकता। अद्भुत और अनूठा है परमात्मा का दर्शन! यह अतीत का प्रायश्चित्त, वर्तमान का आनंद और भविष्य का महोत्सव है।

जैन दर्शन के रहस्य को समझाने वाले ग्रन्थ बहुत प्रकाशित हुए हैं। पर एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता सदा महसूस की जा रही थी, जो सरलता से जैन दर्शन के समस्त पहलुओं को समझा सके।

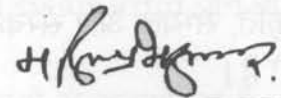
प्रिय मुनि मनीतप्रभ ने विषयबद्ध इस ग्रन्थ की रचना करके एक कमी की पूर्ति तो की ही है, समाज को जैसे एक उपहार अर्पण किया है।

अपनी विशिष्ट दृढ़ संयम साधना और स्वाध्याय का वातावरण... लम्बे और थका देने वाले विहार... फिर भी वह लेखन के लिये भी पर्याप्त समय निकाल लेता है, यह अपने आप में अनुमोदनीय अचरज है।

ब्यावर चातुर्मास में प्रारंभ इस ग्रन्थ को अगले तलोदा चातुर्मास से पहले ही पूर्ण कर लिया। अल्पकाल में ही उसने तत्त्वज्ञान आदि विषयों पर उत्कृष्ट ग्रन्थों की शृंखला प्रस्तुत कर दी है।

उसके वर्तमान से भविष्य का यथार्थ अनुमान लगाया जा सकता है।

मैं उसके उज्ज्वल भविष्य के प्रति आशान्वित हूँ। निश्चित ही यह ग्रन्थ सभी के लिये समादरणीय बनेगा।



मणिप्रभसागर

अभिन्नन्दनम्

राग-द्वेष का जिन्होंने सर्वथा विलय कर दिया, वे 'जिन' हैं और उनके द्वारा प्ररूपित / प्रतिपादित आचार-विचार के सिद्धांतों को जो अपने जीवन-व्यवहार में क्रियान्वित करता है, वह 'जैन' है। कोई व्यक्ति केवल जन्म से जैन होता है, तो कोई व्यक्ति केवल कर्म से। कोई जन्म और कर्म, दोनों अपेक्षा से जैन होता है। केवल जन्म से जैन होना सद्भाग्य का परिणाम है तो केवल कर्म से जैन होना सद्पुरुषार्थ का परिणाम है। जहाँ जन्म तथा कर्म, उभयापेक्षया व्यक्ति जैनत्व की गरिमा से परिपूर्ण बनता है, वह अनंत पुण्य का परिणाम है।

जीवन जीना एक बात है। कैसे व कैसा जीवन जीना, यह सर्वथा भिन्न बात है। जीवन तो, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी भी जीते हैं, पर आज तक उनके जीवन-लक्ष्य-निर्धारण अथवा जीवन शैली पर न कोई समीक्षा हुई, न नीति-नियम बने, क्योंकि पशु में न ज्ञान है, न विवेक है, न धर्म। मनुष्य का जीवन सर्वोत्कृष्ट जीवन है, क्योंकि स्व के साथ-साथ संपूर्ण सृष्टि का हित / कल्याण साधने की क्षमता केवल मानव में ही संभव है। आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन, ये चारों ही संज्ञाएँ मनुष्य तथा पशु में समान रूप से पाई जाती हैं। केवल विवेक एवं धर्म दृष्टि ही मनुष्य जीवन की विशिष्टता है, अन्यथा मनुष्य और पशु के जीवन में कोई अंतर नहीं रह जाता।

मनुष्य जीवन तो जीता है पर जीवन क्यों जीये, कैसे जीये? आदि प्रश्नों पर कभी विचार नहीं करता। पर कुछ ऐसे महापुरुष होते हैं, जो निश्चित उद्देश्य के साथ विशिष्ट जीवन शैली से जीते हैं। ऐसे व्यक्तियों का जीवन आने वाली कई सदियों के लिए मील का पत्थर, आदर्श का दीप व प्रेरणा का स्तम्भ बन जाता है। ऐसे महापुरुष केवल समय को नहीं जीते, उनके जीवन में जीती-जागती संस्कृति, सभ्यता और संस्कारों की परंपरा होती है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी संक्रांत होती रहती है।

जैन धर्म अपने आप में बहुत ही विलक्षण है। चूंकि यह धर्म आप्त पुरुषों द्वारा प्रणीत है अतः इसका आध्यात्मिक पक्ष जितना मजबूत और सुदृढ़ है, वैज्ञानिक पक्ष भी उतना ही युक्तियुक्त और तर्कसंगत है। इस धर्म का अपना दर्शन है; अपना

विज्ञान है, अपनी तकनीक है और अपनी जीवन शैली है। जैन धर्म के प्रत्येक सिद्धांत में अहिंसा और करुणा की पावन गंगोत्री बहती है। इस अपेक्षा से इसे 'अहिंसा धर्म' भी कहा जा सकता है। अहिंसा का सूक्ष्म विश्लेषण एवं आचरण ही जैन धर्म को जनधर्म के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

अहिंसा प्राणीमात्र के लिये क्षेमंकरी है। अहिंसा समस्त सद्गुणों एवं शक्तियों की अधिष्ठात्री है। परंतु वह हमारे जीवन का अंग कैसे बने, हमारे आचरण का विषय कैसे बने, हम अपना जीवन अहिंसक शैली से कैसे जीयें, ये प्रश्न बहुत ही विचारणीय हैं।

जीवन और जीवन शैली, दो भिन्न तत्त्व हैं। जो जीया जाता है, वह जीवन है परंतु जिस तरीके से जीया जाता है, वह जीवन शैली है। कोई भी कार्य यदि विधिवत्, निश्चित शैली के साथ किया जाय तो उसका परिणाम बहुत शुभ और सुखद आता है। जीवन जीने की कला ही एक जीवन शैली है, जो व्यक्ति के चिंतन और आचरण दोनों को प्रभावित करती है। जीवन शैली कोई जादू नहीं है कि डंडा घुमाया और सब कुछ बदल जाये। यह एक पद्धति है, एक प्रयोग है और एक अनूठा पुरुषार्थ है।

चिंतन के झरोखे से एक प्रश्न उभरता है— क्या भगवान महावीर के युग में कोई निश्चित जीवन शैली थी? इसका उत्तर सकारात्मक होगा। बारह व्रत श्रावक की जीवन शैली का प्रारूप है। उस शैली से जीने वाले श्रावकों की जीवन—गाथा अनेक शास्त्रों में गुंफित है। परमात्मा महावीर के प्रतिमाधारी आनंदादि दस विशिष्ट श्रावकों की व्रत—साधना उपासकदशा नामक अंग आगम में विस्तृत रूप से वर्णित है।

आगम वर्णित श्रावक जीवन शैली गंभीर व एकनिष्ठ साधना से परिपूर्ण है। वर्तमान में इतनी कठोर एवं चुस्त जीवन चर्या यद्यपि संभव नहीं है तथापि प्रशस्त जीवन जीने के लिये धार्मिक व व्यावहारिक अथवा आध्यात्मिक व वैज्ञानिक मूल्यों को साथ—साथ जीना जरूरी है। इसी बात को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत जैन जीवन शैली ग्रंथ का सर्जन किया गया है।

'जैन जीवन शैली' ग्रंथ पूर्णतया आगमिक सिद्धांतों से अनुप्राणित है। इसे जैन दर्शन का संक्षेप, सार—तत्त्व कहा जाये तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। जैनत्व की आभा से परिपूर्ण बनने के लिये प्रस्तुत पुस्तक अपने आप में एक

संकलन कोष है। इसमें नवकार मंत्र की मीमांसा से लेकर उन विभिन्न पहलुओं की सहज/सरल भाषा में विवेचना की गयी है, जो व्यक्ति को धार्मिक बनाने के साथ-साथ पारिवारिक, सामाजिक, व्यावहारिक भी बनाते हैं।

आर्ट ऑफ लिविंग के रूप में अध्ययन करते हुए हम पाते हैं कि जैन जीवन शैली वैयक्तिक जीवन जीने की कला है। इससे मनुष्य व्यक्तिगत जीवन को कलात्मक, सुसंस्कृत एवं गुणात्मक रूप से जीता हुआ आत्म-विकास के अनेक सोपानों को तय कर विकास की पराकाष्ठा पर भी पहुँच जाता है।

जैन जीवन शैली में व्यसनवर्जित है, मांसाहार त्याज्य है। वैज्ञानिक शोधों से स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य को सुंदर, स्वस्थ एवं दीर्घायु रहना है तो तामसिक और राजसिक आहार छोड़ना ही होगा। फलस्वरूप आज पाश्चात्यवर्ती देशों में शाकाहारियों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है। जैन जीवन पद्धति में सूर्यास्त से पूर्व ही भोजन तथा शुद्ध जल ग्रहण का विधान है। आज विज्ञान भी सहमति दे रहा है कि सूर्य की रोशनी में ग्रहण किया गया आहार सुपाच्य एवं स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। रात्रिभोजन से कब्ज, गैस, आलस्य, अनिद्रा, मोटापा, यहाँ तक कि हृदय रोग का भी खतरा है। एक बार प्रयोग के तौर पर आप इन नियमों, व्रतों को अपना कर देखें। चमत्कार स्वतः जीवन में घटित होगा। स्वास्थ्य सुरक्षा के साथ-साथ आत्म सुरक्षा देने वाले ये नियम हमारे जीवन का कायाकल्प कर देंगे।

जैन जीवन शैली ग्रंथ में वर्णित एक-एक विषय हमारे जीवन को नया पाथेय, नया प्रकाश, नयी प्रेरणा और नयी ऊर्जा देता है। इसमें आध्यात्मिक चेतना के साथ-साथ दर्शन, तत्व, कर्म, इतिहास, आचार, विचार, आहार, ध्यान, योग, स्वास्थ्य आदि अनेक बिंदुओं का भी विमर्श हुआ है, जो व्यक्ति के तन-मन-जीवन को आराधना, साधना, संयम, प्रेम, मैत्री, करुणा आदि सद्गुणों की खुशबू से सुवासित एवं संस्कारित करते हैं। मन स्वस्थ है तो शरीर स्वस्थ है। शरीर की स्वस्थता धर्मसाधना का प्रमुख आधार है। वर्तमान के अर्थप्रधान युग में योगा सेंटर, प्राणायाम, ध्यान एवं आर्ट ऑफ लिविंग के प्रति लोगों का विशेष आकर्षण बढ़ा है। दौडती - भागती जिंदगी को अल्पकालीन सुकून देने वाले ये योगा केन्द्र शरीर को स्लिम बना सकते हैं परंतु आहार, विचार, व्यवहार संयम के बिना परिणाम बहुत दूरगामी नहीं हो सकते।

आधुनिक बनने की होड में आज की युवा पीढी नाईट क्लब, किटि पार्टी,

फाईव स्टार होटल, ब्यूटी पार्लर, शॉपिंग, ड्रिंकिंग आदि पैमानों से अपने जीवन का स्तर तय कर रही है। इस भोग-उपभोग की संस्कृति से जीवन मूल्यों का तेजी से ह्रास हुआ है। बाह्य दिखावट और सजावट से आंतरिक सौन्दर्य को न केवल कुचला गया है अपितु उसकी आभा की गिरावट में दिनोंदिन इजाफा हुआ है। स्टेण्डर्ड ऑफ लाईफ की बजाय स्टेण्डर्ड ऑफ लिविंग की मानसिकता ने हमारे उजले संस्कारों की खुल्लेआम होली जलाई है। ऐसे में भगवान महावीर के जीवन-मूल्य और जैनत्व के संस्कार कैसे और कहाँ जीवंत रख सकेंगे? एक यक्ष प्रश्न है।

जैन-जीवन शैली में उन समस्त तथ्यों का सम्मेलन है, जो हमारे आचार-बिचार में संस्कारों को आज कर जीवन को परिष्कृत और सुसंस्कृत करते हैं।

‘विचारों को जो बांध दे रेखाओं में, उसे आचार कहते हैं।

रेखाओं में जो भर दे रंग, उसे संस्कार कहते हैं।।’

प्रज्ञाशील स्वाध्याय प्रेमी अनुज मुनि मनितप्रभसागरजी म. ने अथक पुरुषार्थ साधकर जन-जन के लिये उपयोगी इस ग्रंथरत्न का आलेखन किया है। उनकी परिष्कृत लेखनी से जैनत्व से संबंधित कोई भी विषय इस पुस्तक में अछूता नहीं रहा है। प्रत्येक बिंदु पर प्रश्नोत्तरी शैली में सधी हुई भाषा में उन्होंने बहुत सहज / सरल विवेचन प्रस्तुत किया है। उन्होंने इससे पूर्व भी अनेक विषयों पर विस्तृत लेखन किया है। अब तो उन्हें किसी भी विषय पर लिखने की जैसे महारत हासिल हो गयी है। मेरा हृदय भाव विभोर है अपने अनुज मुनि की स्वाध्याय प्रियता एवं लेखन पटुता को निहारकर। उनकी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना सिद्धत्व प्राप्ति तक निरंतर इसी प्रकार ऊँचाईयों का स्पर्श करती रहें।

प्रस्तुत ‘जैन जीवन शैली’ ग्रंथ समग्र मानव समाज के लिये पगडंडी बने, जिस पर चलकर प्रत्येक व्यक्ति ‘जैनत्व’ की गरिमा से अभिषिक्त होकर ‘जिनत्व’ की महिमा का वरण कर सके। जैन धर्म को विश्व धर्म की अर्हता तभी मिल सकेगी, जब ऐसी विशिष्ट जीवन शैली विश्व मानव की जीवन शैली बनेगी। यह ग्रंथराज इसी दिशा में अपने कदम बढ़ाये।

इसी शुभभावना के साथ.....

साध्वी नीलांजनाश्री

साध्वी नीलांजनाश्री

स्वकथनम्

जन्म और मृत्यु, जीवन के दो अभिन्न किनारे हैं। जन्म स्वर्णिम भविष्य की संभावनाओं भरी आहट है और मृत्यु जीवन का अंतिम आलेख।

जीवन का अपना एक सहज प्रवाह है। उस राँ में बहकर जीना महानता का सूचक नहीं हो सकता। सबसे हटकर, प्रवाह के विरोध में जाकर ही जीवन को स्वर्णिम दस्तावेज बनाया जा सकता है।

जीवन का अर्थ ही है— जानबूझकर प्रतिकूलता में जाना और प्रसन्नता को वैसा का वैसा बनाये रखना। कोरी अनुकूलता और सुखशीलता का जीवन सफलता का लक्षण नहीं हो सकता। उसे तो सामान्य पुरुष भी जी सकता है।

महान और विराट् व्यक्तित्व का लक्षण यदि सरल शब्दों में कहा जाये तो वे कार्य नहीं करना, जो सारी दुनिया करती है।

तो क्या खाना—पीना, उठना—बैठना, हँसना—रोना आदि क्रियाओं को छोड़ दिया जाये? नहीं ! मेरे कथन का अभिप्राय यह नहीं है, प्रत्युत उन प्रवृत्तियों को छोड़ने से है, जिनसे जीवन का पैमाना ही गिर जाये।

क्षमा, मृदुता, आत्म—निरीक्षण, समय—प्रबन्धन, सद्भावना, नैतिकता, ये वे पैमाने हैं जो जीवन को ऊँचा उठाते हैं और छल—कपट, संग्रह, स्वार्थ, अविश्वास जीवन को नीचे गिराने वाले पैमाने हैं।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे प्रसन्नता और प्रतिकूलता में जाकर के ही हुए हैं। सोने को चमकने के लिये अग्नि—परीक्षा से गुजरना ही होता है।

हम जन्म से अन्तिम श्वास तक मृगछोने की भाँति भौतिक सुखों के पीछे भागते हैं, महापुरुष उन्हें व्यर्थ और बोझ समझकर पहले ही छोड़ देते हैं।

हम जिन रास्तों को बीहड़, अनजान और दुर्गम समझकर छोड़ देते हैं, महापुरुष हजार कष्ट सहते हुए भी उस राह पर चल पड़ते हैं और अपने लक्ष्य को साध लेते हैं।

महावीर जन्म से महावीर नहीं थे। उन्होंने कठिनाइयों को झेला, कष्टों की आग में स्वयं को तपाया तभी तो निखरकर जगत के सम्मुख प्रस्तुत हुए और प्रेरणा की ऊँची मीनार बन गये।

जैन धर्म की यह मौलिक अवधारणा है कि व्यक्ति जो कुछ बनता है, अपने प्रयत्नों से बनता है। हाँ ! निमित्त कोई भी हो सकता है।

मनुष्य यदि प्रच्छन्न व सुषुप्त शक्तियों को जगाकर उनका सम्यक् नियोजन करे तो अवश्य ही सिद्धि के चरम शिखर को छू सकता है पर पुरुषार्थ तो स्वयं को ही करना पड़ेगा। कोई भी ईश्वर या पुरुष सिद्धि के द्वार नहीं खोल सकता।

वे रास्ता दिखा सकते हैं। चलना सीखा सकते हैं। रास्ते में उजाला कर सकते हैं पर चलना तो स्वयं को ही होगा। हम यदि आगे बढ़कर धक्का लगाये तो सफलता और शान्ति के द्वार स्वयमेव उदघाटित हो जाते हैं।

हमारा जीवन ठीक बांसुरी जैसा है। बांसुरी भीतर से रिक्त और शून्य होने पर भी अपूर्व माधुर्य और संगीत से परिपूर्ण है। यह तो बजाने वाले पर निर्भर करता है कि वह उससे सुरीली स्वरलहरियाँ छेड़ता है या शोर शराबा करता है।

जन्म से ज्यादा मूल्यवान जीवन है और जीवन से ज्यादा मूल्यवान जीवन—कला है। इसलिये जीवन की लम्बाई पर कम और गहराई पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिये।

जिन्दगी एक कहानी जैसी है। कहानी की लम्बाई नहीं अपितु उसकी सरसता और सजीवता विचारणीय होती है।

लम्बे समय तक धुआँ करने की बजाय अगरबत्ती बनकर थोड़ी देर सुगन्ध बिखेरना अच्छा है। मोमबत्ती थोड़ी देर ही जलती है पर उतना जलना भी सार्थक है क्योंकि प्रकाश तो फैलाती है। फूल ज्यादा देर नहीं खिलता पर कुछ समय के लिये ही सही, वातावरण को खुशनुमा तो बनाता है।

जयद्रथ की अपेक्षा अभिमन्यु ने और सोमिल की अपेक्षा गजसुकुमाल ने कम उम्र पायी थी फिर भी वे अपने श्रेष्ठ आचरण से आदर्श के स्तूप बन गये। इसलिये जीवन 'कितना जीये' इस सोच से 'कैसे जीये' यह सोच बेहतर है।

लम्बे जीवन की कोई अपेक्षा नहीं है। यदि छोटा पर अच्छा जीवन जीया जाये तो निश्चित ही अपनी क्षमताओं का उच्चतम प्रयोग करके श्रेष्ठताओं को साकार रूप दिया जा सकता है।

सच पूछिये तो व्यक्ति व्यवसाय प्रबन्धन से ज्यादा ध्यान यदि जीवन-प्रबन्धन पर दे और आकर्षक संभाषण शैली से ज्यादा ध्यान श्रेष्ठ जीवन-शैली पर दे तो अधिक सुखी हो सकता है - क्योंकि व्यवसाय-प्रबन्धन, सुन्दर संभाषण, नूतन परिधान-धारण से व्यक्ति सफल हो सकता है पर सुखी हो, यह जरूरी नहीं है जबकि जीवन और समय प्रबन्धन से व्यक्ति अवश्य ही सुखी हो सकता है और हर सुखी इंसान सफल व्यक्तित्व का निर्माता अवश्य होता है।

फटे हुए दूध से भी जब रसगुल्ला बनाया जा सकता है तो इस सर्वोत्तम मानव जीवन से सर्वश्रेष्ठ सत्ता को अवश्य ही उपलब्ध किया जा सकता है। बस ! जरूरत है जीवन को सुन्दरतम तरीके से जीने की।

मूल्य जीवन का नहीं, जीवन-शैली का होता है। मशीन को ठीक करने के लिये हथोड़ा लगाने का मूल्य एक रुपया है जबकि हथोड़ा कैसे और कहाँ लगाना, इसका मूल्य 999 रुपये हैं।

यह कला ही तो है तो अनगढ़ प्रस्तर को तराश कर उसे पूजनीय प्रतिमा बना देती है।

यह कला ही है जो शब्दों का समुचित संयोजन करके उसे मंत्र बना देती है।

यह जीवन कला ही तो है जो नश्वर जीवन में शाश्वत प्रभुता को प्रतिष्ठित करती है अन्यथा व्यक्ति दिन भर पशु की भाँति बोझ ढोता है और रोटी की खोज में जीवन को पूरा कर देता है।

किसी ने बहुत सुन्दर कहा है-

कला बहत्तर जगत में, जामे दो सरदार !

एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार ।।

शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति प्रथम कला है, मन और बुद्धि की इच्छाओं की पूर्ति मध्यम कला है एवं आध्यात्मिक विकास की कला उत्तम कला है।

यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि समस्त पदार्थों / सुविधाओं के उपयोग से अवगत होने पर भी व्यक्ति जीवन-कला से सर्वथा अनभिज्ञ है।

जब पानी, बिजली, धन का तनिक भी अपव्यय व्यक्ति को सह्य नहीं होता तब व्यर्थ जाती जिन्दगी को सार्थक बनाने की पहल क्यों नहीं होती ?

भौतिकता की अंधी दौड़ में सुख-शान्ति मिले, असंभव है। जिस सम्पदा की प्राप्ति में सिकन्दर ने जीवन पूरा कर दिया, उसके बदले एक पल भी नहीं मिला पाया

तो आखिर इस तुच्छ भौतिक सम्पदा का मूल्य क्या है? अतः बाह्य सम्पदा को बटोरने की बजाय जीवन के असली धन की ओर ध्यान दिया जाना चाहिये।

आज तक कोई भी व्यक्ति सौन्दर्य, सत्ता और समृद्धि के लिये नहीं पूजा गया। जो वंदनीय बने हैं, वे अपने जीवन की श्रेष्ठता, चिंतन की मौलिकता और आचरण की पवित्रता से ही बने हैं। फकीर होकर भी महावीर पूजे जा रहे हैं और ऋद्धिसम्पन्न होकर भी रावण फूँका जा रहा है। इसका कारण केवल और केवल प्रेरक जीवन और चिन्तन शैली ही है।

अपना जीवन इतना प्रेरक, सुन्दर और मधुर बना लो जिस पर आने वाली पीढ़ी कुछ लिख सके अथवा तो कुछ नया लिख जाओ जिसे पढ़कर लोग सुन्दर व मधुर जीवन की प्रेरणा ले सके। जीयो तो ऐसे जीयो कि मरते समय तुम्हारे होंठों पर हँसी और दुनिया की आँखों में आँसू हो।

“जैन जीवन शैली” जन से जैन और जैन से जिन बनने की क्रमिक साधना है।

जिनेश्वरों द्वारा प्रतिपादित “जैन जीवन शैली” की अपनी विशिष्टता है कि इसे कोई भी व्यवहार के धरातल पर जीता हुआ आत्मसात् कर सकता है। इसका कारण भी है—इस शैली में कहीं भी किसी का विरोध नहीं है, वैसे ही जैसे सागर छोटी-बड़ी, कड़वी-मीठी, हर धारा को स्वयं में समाविष्ट कर लेता है।

जिन्होंने राग-द्वेष का समूल क्षय करके जीवन विकास के चरम शिखर को छू लिया, वे जिन हैं और उनमें आस्थावान् जैन।

‘जैन’ शब्द किसी जाति, समूह और धर्म-पंथ का प्रतीक न होकर स्वसत्ता का स्वाभाविक दिग्दर्शन है।

परमात्मा महावीर आध्यात्मिक बाद में थे, व्यावहारिक पहले। भगवान बाद में थे, वैज्ञानिक पहले। उन्होंने उपदेश देने से पहले जीवन में उसे आत्मसात् किया, आत्म-मंथन करने के बाद जो अमृत पाया, वह जन-जन के बीच बांट दिया।

महाश्रमण महावीर आध्यात्मिक तो है ही, उनमें वैचारिक पवित्रता, सामाजिक एकता, पारिवारिक निष्ठा, व्यावसायिक नीतिमत्ता, शारीरिक स्वस्थता, सैद्धान्तिक वैज्ञानिकता, मानसिक एकाग्रता के सूत्रों की भी अनुगूँज है। यदि उन्हें ईमानदारी से जीवन में उतारा जाये तो व्यक्ति कभी भी अवसादग्रस्त और चिन्ताक्रान्त नहीं हो सकता।

परम श्रद्धेय आचार्य देव श्री जिनकान्तिसागरसूरीश्वरजी महाराज साहब के जन्म शताब्दी वर्ष (1968-2068) के पावन प्रसंग पर प्रकाशित होना इस ग्रन्थ के

लिये परम पुण्योदय का प्रतीक है। पूज्य आचार्यश्री के चरणों में मेरी वंदनाएँ सादर समर्पित हैं।

पूज्य गुरुदेव उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के चरणों में मैं सादर विनयावनत हूँ। उनके कृपापूर्ण वरदहस्त और वात्सल्य-सिक्त सानिध्य में अनेक कार्य सहज ही सम्पन्न हो जाते हैं। प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन उनकी कृपादृष्टि के बिना संभव नहीं था। उनके चरणों की छाँव तले बाह्य और आन्तरिक विकास के सोपान चढ़ते रहना ही काम्य है।

परम आदरणीया भगिनी साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म. का प्रस्तुत कार्य में महत्त्वपूर्ण अवदान रहा है। उनके पुरुषार्थ के बिना इस कार्य पर पूर्णता का कलश कैसे चढ़ता। उन्होंने अपनी उर्वर प्रज्ञा और तीक्ष्ण मेधा से इसे देखा, परखा, जांचा और आवश्यक संशोधन किये। उनका आत्मीयभाव अभिव्यक्ति का नहीं अपितु स्वानुभूति का विषय है।

परम आत्मीय मुमुक्षु गौतमजी बोथरा (बाड़मेर) का प्रूफ रीडिंग में महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा है। उनके समुज्ज्वल भविष्य की अपेक्षा रखता हूँ।

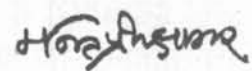
जिनके अनुरोध पर प्रस्तुत पुस्तक के लेखन का श्रीगणेश हुआ, उन ब्यावर निवासी श्री यशवंतजी रांका एवं जुगनू कांकरिया का भी अविस्मरणीय योगदान रहा है। उनके प्रति शुभकामनाएँ हैं।

प्रस्तुत लेखन में 'मुद्रा विज्ञान' की लगभग सामग्री मुद्रा विज्ञान पुस्तक से ली है एवं जिन आगमों, ग्रन्थों एवं पुस्तकों ने मेरे लेखन कार्य की राह आसान की, उस पाथेय-सामग्री के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञ हूँ।

प्रस्तुत प्रकाशन से प्रेरणा लेकर हम जीवन के इर्दगिर्द बिखरी हुई श्रेष्ठताओं का चयन करके अपनी जीवन कला को निखारे एवं स्वर्णिम, सुन्दर एवं समुज्ज्वल भविष्य के रचयिता बने। जैन-जीवन-शैली का यही आह्वान है।

प्रमादवश जिनवाणी विरुद्ध कुछ भी लिखा हो तो सादर क्षमाप्रार्थी हूँ।

मणि चरण रज



मुनि मनितप्रभसागर

मेरे हृदय के स्वर

मेरे जैन गुरु प्रेरणास्पद आदरणीय उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के पवित्र कर कमलों से मुझे 'जैन जीवन शैली' ग्रन्थ मिला। मैं स्वयं ऐसे ही ग्रन्थ की तलाश में था जिससे मुझे संक्षिप्त में जैन फलसफा समझ में आ जाये।

जैन तत्त्वज्ञान का विस्तृत दर्शन इस किताब ने मुझे करवाया है। सम्पूर्ण वाचन-मनन के पश्चात् मेरी ज्ञान के प्रति रुचि बढ़ी, अनेक प्रश्नों के उत्तर भी मिले और अनेक प्रश्नों के उत्तर जानने की उत्सुकता प्रकट हुई।

आदरणीय मुनि मनितप्रभसागरजी ने इस ग्रन्थराज में न सिर्फ जैन धर्म की दैनंदिन क्रियाओं को सरल एवं सुचारु ढंग से समझाया है अपितु हर क्रिया का हेतु व फल भी बताया है। वह भी इतनी सधी कलम से कि सामान्य श्रावक को भी आसानी से समझ में आ जाये।

आज हमारी पीढ़ी को मीमांसा बताना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। 'ऐसा क्यों?' इस सवाल के जवाब इस पुस्तक में मिल जाते हैं। मुनिश्री ने सुन्दर व सहज ढंग से दर्शन मीमांसा, कर्म मीमांसा, विचार मीमांसा, आचार मीमांसा, आहार मीमांसा आदि लिखे हैं। साथ में इन्होंने जैन तत्त्वज्ञान-दर्शन को अहिंसा, सत्य आदि मूल सिद्धांतों से जोड़ दिया है। इससे हमारी जीवन शैली जैन तत्त्वों से संलग्न हो जाती है।

जिस प्रकार हमारे न्यायदान क्षेत्र में न्याय का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये हमें दीवाणी प्रक्रिया संहिता (CPC) व भारतीय साक्ष्य अधिनियमों (Law of Evidence) की आवश्यक सीढ़ियाँ चढ़नी ही पड़ती हैं, उसी प्रकार जैन धर्म का सर्वोच्च शिखर पाने के लिये हर श्रावक को चाहिये कि वह सर्वप्रथम 'जैन जीवन शैली' को आत्मसात् करें, दिल में संजोये व जीवन में जीये।

इस अनोखे ग्रन्थ में न केवल आत्म-शुद्धि का मार्ग है अपितु स्वास्थ्य का विज्ञान भी है। और एक विशेष बात कि उसमें कोई कठोरता नहीं है, परिस्थिति के अनुसार Flexible भी है।

मेरे गुरु ने मुझे 'दो शब्द' लिखने की प्रेरणा दी, तदर्थ मैं अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ। मेरे समस्त श्रावक भाई-बहिनों से 'जैन जीवन शैली' का वाचन व आचरण करने का हार्दिक निवेदन।

मुम्बई

13.10.2012

न्यायाधीश राजन जोधराज कोचर

(निवृत्त)

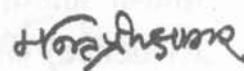
द्वितीय आवृत्ति

'जैन जीवन शैली' जीवन जीने की कला सीखाने वाला ग्रन्थ है। मात्र चार महिने की अल्पावधि में द्वितीय आवृत्ति का प्रकाशन प्रस्तुत पुस्तक की उपादेयता और उपयोगिता का पुष्ट प्रमाण है।

यह मेरे लिये प्रसन्नता का विषय है कि पाठकों ने इसे अत्यन्त चाव से पढ़ा है। प्रस्तुत संस्करण के अन्त में 'पारिभाषिक शब्दकोष' भी जोड़ा है जिससे कठिन शब्दों के अर्थ समझ में आ सकें।

पूर्व नियोजित योजनानुसार यह पुस्तक दो भागों में रंगीन चित्रों के साथ प्रकाशित हो रही है, इसके साथ-साथ इसका द्वितीय खण्ड के आलेखन का विषय - क्रम भी निर्धारित किया जा रहा है। जैन जीवन शैली में निर्दिष्ट तत्त्व हमारे जीवन के अभिन्न अंग बने, यही हार्दिक अपेक्षा।

मणि चरण रज



मुनि मनिप्रभसागर

जैन जीवन शैली

जैन दिनचर्या

श्रावक के तीन स्तर

(1) प्रथम स्तर

- (i) नमस्कार मंत्र की नियमित जाप—साधना ।
- (ii) प्रतिदिन नवकारसी का प्रत्याख्यान ।
- (iii) जिन मन्दिर— दर्शन—वंदन—पूजन ।
- (iv) मद्य—मांस—शिकार आदि सप्त व्यसनों का परित्याग ।
- (v) कन्दमूल (आलू, प्याज) आदि का निषेध ।

(2) मध्यम स्तर

- (i) कुलाचार, सदाचार और जैनाचार से अनुशासित जीवन—शैली ।
- (ii) रात्रि—भोजन एवं अभक्ष्य—भोजन का परित्याग ।
- (iii) स्वाध्याय एवं सत्संग की अभिरुचि ।
- (iv) बारह व्रतों की यथाशक्ति धारणा एवं अनुपालना ।
- (v) प्रवचन—श्रवण एवं श्रमण—पर्युपासना में अहोभाव ।

(3) उत्तम स्तर

- (i) सचित्त का सर्वथा परित्याग ।
- (ii) प्रतिदिन एकासन तपश्चरण ।
- (iii) परिपूर्ण ब्रह्मचर्य का नियम ।
- (iv) नीति और न्याय से धन का उपार्जन ।
- (v) रात्रि में चतुर्विध आहार का त्याग ।

- (1) प्रतिदिन आसन, जाप एवं ध्यान से मन का शुद्धिकरण ।
- (2) पंच अभिगमपूर्वक प्रभु—पूजन ।
- (3) सत्साहित्य के वांचन से आत्म—पवित्रता का विकास ।
- (4) सामायिक के द्वारा समत्व में अभिवृद्धि ।
- (5) वाक्—शक्ति के लिये प्रतिदिन एक घण्टा मौन की उपासना ।
- (6) गुरुजनों का वैयावृत्य, वंदना, सुपात्र दान एवं सत्संग ।
- (7) माता—पिता के चरणों का स्पर्श, आज्ञा—पालन एवं सेवा—भक्ति ।
- (8) प्रामाणिक एवं न्याय—नीति से जीवन का निर्वाह ।
- (9) बारह भावनाओं से ममत्व का अल्पीकरण ।
- (10) सोते समय सुकृत की अनुमोदना एवं दुष्कृत की आलोचना ।

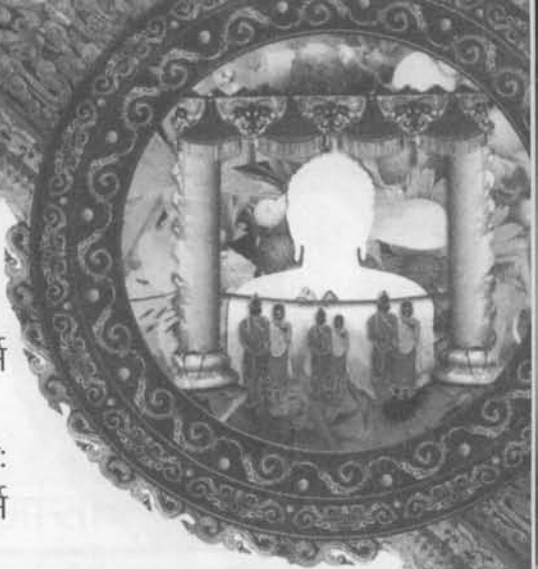
जैनत्व के प्रतीक

- (1) पारस्परिक मिलन के अवसर पर 'जय जिनेन्द्र' अथवा 'प्रणाम' से अभिवादन करना ।
- (2) 'श्री महावीराय नमः' से पत्र का प्रारम्भ एवं 'जय जिनेन्द्र' से बहुमान-अभिवादन ।
- (3) गृह-सज्जा में जैन जीवन शैली के बोधक यथा अरिहंत, आचार्य आदि के चित्र, शो-केस में पातरा,

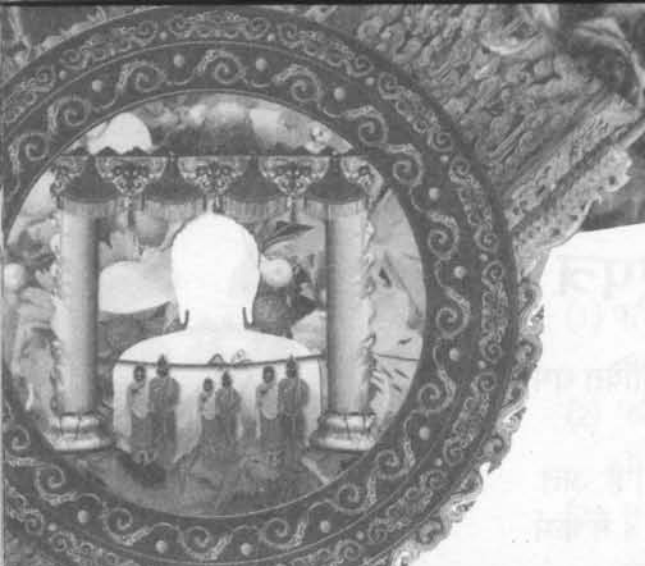
तरपणी, ओघा आदि मुनि-प्रतीक चिह्न, दुकान-मकान के द्वार पर अष्ट मंगल, चौदह स्वप्न की सजावट अथवा जय जिनेन्द्र, नवकार मंत्र, जैन धर्मोऽस्तु मंगलम्, जैनम् जयति शासनम् आदि का आलेखन ।

- (4) जनगणना में अपने नाम के साथ 'जैन' शब्द का प्रयोग एवं धर्म के कॉलम में 'जैन' लिखने में जागरूकता ।
- (5) जन्म, विवाह, उत्सव, मृत्यु आदि में जैन संस्कार विधि का प्रयोग करना । इसके साथ दीपावली आदि में नये बहीखातों के प्रयोग में जैन संस्कार विधि का प्रयोग ।
- (6) जैन विधि से दीपावली आदि त्यौहारों को मनाना ।
- (7) जैन पर्व एवं विशेष आयोजन पर जैनत्व के प्रतीक पंचरंगी जैन ध्वज आदि का उपयोग करना ।
- (8) सरकारी दस्तावेज, रेल-वायुयान आदि टिकट, कॉलेज-प्रवेश फार्म आदि में नाम के साथ 'जैन' शब्द का उल्लेख करना । यदि आप अपने नाम के स्वगोत्र का भी उल्लेख करना चाहते हैं तो नाम के पहले जैन और नाम के बाद गोत्र को अंकित करना ।
- (9) शादी, गृह-प्रवेश, दुकान की ओपनिंग आदि की आमन्त्रण पत्रिका में सबसे पहले परमात्मा का नाम अंकित करना ।
- (10) दुकान की Letter-Pad पर परमात्मा, दादा गुरुदेव आदि का नाम अंकित करना ।
- (11) दुकान के देव-पूजा स्थान में अथवा अन्य स्थान पर परमात्मा, जैन तीर्थ आदि के फोटो लगाना ।
- (12) ललाट पर जिनाज्ञा शिरोधार्य करने के प्रतीक रूप चन्दन-केसर का तिलक लगाना ।
- (13) अपनी चार पहिया गाड़ी में प्रभु या गुरुदेव का फोटो या मूर्ति लगाना । उसके आगे-पीछे कहीं भी अरिहंत-गुरु का नामांकन करना अथवा जैनम्, जय जिनेन्द्र, जय महावीर, जय दादा गुरुदेव आदि लिखवाना ।

जैन संकल्प परिपत्र



- (1) मैं अरिहंत देव, पंचमहाव्रती सुगुरु एवं केवलीभाषित धर्म (जिन धर्म) के प्रति सदैव श्रद्धावान् रहूंगा ।
- (2) मुझे आत्मा, कर्म एवं मोक्ष तत्त्व में परिपूर्ण श्रद्धा है, अतः स्वकृत कर्मों का उत्तरदायी भी मैं स्वयं ही हूँ । मैं कर्म मुक्ति के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहूंगा ।
- (3) मैं आहार शुद्धि के प्रयोगों में विश्वास करता हूँ, अतः मद्य, मांस, उत्तेजनावर्द्धक कन्दमूल, दुर्गतिकारक बीड़ी, सिगरेट, गुटखा, तम्बाकू, गांजा, अफीम, चरस आदि मादक पदार्थों का उपयोग नहीं करूंगा ।
- (4) प्रतिवर्ष संवत्सरी महापर्व की साधना करता हुआ जीव मात्र के प्रति करुणा, मैत्री, समभाव और क्षमा से अपनी आत्मा को भावित करूंगा ।
- (5) जिनशासन की उन्नति, प्रगति हेतु सदैव प्रयत्नशील रहूंगा ।
- (6) साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका की निंदा, टीका-टिप्पणी नहीं करूंगा ।
- (7) मेरे जिस कृत्य से जिनशासन के गौरव में कमी हो, धर्म कलंकित हो, वैसा कार्य कदापि नहीं करूंगा ।
- (8) धर्म-संघ से निष्कासित व्यक्तियों को प्रश्रय नहीं दूंगा ।
- (9) शासन की अखण्डता, आज्ञा-अनुशासना एवं सिद्धान्तों के प्रति सदैव समर्पित रहूंगा ।
- (10) जिनाज्ञानुसार खान-पान, आचार-विचार, वेश-परिवेश की शुद्धि पर पूरा ध्यान दूंगा ।
- (11) व्यापार में प्रामाणिकता, नीतिमत्ता एवं न्याय को स्थान दूंगा । अनीति, शोषण, कालाबाजारी, फरेब, झूठ, अन्याय, रिश्वतखोरी, मिलावट का न आचरण करूंगा, न उसे प्रोत्साहन दूंगा ।
- (12) किसी भी साधु-साध्वी अथवा श्रावक-श्राविका में दोष दर्शन होने पर उसका बाजार, रिश्तेदार आदि में प्रचार-प्रसार नहीं करूंगा । बहुत संभव है कि दृष्टिभ्रम के कारण भी मुझे इस प्रकार लगा हो । अतः गुरुदेवों के प्रति श्रद्धा, बहुमान और अहोभाव के संरक्षण-संवर्धन के लिये जरूरी लगने पर उनसे एकान्त में स्पष्टीकरण करूंगा ।
- (13) मन-मस्तिष्क और आत्मा की शुद्धि के लिये थियेटर, टेलीविजन, मोबाइल, इन्टरनेट आदि पर गंदे, अभद्र, अश्लील दृश्यों को देखना व संगीत सुनना मेरे लिये सर्वथा निषिद्ध है ।



कसौटी आपकी... स्वयं से पूछो दस सवाल

1. आपको संसार में भय, दुःख, चिन्ता सताती है, तब उसको दूर करने के लिये क्या आप ध्यान, जाप करते हैं?
2. क्रोध-लोभ आदि कषाय-शमन के लिये क्या आप जागरूक हैं?
3. क्या आपको तत्त्वत्रयी पर पूर्ण आस्था है?
4. क्या आपको बुरे निमित्त भटकाते हैं?
5. 'मैं कौन हूँ' इसकी आपने खोज-शुरु कर दी है?
6. संसार के सुख, साधन एवं सम्मान में शान्ति का अनुभव करते हैं या उससे मुक्त होकर निर्वेद-भावों से स्वयं को आप्लावित एवं प्रभावित करते हैं?
7. आप संतोष, नीतिपूर्ण व्यापार एवं सादगी से परिपूर्ण जीवन शैली में विश्वास करते हैं?
8. जब आपका मन, हृदय चिन्ताक्रान्त होता है, तब आप कर्म-फल समझकर प्रायोगिक विधान का उपक्रम करते हैं अथवा निमित्त पर रुष्ट होकर आर्त्तध्यान-रौद्रध्यान ध्याते हैं?
9. क्या शरीर, सुख, परिवार, धन, सत्ता आदि के वियोग का आपको भय सताता है अथवा आप पूर्णतया निर्भय हैं?
10. क्या संसार में पराधीनता की अनुभूति करते हुए स्वयं की स्वतन्त्र सत्ता की ओर आपके चरण गतिमान हैं?

स्वभाव परिवर्तन के 'संकल्प सूत्र'

सोते समय इन सूत्रों का पुनः पुनः उच्चारण करें जिससे दूषित, विकृत एवं कषायग्रस्त स्वभाव बदल जायेगा।

- (i) मुझे पवित्र जीवन जीना है, मैं त्याग सम्पन्न बनूँ।
- (ii) मुझे उच्च जीवन जीना है, मैं ज्ञान सम्पन्न बनूँ।
- (iii) मुझे सरल जीवन जीना है, मैं आनन्द सम्पन्न बनूँ।
- (iv) मुझे भयमुक्त जीवन जीना है, मैं शक्ति सम्पन्न बनूँ।
- (v) मुझे शान्त जीवन जीना है, मैं ध्यान सम्पन्न बनूँ।

आत्म विकास की पंचसूत्री

- (1) अप्पा सो परमप्पा-आत्मा ही परमात्मा है।
- (2) पुद्गल से पुद्गल तृप्त होते हैं, आत्मा नहीं।
- (3) मैं शरीर से भिन्न हूँ, शरीर मुझसे भिन्न है।
- (4) मैं आनंद का अक्षय कोष हूँ, बाहर का सुख कोरा भ्रमजाल है।
- (5) मैं स्वयं ही अपने कर्मों का कर्ता व भोक्ता हूँ और स्व-प्रयत्न से ही उससे मुक्त हो सकता हूँ।

जैन आराधना मीमांसा

1. नवकार : जिसकी महिमा अपरम्पार
2. तीर्थकर और समवसरण
3. चौबीस तीर्थकर एवं महाश्रमण महावीर
4. त्रिषष्टिशलाका पुरुषों का परिचय
5. सिद्ध परमात्मा का स्वरूप
6. मुनि जीवन की पहचान
7. पंच परमेष्ठी के रंगों का
वैज्ञानिक विश्लेषण



नवकार : जिसकी महिमा अपरम्पार

प्र. 1. नवकार मंत्र का शास्त्रीय नाम क्या है?

उ. नमस्कार—सूत्र एवं पंचमंगल महाश्रुतस्कंध।

प्र. 2. नवकार मंत्र में 'नमो' शब्द किसका प्रतीक है?

उ. नमन, विनय और कृतज्ञता का।

प्र. 3. नवकार मंत्र का अर्थ बताईए।

उ. अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय एवं लोक में स्थित समस्त मुनि भगवंतों को नमस्कार। इन पंच परमेष्ठी को किया गया नमस्कार समस्त पापों का नाश करने वाला है तथा समस्त मंगलों में यह मंत्र प्रथम मंगल है।

प्र. 4. पंच परमेष्ठी में देव और गुरु कितने हैं?

उ. 1. देव—अरिहंत तथा सिद्ध।
2. गुरु—आचार्य, उपाध्याय और मुनि।

प्र. 5. पंच परमेष्ठी को स्पष्ट कीजिए।

उ. (1) अरिहंत—अरि यानि शत्रु। जिन्होंने कर्म रूपी शत्रुओं का हनन कर दिया है, वे अरिहंत कहलाते हैं।

(2) सिद्ध—जिन्होंने समस्त कर्मों का

क्षय कर मोक्ष—धाम को उपलब्ध कर लिया है, वे सिद्ध कहलाते हैं।

(3) आचार्य—गण, कुल और शिष्यों को जिनाज्ञापूर्वक संयममार्ग में गतिशील रखने वाले आचार्य कहलाते हैं।

(4) उपाध्याय—जिनोक्त प्रवचन की शिक्षा एवं ज्ञान रूपी चक्षु देने वाले उपाध्याय कहलाते हैं।

(5) साधु—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इन पंच महाव्रतों का पालन करने वाले साधु कहलाते हैं।

प्र. 6. नवकार मंत्र के स्मरण से कितने पापों का विनाश होता है?

उ. 1. नवकार मंत्र के एक अक्षर का उच्चारण करने से सात सागरोपम (असंख्य वर्ष) जितने पाप नष्ट हो जाते हैं।

2. नवकार मंत्र के एक पद का स्मरण करने से पचास सागरोपम जितने अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

3. सम्पूर्ण नवकार मंत्र का एक बार जाप करने से पांच सौ सागरोपम जितने पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं।

4. 'नमो अरिहंताणं' इस पद का विधि



विधान एवं सम्पूर्ण श्रद्धा से जाप करने वाला तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करता है।

प्र. 7. नवकार मंत्र का कितनी बार जाप करने से जीव तीन भवों में मोक्षगामी होता है?

उ. 8 करोड़ 8 लाख 8 हजार 8 सौ 8 बार नवकार का जाप करने वाला तीन भवों में मोक्षगामी होता है।

प्र. 8. नवकार मंत्र कितने पूर्वों का सार कहा गया है?

उ. चतुर्दश पूर्वधर भी अन्त समय में नवकार मंत्र का जाप करते हैं, अतः इसे चौदह पूर्वों का सार कहा गया है।

प्र. 9. नवकार मंत्र का संक्षिप्त रूप क्या है?

उ. असिआउसा।

प्र. 10. नवकार मंत्र में शरीरी—अशरीरी एवं आहारी—अनाहारी के कितने भेद होते हैं?

उ. नवकार मंत्र में सिद्ध पद अशरीरी एवं अनाहारी है, शेष चार पद सशरीरी तथा आहारी हैं।

प्र. 11. सिद्ध परमात्मा के आठों कर्मों का क्षय हो चुका है और अरिहंत परमात्मा के चार कर्मों का, तो फिर 'नमो सिद्धाणं' को 'नमो

अरिहंताणं' से पहले स्थान क्यों नहीं दिया गया?

उ. 1. प्रत्येक अरिहंत संपूर्ण कर्मों का क्षय करके अवश्यमेव सिद्ध होते हैं, अतः वे अरिहंत तथा सिद्ध, दो पदों को धारण करते हैं जबकि हर सिद्ध पूर्व में अरिहंत नहीं होने से एक पद ही धारण करते हैं।

2. अरिहंत भव्य जीवों का उद्धार करने के लिये सम्यक् मार्ग दिखाते हैं अतः गुरु पदधारी होने से अरिहंत को सिद्ध से पूर्व में स्थान दिया गया।

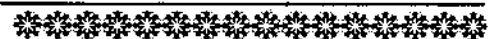
3. अद्यावधि पर्यन्त जितने भी सिद्ध हुए हैं, वे अरिहन्त की देशना श्रवण करके ही हुए हैं।

प्र. 12. नवकार की माला में 108 मणके क्यों होते हैं?

उ. 1. अरिहंत आदि पंच परमेष्ठी के क्रमशः 12, 8, 36, 25 एवं 27 गुण होते हैं, इन गुणों का कुल योग 108 होने से नवकार की माला में 108 मणके होते हैं।

2. 108 प्रकार से होने वाले पाप कर्मों का क्षय करने लिये नवकार की माला में 108 मणके होते हैं।

प्र. 13. 108 प्रकार से पाप कर्म का बंध किस प्रकार होता है?



करना चाहिए। यदि किसी विशेष एक पद का ध्यान करना हो तब नमो अरिहंताणं एवं नमो सिद्धाणं का पूर्व दिशा में, नमो आयरियाणं का दक्षिण दिशा में, नमो उवज्झायाणं का पश्चिम दिशा में एवं नमो लोए सव्वसाहूणं का उत्तर दिशा में जाप करना चाहिए।

प्र.17. नवकार मंत्र में पाँच महातीर्थ किस प्रकार समाहित होते हैं?

उ. नमो अरिहंताणं से अष्टापद, नमो सिद्धाणं से सिद्धाचल, नमो आयरियाणं से आबू, नमो उवज्झायाणं से उज्जयंतगिरि (गिरनार) और नमो लोए सव्वसाहूणं से सम्मत्त शिखर।

प्र.18. नवकार मंत्र की विशेषताएँ बताओ।

उ. 1. नवकार मंत्र के हर शब्द पर एक करोड़ देवों का निवास है।
2. नवकार मंत्र के प्रत्येक अक्षर पर 1008 महाविद्याएँ, नव निधान एवं अष्ट सिद्धियाँ प्रतिष्ठित हैं।
3. नवकार शाश्वत मंत्र है। यह अनादिकाल से है और अनन्त काल तक चलता रहेगा।

प्र.19. नवकार मंत्र के शब्द संयोजन का रहस्य समझाओ।

उ. 1. 68 अक्षर अडसठ तीर्थों के प्रतीक रूप हैं।

2. पंचपरमेष्ठी में 24 गुरु अक्षर 24 तीर्थकरों के तथा 11 ह्रस्व अक्षर ग्यारह गणधरों के प्रतीक हैं।

3. 'अ' अक्षर चार बार होने से क्रोध आदि चार आश्रवों को रोकने वाला मंत्र है।

4. 'इ' अक्षर एक बार होने से इसमें इष्ट देव—गुरु का स्मरण किया गया है।

5. 'ग' अक्षर दो बार होने से मनुष्य एवं देव गति प्रदायक है।

6. 'र' अक्षर तीन बार होने से यह रत्नत्रयी प्रदाता है।

7. 'ह' अक्षर दो बार होने से राग व द्वेष का हनन करने वाला है।

8. 'स' अक्षर आठ बार होने से अष्ट सिद्धि प्रदाता है।

9. 'म' अक्षर नौ बार होने से पंच महाव्रत और चार मंगल का पवित्र स्थान है।

10. 'य' अक्षर तीन बार होने से तीनों योगों को शुभ—अनुष्ठान में सक्रिय करने वाला मंत्र है।

11. 'च' अक्षर दो बार होने से जन्म व मरण रूपी दोनों कुचक्रों को भेदने वाला शक्तिशाली मंत्राधिराज है।

प्र.20. नवकार मंत्र को मंत्रशिरोमणि क्यों कहा जाता है?



उ. नवकार मंत्र विघ्न—विनाशक, प्रसन्नता—प्रदायक एवं संपत्तिकारक मंत्र है। इसके जाप से न केवल पाप—ताप—संताप नष्ट होते हैं अपितु मुक्ति रूपी शाश्वत सुख की भी प्राप्त होती है। इस मंत्र के स्मरण से—

1. सुभद्रा सती ने चंपानगरी के द्वार खोले।
2. सीता सती ने अग्निकुण्ड शीतल जलकुण्ड में बदला।
3. श्रीमती के हाथ में रहा हुआ सर्प पुष्प माला में परिवर्तित हुआ।
4. इस महामंत्र के प्रभाव से अमर कुमार की शूली सिंहासन ब्रन गयी।
5. नवकार मंत्र के प्रभाव से सिंहस्थ राजा से अनन्तमति ने अपने शील की रक्षा की।
6. पार्श्वकुमार के मुख से नवकार का श्रवण कर अग्नि में जलता हुआ सर्पयुगल मरकर धरणेन्द्र देव और पद्मावती देवी बना।
श्रीपाल, मयणासुंदरी, शिवकुमार, नर्मदासुंदरी, अंजना सती आदि अनन्त आत्माओं ने इस मंत्र का श्रद्धा एवं शुद्धिपूर्वक जाप करके आत्म कल्याण किया।

प्र.21. नवकार मंत्र का कब—कब जाप करना चाहिये ?

- उ.
1. सोते और जागते समय।
 2. किसी भी अन्य मंत्र का जाप शुरू करने से पहले।
 3. किसी भी कार्य की शुरुआत करने से पहले।
 4. यात्रा हेतु प्रस्थान करने से पहले।
 5. दुकान, स्कूल के लिये प्रस्थान करने से पहले।
 6. दुःख, दुर्घटना और पीडा के क्षणों में।
 7. मानसिक तनाव, घुटने, हीनभाव आदि संतापजनक स्थितियों में।
 8. सांसारिक कार्य यथा विवाह, जन्म आदि उत्सव के पलों में।
 9. आपसी कलह, कषाय और क्लेशजनक स्थिति में।
 10. शुभ अथवा अशुभ समाचार श्रवण के क्षणों में।
 11. मानसिक विकास, राग—द्वेष, ईर्ष्या, मनमुटाव, वासना, आक्षेप, उत्तेजना, शोक, भय, अरति, माया आदि आन्तरिक रोगों की उत्पत्ति के समय।



तीर्थकर और समवसरण

प्र. 22. तीर्थकर किसे कहते हैं?

उ. वे महापुरुष जो साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप चतुर्विध संघ (तीर्थ) की स्थापना करते हैं, वे तीर्थकर कहलाते हैं। जो संसार-सागर से तिराता है, उसे तीर्थ कहते हैं।

प्र. 23. तीर्थकर के पर्यायवाची क्या क्या हो सकते हैं?

उ. 1. परमात्मा—परम ज्ञानादि गुणों को प्राप्त होने से तीर्थकर को परमात्मा कहा जाता है।

2. जिन—राग—द्वेष रूपी शत्रुओं को जीतने के कारण तीर्थकर को जिन, जिनराज और जिनेश्वर कहा जाता है।

3. वीतराग—भवभ्रमण के मूल राग, द्वेष आदि दुर्गुणों का संपूर्ण क्षय होने से वीतराग कहा जाता है।

4. भगवान—परम तेजस्वी, अनुत्तर ज्ञानी एवं दिव्य स्वरूपी होने से तीर्थकर भगवान कहलाते हैं।

प्र. 24. तीर्थ कितने प्रकार के होते हैं?

उ. 1. जंगम तीर्थ—चतुर्विध संघ को जंगम तीर्थ कहते हैं।

2. स्थावर तीर्थ—जहाँ तीर्थकर परमात्मा के कल्याणक, चातुर्मास हुए हो अथवा उनका विचरण हुआ हो

अथवा अतिशय युक्त प्राचीन प्रतिमा हो, उसे स्थावर तीर्थ कहते हैं।

प्र. 25. तीर्थकर परमात्मा के कितने कल्याणक होते हैं?

उ. पाँच — 1. च्यवन (गर्भ) 2. जन्म 3. दीक्षा 4. केवलज्ञान और 5. निर्वाण।

आश्चर्य स्वरूप परमात्मा महावीर के गर्भापहार कल्याणक सहित छह कल्याणक हुए, जिनका उल्लेख कल्पसूत्र में प्राप्त होता है।

प्र. 26. तीर्थकर किस गति से आते हैं एवं किस गति में जाते हैं?

उ. कोई भी तीर्थकर देव अथवा नरक गति से आते हैं तथा समस्त कर्मों का आत्यन्तिक क्षय कर मोक्ष गति को प्राप्त करते हैं।

प्र. 27. तीर्थकर की माता कितने महा-स्वप्न देखती है?

उ. चौदह महास्वप्न — 1. हाथी 2. वृषभ 3. केसरी सिंह 4. लक्ष्मी 5. पुष्पमाला 6. चंद्र 7. सूर्य 8. ध्वज 9. कलश 10. पद्मसरोवर 11. क्षीर समुद्र 12. देवविमान 13. रत्नराशि 14. निर्धूम अग्नि।

यदि तीर्थकर का जीव नरक गति से आता है तो माता देवविमान के स्थान पर भवन का स्वप्न देखती है।

प्र.28. अरिहंत प्रभु को जन्माभिषेक हेतु ले जाते समय इन्द्र कितने रूप बनाता है?

उ. पाँच रूप —

1. एक रूप में अरिहंत परमात्मा को हाथ में लेते हैं।
- 2—3. दूसरे—तीसरे रूप में उनके दोनों तरफ चामर ढुलाते हैं।
4. चौथे रूप में उनके ऊपर छत्र स्थापित करते हैं।
5. पाँचवें रूप में परमात्मा के आगे वज्र घुमाते हुए चलते हैं।

प्र.29. अरिहंत परमात्मा के जन्माभिषेक में चौसठ इन्द्र कौन कौन होते हैं?

उ. 1. बीस भवनपति 2. सोलह व्यंतर 3. सोलह वाणव्यंतर 4. दो ज्योतिष्क 5. दस वैमानिक।

प्र.30. अरिहंत परमात्मा कितना दान देते हैं?

उ. प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मुद्राओं का और संपूर्ण वर्ष में 3 अरब 88 करोड़ 80 लाख स्वर्णमुद्राओं का दान देते हैं। उनके दान को संवत्सर दान कहते हैं।

प्र.31. अरिहंत परमात्मा किन अठारह दोषों से मुक्त होते हैं?

उ. 1. मिथ्यात्व 2. अज्ञान 3. क्रोध 4. मान 5. माया 6. लोभ 7. रति 8. अरति 9. निद्रा 10. शोक 11. असत्य 12. चोरी 13. मत्सरता 14. भय 15. हिंसा 16. मोह 17. क्रीडा 18. हास्य।

प्र.32. अरिहंत परमात्मा की विशेषताएँ बताओ।

उ. 1. गर्भ में मति — श्रुत — अवधि, तीन ज्ञान धारक होते हैं। दीक्षा लेते ही चतुर्थ मनःपर्यवज्ञान की प्राप्ति होती है एवं घाती कर्मों के क्षय के बाद केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थ की स्थापना करते हैं।

2. छद्मस्थ अवस्था में चार कारणों से बोलते हैं — 1. स्थान की याचना के लिये 2. मार्ग पूछने के लिये 3. आज्ञा लेने के लिये 4. प्रश्न का उत्तर देने के लिये।

3. तीर्थकर प्रभु की भिक्षा के समय पांच दिव्य प्रकट होते हैं— 1. सुगंधित जल—वृष्टि 2. पुष्प—वर्षा 3. 'अहोदानम्' की उद्घोषणा 4. दिव्य ध्वनि घोष 5. साढ़े बारह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की वृष्टि।

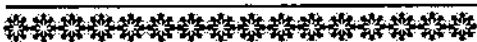
4. परमात्मा का शरीर रोग रहित एवं रक्त दूध की भाँति श्वेत होता है।

5. उनके श्वासोच्छ्वास से पद्म—नीलकमल की सुगंध आती है।

6. उनका आहार—निहार प्रछन्न होता है।

7. दीक्षा के बाद मस्तक, दाढी, एवं मूँछ के केश बढ़ते नहीं हैं।

8. जब भगवान विचरण करते हैं, तब ऋतुएँ सुखद बन जाती हैं। अमनोज्ञ (अप्रिय) वर्ण, गंध, रस, स्पर्श शब्द नहीं रहते हैं। उपद्रव नहीं होते हैं। अतिवृष्टि—अनावृष्टि नहीं होती है, नई व्याधि उत्पन्न नहीं



होती है तथा पूर्वोत्पन्न व्याधि नष्ट हो जाती है।

9. विहार के समय काँटे अधोमुखी हो जाते हैं, आगे आगे धर्मचक्र सुशोभित होता है। वे देवनिर्मित नव स्वर्ण कमलों पर चलते हैं।

प्र.33. समवसरण के संदर्भ में आवश्यक जानकारी दीजिये।

- उ. 1. सर्वप्रथम वायुकुमार देव भूमि को कंकर, कांटे आदि से रहित करते हैं।
 2. मेघकुमार देव सुगन्धित नीर की वर्षा करते हैं।
 3. व्यंतर देव स्वर्ण रत्नमयी शिलाओं से भूमि को शोभित करते हैं एवं जानु प्रमाण खुशबूमय पुष्पों की वृष्टि करते हैं।
 4. समवसरण में रजतमय, स्वर्णमय एवं रत्नमय तीन वलयों की संरचना क्रमशः भवनपति देव, ज्योतिष्क देव तथा वैमानिक देव करते हैं।
 5. तीनों वलयों की चारों दिशाओं में एक-एक द्वार, इस प्रकार कुल बारह द्वार होते हैं। प्रत्येक दिशा में एक-एक योजन प्रमाण ध्वज लहराता है।
 6. प्रथम गढ की प्रत्येक दिशा में दस-दस हजार सीढियाँ होती हैं। दूसरे व तीसरे गढ की हर दिशा में पाँच-पाँच हजार सीढियाँ होती हैं। बीस हजार सीढियाँ परमात्मा के अतिशय से व्यक्ति थकान के बिना अल्प समय में चढ जाता है।
 7. समवसरण में स्वर्ण सिंहासन,

अशोक वृक्ष, छत्र, चामर आदि व्यंतर देव स्थापित करते हैं। पूर्व दिशा में परमात्मा बिराजते हैं एवं शेष तीन दिशाओं में व्यंतर देव प्रभु के प्रतिबिम्ब स्थापित करते हैं। उनके ऊपर तीन-तीन छत्र शोभायमान होते हैं।

8. अर्धमागधी भाषा में तथा मालकोश राग में प्रभु पैंतीस गुणों से अलकृत चौमुखी देशना फरमाते हैं जो कि एक योजन (13 कि.मी.) तक सुनाई देती है।
 9. समवसरण के प्रथम वलय में देवविमान, रथ, पालखी इत्यादि, दूसरे वलय में पशु, पक्षी आदि तथा तीसरे वलय में बारह पर्षदा होती हैं। बारह पर्षदा यानि साधु, साध्वी, पुरुष, स्त्री, वैमानिक-ज्योतिष्क-भवनपति-व्यंतर देव तथा देवी।

प्र.34. जघन्यतः और उत्कृष्टतः कितने तीर्थकर होते हैं?

- उ. 1. महाविदेह क्षेत्र पाँच हैं तथा प्रत्येक महाविदेह में 32 विजय हैं। उनमें से 8वीं, 9वीं, 24वीं एवं 25वीं विजय में तीर्थकर परमात्मा का शाश्वत विचरण होने से जघन्यतः बीस तीर्थकर होते हैं।
 2. पाँच महाविदेह की कुल 160 विजय, पाँच भरत एवं पाँच ऐरावत, इनमें एक-एक तीर्थकर की अपेक्षा से उत्कृष्टतः 170 तीर्थकर होते हैं।

चौबीस तीर्थकर एवं महाश्रमण महावीर

प्र.35. चौबीस तीर्थकरों के नाम अंकित कीजिये।

- उ. 1. ऋषभदेव 2. अजितनाथ 3. संभवनाथ
4. अभिनंदन स्वामी 5. सुमतिनाथ
6. पद्मप्रभु 7. सुपार्श्वनाथ 8. चन्द्रप्रभु
9. सुविधिनाथ 10. शीतलनाथ 11. श्रेयांसनाथ 12. वासुपूज्य स्वामी 13. विमलनाथ 14. अनन्तनाथ 15. धर्मनाथ 16. शान्तिनाथ 17. कुंथुनाथ 18. अरनाथ 19. मल्लिनाथ 20. मुनिसुव्रत स्वामी 21. नमिनाथ 22. नेमिनाथ 23. पार्श्वनाथ 24. महावीर स्वामी।

प्र.36. सम्यक्त्व प्राप्ति के बाद चौबीस तीर्थकरों ने कितने भव किये?

- उ. 1. ऋषभदेव ने तेरह 2. शान्तिनाथ ने बारह 3. अरिष्टनेमि ने नौ 4. पार्श्वनाथ ने दस 5. महावीर स्वामी ने सत्ताईस 6. शेष उन्नीस तीर्थकरों ने तीन-तीन भव किये।

प्र.37. चौबीस तीर्थकरों के संदर्भ में जानकारी दीजिये।

- उ. 1. सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् एक मात्र महावीर नरक में गये।
2. समस्त तीर्थकर देवलोक से आये थे।
3. चौबीस तीर्थकरों में से मल्लिनाथ

एवं अरिष्टनेमि बाल ब्रह्मचारी थे, शेष सभी ने विवाह किया था।

4. चौबीस तीर्थकरों में से 12वें, 19वें, 22वें, 23वें, 24वें तीर्थकर ने राज शासन नहीं किया, शेष राजा बने।
5. चौबीस तीर्थकरों में से 19वें एवं 20वें तीर्थकर हरिवंश के थे, शेष सभी इक्ष्वाकुवंशीय थे।
6. चौबीस तीर्थकरों में से ऋषभदेव को दीक्षा के 400 दिन बाद, शेष 23 तीर्थकरों को दूसरे दिन भिक्षा उपलब्ध हुई।
7. चौबीस तीर्थकरों में से ऋषभदेव, वासुपूज्य, अरिष्टनेमि एवं महावीर स्वामी क्रमशः अष्टापद, चंपापुरी, गिरनार और पावापुरी में, शेष 20 तीर्थकर सम्मत्तशिखर में निर्वाण पद को प्राप्त हुए।
8. ऋषभ, नेमि और महावीर, ये तीनों परमात्मा पद्मासन में एवं शेष 21 तीर्थकर कायोत्सर्ग आसन में मोक्ष पधारे।

प्र.38. चौबीस तीर्थकरों के कुल कितने साधु साध्वी थे?

- उ. साधु — 28 लाख 48 हजार।
साध्वियाँ — 48 लाख 70 हजार 8 सौ।

प्र.39. परमात्मा महावीर ने किस भव में सम्यक्त्व प्राप्त किया था?

उ. नयसार के भव में।

प्र.40. परमात्मा महावीर ने किस भव में कुल मद किया था?

उ. मरीचि के भव में।

प्र.41. परमात्मा महावीर किस नाम से चक्रवर्ती एवं वासुदेव बने?

उ. प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती तथा त्रिपृष्ठ नामक वासुदेव।

प्र.42. परमात्मा महावीर के जीवन के बारे में विस्तृत जानकारी दीजिये।

- उ. 1. नंदन मुनि के भव में 11 लाख 80 हजार 645 मासक्षमण करके तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन किया।
2. प्रथम माता — पिता ऋषभदत्त ब्राह्मण एवं देवानंदा ब्राह्मणी थे।
3. द्वितीय माता — पिता सिद्धार्थ महाराजा और त्रिशला महारानी थे।
4. क्षत्रियकुण्ड नगर में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को जन्म कल्याणक हुआ।
5. जन्म राशि कन्या, स्वर्णवर्णीय काया, सिंह लांछन, सात हाथ प्रमाण शरीर तथा काश्यप गोत्रीय थे।
6. चाचा—सुपार्श्व, ज्येष्ठ भ्राता—नंदीवर्धन, बहिन—सुदर्शना, पत्नी—यशोदा, पुत्री—प्रियदर्शना, दामाद—जमाली।
7. नाना—नानी राजा केक एवं

यशोमती रानी तथा सास—श्वसुर समरवीर राजा एवं यशोदया रानी।

8. मिगसर वदि दशमी को तीस वर्ष की वय में छठ (बेले) तप में अशोक वृक्ष के नीचे दीक्षा ली।

9. ग्वाले, चंडकौशिक सर्प, संगम देव, शूलपाणि यक्ष, कटपूतना व्यंतरी आदि के महान् उपसर्ग समतापूर्वक सहे।

10. साधना काल के साढे बारह वर्षों में मात्र अन्तर्मुहूर्त प्रमाण निद्रा ली।

11. साढे बारह वर्ष के छद्मस्थ काल में मात्र 349 पारणे किये।

12. 30 वर्ष पर्यन्त तीर्थकर अवस्था में विचरण किया।

प्र.43. परमात्मा महावीर के तपोमय जीवन पर प्रकाश डालिये।

उ. 12 वर्ष 6 माह 15 दिन के छद्मस्थ साधनाकाल में प्रभु द्वारा आचरित तपस्या का विवरण इस प्रकार है—

1. एक बार छह मास का तप।
2. एक बार पाँच माह पच्चीस दिन का तप।
3. नौ बार चार मास का तप।
4. दो बार तीन मास का तप।
5. दो बार ढाई मास का तप।
6. छह बार दो मास का तप।
7. दो बार डेढ मास का तप।
8. बारह बार एक मास का तप।
9. बहत्तर बार पन्द्रह दिन का तप।

10. एक बार दस दिन का तप ।
11. एक बार चार दिन का तप ।
12. बारह बार तीन दिन का तप ।
13. तेईस बार दो दिन का तप ।

प्र.44. परमात्मा महावीर के तेरह बोल का अभिग्रह कौनसा था?

उ. तेरह बोल के अभिग्रह वाला तप चंदनबाला के द्वारा सम्पन्न हुआ । तेरह बोल इस प्रकार थे —

1. राजकुमारी 2. अविवाहित 3. निर्दोष
4. हाथों में हथकड़ी 5. पाँवों में बेडी
6. मुडित मस्तक 7. बंदी खाने में पडी
8. तेले का तप 9. एक पाँव दहलीज के बाहर एवं एक पाँव भीतर 10. दिन के दो प्रहर बीत चुके हो 11. बिकी हुई हो
12. अश्रुपूरित नयन 13. सुपड़े में उडद के बाकुले हो ।

प्र.45. परमात्मा महावीर के केवलज्ञान कल्याणक के बारे में लिखो ।

- उ. 1. जृम्भक ग्राम के बाहर ऋजुबालिका नदी के किनारे शालवृक्ष के तले गोदूहासन में वैशाख शुक्ला दशमी को केवलज्ञान हुआ ।
2. प्रभु की प्रथम देशना खाली गयी क्योंकि किसी ने भी व्रत एवं महाव्रत धारण नहीं किया ।
3. चतुर्विध संघ (तीर्थ) की स्थापना वैशाख शुक्ला एकादशी को हुई । प्रथम साधु गौतम स्वामी, प्रथम

साध्वी चंदनबाला, प्रथम श्रावक शंख और प्रथम श्राविका सुलसा थी ।

4. प्रभु के इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मंडित, मौर्यपुत्र, अकम्पित, अचलभ्राता, मैतार्य और प्रभास नामक ग्यारह गणधर थे ।

5. प्रभु के हस्तदीक्षित साधु 14000, साध्वी 36000, श्रावक 1,59,000 और श्राविकाएँ 3,18,000 थी ।

6. प्रभु के आनंद, कामदेव, चुलनीपिता, सुरादेव, चुल्लग शतक, कुंडकौलिक, सद्दाल पुत्र, महाशतक, नंदिनीपिता एवं तेतलीपिता नामक दस प्रमुख श्रावक थे ।

7. परमात्मा महावीर के श्रेणिक सम्राट्, शतानीक, उदयन, चण्डप्रद्योत, प्रसन्नचन्द्र, शाल, महाशाल, नंदीवर्धन, चेडा आदि प्रमुख भक्त राजा थे ।

प्र.46. परमात्मा महावीर के निर्वाण कल्याणक पर प्रकाश डालिये ।

- उ. 1. सोलह प्रहर की अखण्ड देशना में सुख--दुःख विपाक एवं उत्तराध्ययन सूत्र फरमाते हुए प्रभु निर्वाण पद को प्राप्त हुए ।
2. कार्तिक वदि अमावस को बहतर वर्ष की आयु में पावापुरी में स्वाति नक्षत्र में प्रभु निर्वाण पद को उपलब्ध हुए ।

त्रिषष्टिशलाका पुरुषों का परिचय

प्र.47. त्रिषष्टिशलाका पुरुष से क्या अभिप्राय है?

उ. 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव 9 वासुदेव एवं 9 प्रतिवासुदेव, इन विशिष्ट महापुरुषों को त्रिषष्टिशलाका पुरुष कहा जाता है। उत्तम, श्लाघनीय एवं धर्म-कर्म-भोग में सर्व श्रेष्ठ होने से इन्हें शलाका पुरुष कहते हैं। एक अवसर्पिणी अथवा एक उत्सर्पिणी में 63 की संख्या में ही होने से ये त्रिषष्टिशलाका पुरुष कहलाते हैं। तीर्थंकर परमात्मा का विवेचन प्रारंभ में किया जा चुका है।

प्र.48. चक्रवर्ती किसे कहते हैं ?

उ. मनुष्य लोक के सर्वश्रेष्ठ राजा को चक्रवर्ती कहा जाता है। वे सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के अथवा ऐरावत क्षेत्र के अथवा महाविदेह क्षेत्र की एक विजय के अधिपति होते हैं। चक्रवर्ती की माता चौदह महास्वप्न देखती है। चक्रवर्ती यानि—

- (1) बत्तीस हजार देशों के स्वामी ।
- (2) बत्तीस हजार राजाओं के अधिपति ।
- (3) सोलह हजार देवों के अधिपति ।
- (4) नव निधान एवं चौदह रत्नों के स्वामी ।

(5) चौरासी—चौरासी लाख हाथी, घोड़े और स्थों के मालिक ।

(6) 96 करोड़ पैदल सैनिक ।

(7) 99 लाख अंगरक्षक ।

(8) 16 हजार मंत्री ।

(9) 64 हजार रानियाँ ।

(10) 72 हजार श्रेष्ठ नगर ।

(11) 96 करोड़ गाँव ।

(12) 99 करोड़ दास—दासी ।

(13) आठ हजार पण्डित ।

(14) एक करोड़ वैद्यराज ।

(15) तीन करोड़ आयुधशाला ।

(16) बीस—बीस हजार स्वर्ण—रजत की खानें ।

(17) सोलह हजार रत्नों की खानें ।

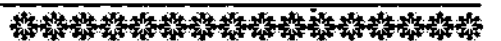
(18) चालीस लाख अष्टापदों जितने बलशाली ।

(19) 64 हजार रत्नमय महल ।

वर्तमान में भरतादि बारह चक्रवर्ती हुए ।

प्र.49. वासुदेव की व्याख्या कीजिये ।

- उ. (1) वासुदेव नियाणे (निदान) के फल—स्वरूप बनते हैं ।
- (2) उनकी माता सात महास्वप्न देखती है ।
- (3) कृष्णवर्णीय ।



(4) बीस लाख अष्टापद जितने शक्तिशाली ।

(5) सोलह हजार देशों एवं सोलह हजार नरेशों के अधिपति ।

(6) सोलह हजार रानियाँ ।

(7) तीन खण्डों के अधिपति ।

(8) सात रत्नों के स्वामी ।

प्र.50. बलदेव की व्याख्या कीजिये ।

उ. (1) बलदेव और वासुदेव, दोनों भाई होते हैं। उनके पिता एक एवं माता अलग-अलग होती है।

(2) माता चार महास्वप्न देखती है।

(3) बलदेव का छोटे भाई वासुदेव से अतिशय प्रेम होता है कि मरने के बाद भी उसे जीवित समझकर छह माह तक अपने पास रखते हैं।

(4) बलदेव की चार हजार देव आज्ञा शिरोधार्य करते हैं।

(5) इनके हल, मूसल आदि शस्त्र होते हैं।

प्र.51. प्रतिवासुदेव की कौनसी विशिष्टताएँ होती हैं?

उ. (1) निदानपूर्वक होता है।

(2) तीन खण्ड से कुछ कम का अधिपति होता है।

(3) उसकी मृत्यु निश्चित रूप से वासुदेव के द्वारा होती है।

प्र.52. त्रिषष्टिशलाका पुरुषों की पूर्व भव एवं परमव की विशेषता बताओ ।

उ. (1) समस्त शलाका पुरुष देवलोक या नरक से ही आते हैं।

(2) तीर्थकर नियमतः मोक्षगामी होते हैं।

(3) चक्रवर्ती दीक्षा लेता है तो स्वर्ग अथवा मोक्ष में जाता है। दीक्षा न ले तो अवश्यमेव नरकगामी होता है।

(4) वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव अन्तराय कर्मोदय से छोटा प्रत्याख्यान भी नहीं कर पाते हैं और मरकर नियमतः नरक में ही जाते हैं।

(5) वासुदेव की मृत्यु के उपरान्त वैराग्यवासित होकर बलदेव दीक्षा लेता है और मोक्ष अथवा देवलोक में जाता है।

(6) तीर्थकर से तीर्थकर, चक्रवर्ती से चक्रवर्ती, चक्रवर्ती से वासुदेव एवं वासुदेव से वासुदेव कभी नहीं मिलते हैं।

(7) तीर्थकर और चक्रवर्ती मिलते हैं, जैसे—ऋषभ और भरत।

(8) तीर्थकर और वासुदेव मिलते हैं, यथा—नेमिनाथ और श्रीकृष्ण।

(9) तीर्थकर उसी भव में चक्रवर्ती भी बन सकते हैं, यथा—शान्तिनाथ, कुण्डुनाथ, अरनाथ।

(10) एक समय में एक साथ एक तीर्थकर एवं एक चक्रवर्ती होते हैं अथवा एक तीर्थकर, वासुदेव, बलदेव एवं प्रतिवासुदेव होते हैं। ❀

सिद्ध परमात्मा का स्वरूप

प्र.53. सिद्ध किसे कहते हैं?

उ. जिन्होंने आठों कर्मों का सर्वथा नाश कर दिया हैं एवं जन्म-मरण के कुचक्र से मुक्त हो चुके हैं, उन्हें सिद्ध कहा जाता है।

प्र.54. सिद्ध परमात्मा कहाँ रहते हैं?

उ. उर्ध्वलोक में सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर पैतालीस लाख योजन लम्बी-चौड़ी, गोल तथा मध्य में आठ योजन मोटी अर्जुन-सुवर्णमय छत्राकार शिला है, वहाँ सिद्ध आत्माएँ स्थित रहती हैं। इसके मुक्ति, मोक्ष, मुक्तालय, सिद्धक्षेत्र, निर्वाण, सिद्धशिला आदि अनेक नाम शास्त्रों में वर्णित हैं।

प्र.55. सिद्धों का संस्थान-आकार कैसा कहा गया है?

उ. बैठे, सोये, खड़े, जैसी स्थिति में जीव का निर्वाण होता है, सिद्ध रूप में भी वैसा ही आकार रहता है। उनकी जघन्य अवगाहना एक हाथ आठ अंगुल प्रमाण एवं उत्कृष्ट रूप से 303 धनुष 1 हाथ 8 अंगुल प्रमाण कही गयी है।

प्र.56. परन्तु महाराज श्री ! जब सिद्धों के

शरीर ही नहीं है तो उसकी लम्बाई का कथन असंगत प्रतीत होता है। तो क्या सिद्ध सशरीरी होते हैं?

उ. नामकर्म, जो शरीर का कारण है, उसका सम्पूर्ण क्षय हो जाने के कारण शरीर नहीं होता है परन्तु यहाँ आत्म-प्रदेशों की अपेक्षा से शरीर कहा गया है।

प्र.57. ठीक है, यह बात तो समझ में आ गयी, परन्तु इतने छोटे से स्थान में अनन्त जीव भला कैसे समा सकते हैं?

उ. जिस प्रकार ज्योति में ज्योति निःसंकोच समा जाती हैं, एक-दूसरे में बाधक नहीं बनती हैं, उसी प्रकार सीमित क्षेत्र में अनन्त आत्माएँ समा जाती हैं।

प्र.58. क्या जैन धर्मी ही सिद्ध बन सकते हैं अथवा अजैन भी?

उ. वह हर जीव सिद्ध बन जाता है, जो आठों कर्मों का क्षय कर देता है। जैन दर्शन अनेकान्तवादी है। यहाँ जैन-अजैन का कोई प्रश्न नहीं है। जीवाभिगम आदि सूत्रों में सिद्धों के पन्द्रह भेद कहे गये हैं, जिसमें एक भेद अन्यलिंग सिद्ध है। इसका अर्थ है कि

जिसके जिनेश्वर प्ररूपित वेश, रजोहरण आदि न हो, वल्कल, गेरुआ वस्त्र हो, फिर भी आत्म भावों में रमण करके सिद्ध बन सकते हैं। जैसे वल्कलचिरी ।

प्र.59. सिद्ध भगवंतों के ज्ञान—दर्शनादि समान होते हैं या नहीं, यदि समान होते हैं तो पन्द्रह भेद क्यों?

उ. उनके ज्ञानादि अनन्त गुण समान होते हैं उसमें बिल्कुल भी भेद नहीं होता है परन्तु पन्द्रह भेद निर्वाण काल की अवस्था के आधार पर किये गये हैं जैसे—

- (1) तीर्थ की स्थापना के बाद सिद्ध होने वाले तीर्थ सिद्ध जैसे गौतम गणधर ।
- (2) तीर्थ—स्थापना से पूर्व सिद्ध होने वाले अतीर्थ सिद्ध जैसे मरुदेवी माता ।
- (3) तीर्थकर बनकर सिद्ध होने वाले तीर्थकर सिद्ध जैसे ऋषभादि ।
- (4) तीर्थकर नहीं परन्तु केवली के रूप में होने वाले अतीर्थकर सिद्ध जैसे चन्दनबाला ।
- (5) जो स्वयं ही बोध प्राप्त करके सिद्ध बने, वे स्वयंबुद्ध सिद्ध जैसे अनन्त तीर्थकर ।
- (6) किसी विशेष निमित्त को पाकर प्रतिबुद्ध होकर सिद्ध बने, वे प्रत्येकबुद्ध सिद्ध जैसे दुर्मुख ।

(7) किसी ज्ञानी से ज्ञान पाकर सिद्ध बने हो, वे बुद्धबोधित सिद्ध जैसे अतिमुक्तक ।

(8) पुरुष के रूप में सिद्ध होने वाले पुरुषलिंग सिद्ध जैसे पुण्डरीक स्वामी ।

(9) स्त्री के रूप में सिद्ध होने वाले स्त्रीलिंग सिद्ध जैसे मृगावती ।

(10) कृत्रिम नपुंसक के रूप में सिद्ध होने वाले नपुंसकलिंग सिद्ध जैसे गांगेय अणगार ।

(11) जैन साधु के वेष में सिद्ध होने वाले स्वलिंग सिद्ध जैसे सुधर्मास्वामी ।

(12) अन्य वेश में सिद्ध होने वाले अन्यलिंग सिद्ध जैसे वल्कलचिरी ।

(13) गृहस्थ के वेश में सिद्ध होने वाले गृहलिंग सिद्ध जैसे मरुदेवी माता ।

(14) अकेले सिद्ध होने वाले एक सिद्ध जैसे महावीर ।

(15) अनेक जीव एक साथ सिद्ध होने वाले अनेक सिद्ध जैसे ऋषभ, पार्श्वनाथ ।

प्र.60. जब आठों कर्मों का क्षय हो जाता है, तब उनमें कौनसे गुण प्रकट होते हैं?

- उ. (1) ज्ञानावरणीय कर्म क्षय से केवलज्ञान ।
- (2) दर्शनावरणीय कर्म क्षय से केवल दर्शन ।

- (3) वेदनीय कर्म क्षय से अनन्त सुख ।
- (4) मोहनीय कर्म क्षय से क्षायिक चारित्र ।
- (5) आयुष्य कर्म क्षय से अक्षय स्थिति ।
- (6) नाम कर्म क्षय से अरूपीत्व ।
- (7) गोत्र कर्म क्षय से अगुरुलघुत्व ।
- (8) अन्तराय कर्म क्षय से अनन्त शक्ति ।

प्र.61. कर्म—मुक्त होने पर जीव सीधा उपर की ओर ही क्यों जाता है?

उ. तुम्बे की तरह निर्लेप होने से, एरण्ड बीज की तरह निर्बंध होने से तथा उर्ध्वगमन जीव का स्वभाव होने से आत्मा दायें—बायें—नीचे न जाकर सीधे उपर, लोक के अग्रभाग (सिद्धशिला) पर

स्थित हो जाता है। उसके आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से नहीं जाता है।

प्र.62. यदि जीव इस प्रकार मोक्ष में जाते रहेंगे तो क्या संसार खाली नहीं हो जायेगा?

उ. नहीं। संसार में मोक्षगामी भव्य जीव अनन्त हैं। अनन्त का अन्त असंभव है। यदि अन्त होना सम्भव होता तो अब तक हो चुका होता, क्योंकि अनन्त उत्सर्पिणी—अवसर्पिणी से जीव निरंतर मोक्ष में जा रहे हैं। निगोद के एक शरीर में जो अनन्त जीव है, वह भी आज तक खाली न हुआ, न होगा तो फिर संसार के जीव—रहित होने की कल्पना ही कैसे की जा सकती है! ❀

मुनि जीवन की पहचान

प्र.63. मुनि जीवन की संक्षिप्त व्याख्या क्या है?

उ. जो पंच महाव्रतों एवं विविध उत्तर व्रतों की आराधना करते हैं, वे मुनि कहलाते हैं।

पंच महाव्रत—(1) अहिंसा— किसी भी छोटे-बड़े, सूक्ष्म-बादर, त्रस-स्थावर जीव की विराधना का तीन योग (मन-वचन-काया) से एवं तीन करण (करना-करवाना-अनुमोदना करना) से त्याग करते हैं।

(2) सत्य— हास्य, भय, क्रोध, मान, माया, लोभ युक्त असत्य का तीन योग एवं तीन करण से त्याग करते हैं।

(3-5) अचौर्य— ब्रह्मचर्य— अपरिग्रह— जो तीन करण एवं तीन योग से चोरी, अब्रह्मचर्य एवं परिग्रह का त्याग करते हैं।

उत्तर गुण (1) रात्रि भोजन का त्याग करना।

(2) बयालीस दोषों से रहित कल्पनीय एवं प्रासुक आहार लेना।

(3) ब्रह्मचर्य की नववाडों का पालन करना।

(4) शरीर की शोभा-विभूषा का त्याग करना।

(5) लोच, पद-विहार आदि कष्ट सहन करना।

प्र.64. साधु के लिये श्रमण, माहण, अणगार आदि अनेक शब्द सुनते हैं, इनका अर्थ वैशिष्ट्य समझाईए।

उ. (1) साधु— पंच महाव्रतों की साधना करने वाला।

(2) श्रमण— स्वावलम्बी।

(3) अणगार— निजी घर का अभाव।

(4) माहण— किसी भी जीव का हनन न करने वाला।

(5) मुनि— मौन को धारण करने वाला।

(6) भिक्षु — निर्दोष भिक्षा से जीवन निर्वाह करने वाला।

(7) निर्ग्रन्थ— जिसमें राग-द्वेष की ग्रन्थि न हो।

प्र.65. जैन साधु स्नान क्यों नहीं करते हैं?

उ. सोलह शृंगारों में स्नान पहला शृंगार है। स्नान करने से राग भाव बढ़ता है। अन्यो के मन में विकार जगाने में प्रबल निमित्त होने से साधु स्नान का त्याग करते हैं।

प्र.66. जैन साधु के कौन-कौनसे उपकरण होते हैं?

उ. 1. रजोहरण (ओघा)— किसी भी स्थान पर बैठने से पहले साधु ओघे से स्थान की प्रमार्जना करते हैं।

2. मुँहपत्ति— बोलते समय मुँहपत्ति

लगाते हैं ताकि उड़ने वाले संपातिम जीव—कीट, पतंग, मच्छर आदि मुँह में न जाये, थूक न उछले, वायुकाय के जीवों को किलामना (पीड़ा) न हो।

3. आसन— बैठते समय उपयोगी उपकरण।
4. पात्र— आहार लाने व करने का उपकरण।
5. डंडासन— रात्रि में दीपक के समान संयम पालन हेतु उपयोगी उपकरण।
- 6.7. चदर—चोलपट्टक (पहनने का वस्त्र) (8) डंडा (9) ठवणी (10) पुस्तक (11) नवकारवाली (माला) (12) पूजणी (पात्र प्रतिलेखन हेतु) (13) कामली आदि।

प्र.67. जब साधु को अपरिग्रही कहा गया है तब इतनी वस्तुएँ रखने से उनको परिग्रह का दोष नहीं लगता?

उ. नहीं! यह सब जिनाज्ञानुसार ही है। साधु इन्हें संयम पालन के लिये रखता है, परन्तु वह यदि इनका व्यवस्थित उपयोग न करे और इनमें मूर्च्छित हो जाये तो उसे परिग्रह का दोष लगता है। शास्त्रों में कहा गया कि साधु वस्त्र, पात्र पर तो क्या, शरीर पर भी ममत्व नहीं रखता है।

मुनि मूल्यवान्, मर्यादा एवं जरूरत से

अधिक सामग्री स्वीकार नहीं करता है और उसमें मोह रहित होने से अपरिग्रही ही है।

प्र.68. गौचरी किसे कहते हैं एवं गौचरी के बारे में क्या-क्या नियम हैं?

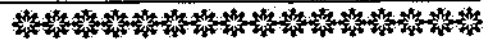
उ. जिस प्रकार गाय अलग-अलग स्थानों से थोड़ा-थोड़ा आहार लेती है, उसी प्रकार साधु अनेक घरों से, उच्च-नीच-मध्यम, सभी कुलों से थोड़ा-थोड़ा आहार लेता है अतः इसे गौचरी कहते हैं। गौचरी को माधुंकरी, गर्तपूर्णिका आदि भी कहा जाता है।

साधु निमित्त की, सामने लायी हुई, सचित्त-संयुक्त आदि बयालीस दोषों का त्याग करके एवं दातार की शक्ति, भक्ति, स्थिति आदि देखकर आहार ग्रहण करता है। नहीं तो पुनः बनाने से उसे दोष लग सकता है अथवा वह कुपित, खिन्न, अश्रद्धान्वित हो सकता है।

साधु अतिभोजन गरिष्ठ, विकारवर्द्धक, बाजार में बनी एवं स्वादपोषक सामग्री से दूर रहते हैं।

प्र.69. क्या जैन साधु जैन घरों से ही आहार ले सकते हैं अथवा अन्य घरों से भी?

उ. जैन-अजैन कोई भी घर हो, साधु उस हर घर से आहार ले सकते हैं, जहाँ शुद्ध निर्दोष, प्रासुक (अचित्त) आहार उपलब्ध हो। केवल उन घरों से



गौचरी लेने का निषेध है, जो लोक में निघ एवं घृणित हो।

प्र.70. क्या गौचरी में लायी हुई वस्तु गृहस्थ को वापस दे सकता है?

उ. सामान्यतया साधु के पात्र में आने के बाद आहार उसका हो जाता है, अतः वापस देना निषिद्ध है परन्तु जोर — जबरदस्ती कोई पदार्थ पात्र में रख देता है और जिसका कोई भी साधु उपयोग नहीं करता है तो उसे तत्काल वापस किया जा सकता है।

चूर्ण, गोली, मरहम आदि दवा में प्रयुक्त होने वाली वस्तुएँ आवश्यकतानुसार काम में लेकर शेष वापस दी जा सकती हैं।

वस्त्र और पात्र के लिये यह नियम है कि वे काम नहीं लिए जाये, तब तक लौटाये जा सकते हैं, काम में लेने के बाद नहीं।

काष्ठपट्ट, बाजोट, सुई, कैंची, नेलकटर, पेन—पेन्सिल आदि संयम—साधना में उपयोगी वस्तुएँ काम में लेकर वापस दी जा सकती हैं।

ऐसी काम में लेकर वापस की जा सकने वाली वस्तुओं को जैन—ग्रन्थों में 'पडिहारी' और नहीं दी जा सकने वाली वस्तुओं को 'अपडिहारी' कहा गया है।

प्र.71. क्या साधु अपनी वस्तु गृहस्थ को दे सकते हैं?

उ. नहीं! आगमों में अपनी खाद्य सामग्री,

वस्त्र, पात्र, कम्बल आदि गृहस्थ को देने वाले साधु के लिये प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। क्योंकि इससे असंयती का पोषण और असंयम की अनुमोदना होती है।

प्र.72. साधु का आहार करना, कर्म बंधन का कारण है अथवा कर्म निर्जरा का?

उ. साधु की हर क्रिया कर्म निर्जरा का कारण बनती है बशर्ते वह शास्त्रानुसार हो। साधु आहार करता है तब भी कर्म निर्जरा होती है क्योंकि वह स्वाद—पोषण के लिये नहीं, अपितु शरीर को टिकाकर संयम साधना में अभिवृद्धि के लक्ष्य से आहार करता है।

प्र.73. क्या शास्त्रों में साधु के आहार करने अथवा छोड़ने के कारण बताये गये हैं?

उ. कोई भी साधु स्वाद—पोषणार्थ गौचरी नहीं करता और कोई भी साधु क्रोधादि कारणों से गोचरी नहीं छोड़ता अपितु दोनों में संयम शुद्धि व वृद्धि का ही भाव रहता है।

कोई भी साधु छह कारणों से आहार लेता है—

- (1) भूख को शांत करने के लिये।
- (2) आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी आदि की वैयावच्य (सेवा) करने के लिये।
- (3) ईर्या समिति का पालन—आहार

नहीं करने से आँखों में अंधेरा आने लगता है।

- (4) संयम का पालन।
 - (5) प्राण—जीवन की रक्षा।
 - (6) स्वाध्याय—ध्यान की साधना।
- साधु आहार छोड़ता है, तब भी छह कारणों से—
- (1) रोगोत्पत्ति।
 - (2) नृप, स्वजन—परिजन, देव, तिर्यच आदि का उपसर्ग उपस्थित होने पर।
 - (3) ब्रह्मचर्य—पालन।
 - (4) जीव—दया।
 - (5) तपश्चर्या।
 - (6) अन्तिम संथारा करके शरीर को छोड़ने के लिये।

प्र.74. साधु का जीवन खुली पुस्तक के समान एवं स्फटिकवत् पारदर्शी कहा गया है, तो फिर वे आहार गृहस्थों से छिपकर क्यों करते हैं?

उ. साधु के पात्र में सरस—नीरस, रूखे—सूखे, विविध भोज्य पदार्थ आते हैं। गृहस्थ सरस, स्वादिष्ट आहार देखकर अश्रद्धान्वित हो सकता है कि देखो! यह जीवन कैसा? न परिश्रम करना, न कमाना। अच्छी सामग्री लाना/खाना, यही साधु का कार्य है। दूसरी तरफ नीरस, फीके, रूखे—सूखे पदार्थ देखकर सोच सकता है कि मैं तो दीक्षा नहीं लूंगा। ऐसे पदार्थ मैं तो नहीं

खा सकता। अतएव सरस या नीरस पदार्थ देखकर संयम एवं श्रद्धा भावों में हानि एवं किसी की कुदृष्टि से भोजन का अपाचन, उदरशूलादि की संभावना के कारण गृहस्थों के सम्मुख साधु को गौचरी करने की प्रभु की मनाही है।

प्र.75. महाराजश्री! - हमने सुना है कि कदाचित् गौचरी ज्यादा होने से साधु उसे परठ देते हैं पर वह आहार किसी भूखे, गरीब को दे दिया जाये तो क्या आपत्ति हो सकती है?

उ. इसमें जिनाज्ञा कारण है और उसमें वैज्ञानिकता की रोशनी है। पहली बात कि गृहस्थ, जो अविरति में है, उसे साधु आहार देगा तो असंयम का पोषण होगा। दूसरी बात यह कि भोजनदाता के विश्वास का खण्डन एवं चोरी होगी क्योंकि वह पंचमहाव्रतधारी के लिये ही देता है। तीसरी बात—इस प्रकार तो साधु प्रतिदिन अधिक—अधिक लाकर परिवार एवं गरीबों का पोषण करने लग जायेगा।

प्र.76. प्रथम एवं अन्तिम तीर्थकरों के साधुओं के पाँच एवं शेष बाईस तीर्थकरों के साधुओं के चार महाव्रत होते हैं, ऐसा फर्क किस कारण है?

उ. आदिनाथ एवं महावीर के साधु पंचमहाव्रती होते हैं, शेष बाईस

तीर्थकरों के साधुओं के चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत को पंचम परिग्रह महाव्रत में शामिल किया गया है क्योंकि स्त्री भी एक प्रकार का परिग्रह ही है। उसको पंचम महाव्रत में शामिल करने से चार महाव्रत ही होते हैं।

प्रथम तीर्थकर के साधु ऋजु—जड़ अर्थात् सरल एवं भोले होने से उनसे गलती होनी संभवित हैं एवं महावीर के साधु तर्कबाज होने से कुतर्क करके रखलना कर सकते हैं, अतः इन साधुओं के पंच महाव्रत होते हैं। मध्यवर्ती बावीस तीर्थकरों के साधु सरल एवं प्रज्ञायुक्त होने से प्रायः गलती नहीं करते हैं, अतः उनके चार महाव्रत कहे गये हैं।

इसी प्रकार आदिनाथ एवं महावीर के साधुओं के लिये दोष लगे अथवा न लगे, प्रतिक्रमण करना अनिवार्य है जबकि अजितनाथ से पार्श्वनाथ के साधु दोष लगने पर ही प्रतिक्रमण करते हैं।

प्र.77. क्या पडिलेहण करनी जरूरी है ?

उ. अहिंसा—पालन एवं जीव दया के लिये वस्त्र, पात्र आदि समस्त उपकरणों को विधिपूर्वक देखने की प्रक्रिया को पडिलेहण कहा जाता है। यह दो बार अवश्य करणीय है।

प्र.78. साधुओं को विहार क्यों करना चाहिये?

उ. एक ही स्थान में रहने से आलस्य, प्रमाद एवं राग—भाव बढ़ता है। शनैः शनैः संयम में शिथिलता आ जाती है एवं साधु सुखशील बन जाते हैं। कदाच मंगू आचार्य की भाँति दुर्गति भी हो सकती है। ग्रामानुग्राम विचरण करने से संयम में जागरूकता बनी रहती है एवं उपदेश, धर्मकथा आदि से धर्म का प्रचार होता है। संयम का जगत में गुणगान होता है।

प्र.79. यदि विहार करने की जिनाज्ञा है तो चातुर्मास किस कारण?

उ. परमात्मा महावीर ने नवकल्पी विहार का आचरण फरमाया है। चार माह एक जगह, शेष आठ महिनों में साधु एक स्थान पर एक माह से अधिक नहीं रुक सकता है। रुग्णता, अध्ययन आदि विशेष कारण उपस्थित होने पर अधिक स्थिरवास कर सकता है।

चातुर्मास में वर्षा के कारण जीवोत्पत्ति विशेष रूप से होती है अतः हिंसा की संभावना अधिक होने से साधु चातुर्मास में विहार नहीं करते हैं।

प्र.80. महाराजश्री ! आप पद—विहार क्यों करते हैं? निजी वाहन में तो हिंसा होती है पर सार्वजनिक बस, रेल आदि में कोई बैठे या न बैठे, वह चलती ही है तो क्या उसका उपयोग आप नहीं कर सकते?

उ. पद — विहार साधु—चर्या का अनिवार्य

अंग है। यदि आप ऐसा कहते हैं कि बस, ट्रेन आदि आपके निमित्त नहीं चलती है अतः उपयोग करना श्रमण—आचार के विरुद्ध नहीं है तो भी गलत ही है क्योंकि गाड़ी में बैठने से साधु उसके द्वारा होने वाली हिंसा का अनुमोदक अवश्य होता है जबकि वह तीनों कारण से हिंसा का त्यागी है।

दूसरा कारण—पद—विहार करने से ग्रामानुग्राम विचरण होने के साथ—साथ अप्रमत्तता का पोषण होता है अन्यथा छोटे छोटे गांवों में होने वाला विहार बंद हो जायेगा।

तीसरा कारण —साधु स्वावलम्बी होता है, वह किसी के आश्रय से जीवन निर्वाह नहीं करता है।

चौथा कारण—पद विहार करना जिनाज्ञा की उपासना है और वह महान् फल देने वाली है। यह कहना भी अनुचित ही है कि भगवान महावीर के समय बस, ट्रेन, प्लेन आदि नहीं थे अतः प्रभु के त्याग था पर उस समय अश्व, बैल, ऊँट, रथ आदि तो थे ही। साधु का जीवन त्यागमय होता है। वह शब्द से ही नहीं, आचरण से भी अहिंसा एवं करुणा का संदेश—उपदेश देता है। कबीर ने बहुत अच्छा कहा है—

कोई चाले हाथी घोड़ा, पालखी मंगाय के!
साधु चाले पैया—पैया, कीडी को बचाय के !!
प्र.81. पर महाराजश्री! आप कहते हैं कि

महावीर प्रभु का हर सिद्धान्त वैज्ञानिकता से परिपूर्ण है जबकि पद—यात्रा में तो ऐसी कोई बात नजर नहीं आती।

उ. बिल्कुल! पद—यात्रा का सिद्धान्त संयम की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है, वैज्ञानिक दृष्टि से भी उतना ही विशिष्ट है।

1. वर्तमान का प्रमादी व्यक्ति पद विहारी न होकर सर्वथा वाहन विहारी हो गया है। दस—बीस कदम जाना हो तब भी वह वाहन की सहायता लेता है, ऐसी स्थिति में शारीरिक अवयवों का उपयोग न होने से व्यक्ति अल्पावधि में ही निष्क्रिय हो रहा है।

2. चलने से घुटने, पांव आदि का व्यायाम होता है, शरीर में स्फूर्ति बनी रहती है। अप्रमाद आदि गुणों का रक्षण होता है।

3. पद—विहार से मोटापा नहीं आता। मोटापा विविध रोगों को आमंत्रण देने वाली पत्रिका है। मोटापे से आलस आता है और आलस से डायबिटीज, अपाचन आदि बीमारियां उग्ररूप धारण कर लेती हैं। फलतः व्यक्ति रुग्ण हो जाता है।

आज डॉक्टर प्रातः भ्रमण (Morning Walk) को विविध रोगों का प्रभावक उपाय मानते हैं जिसकी प्ररूपणा

भगवान महावीर 2500 वर्ष पूर्व कर चुके हैं।

4. मिट्टी व भूमि में चुम्बकीय ऊर्जा विद्यमान है। इस ऊर्जा से व्यक्ति प्राणवान्, स्वस्थ व रोग मुक्त रहता है। इसीलिए साधु बिना चप्पल आदि के विहार करता है।

प्र.82. साधु पद विहारी न होकर वाहन विहारी हो जाये तो जनकल्याण अधिक हो सकता है। क्या काल परिवर्तनानुसार यह सुविधा उचित नहीं है?

उ. नहीं! बिल्कुल नहीं! साधु आत्म-साधक है, न कि प्रचारक। स्वकल्याण के बाद जनकल्याण है। जिनाज्ञा, अहिंसा एवं, अपरिग्रह को ताक पर रखकर न स्वकल्याण संभव है, न परकल्याण।

वाहनधारी के अहिंसा एवं अपरिग्रह महाव्रत खण्डित होने से साधुत्व नहीं रहेगा। राग, प्रमाद आदि दोष बढ़ेंगे, गाँव-गाँव में विहार न होने से जनकल्याण के मार्ग अवरूद्ध हो जायेंगे। इन सबके परिणामस्वरूप क्या आपकी प्रीति, श्रद्धा एवं आपका समर्पण अखण्ड रह पायेगा?

हमेशा यह बात याद रखना कि साधु के लिये स्वकल्याण पहले है और परकल्याण बाद में है।

प्र.83. रात्रि में विहार की जिन-आज्ञा क्यों नहीं है?

उ. रात्रि में नहीं दिखने से मार्ग की प्रमार्जना करते हुए चलना असंभव है, एवं उस समय हिंसक पशु एवं दुष्ट लोगों का उपद्रव हो सकता है। इन कारणों से जिनेश्वर परमात्मा ने रात्रि-विहार का निषेध किया है।

प्र.84. क्या साधु चातुर्मास में विहार कर सकते हैं?

उ. विशेष परिस्थिति में विहार करने का स्थानांग सूत्र में कथन किया गया है। जैसे राजविरोध उत्पन्न हो जाये, दुर्भिक्ष होने से भिक्षा न मिले, गाँव/नगर से कोई बाहर निकाल दे, बाढ आ जाये, जीवन और चारित्र का नाश करने वाले दुष्ट लोगों का उपद्रव उपस्थित हो जाये। इन पाँच कारणों से साधु चातुर्मास के पहले पचास दिनों में विहार कर सकते हैं। शास्त्रज्ञानार्जन, आचार्य-उपाध्याय सेवा, चारित्र-संरक्षण आदि कारणों से शेष 70 दिनों में भी विहार किया जा सकता है।

प्र.85. साधु-साध्वी को किस क्षेत्र में चातुर्मास करना चाहिये?

- उ. 1. जहाँ अध्ययन-अध्यापन एवं स्वाध्याय-ध्यान-साधना हेतु उचित स्थान हो।
2. लघुनीति-बड़ीनीति विसर्जन हेतु निरवद्य स्थान उपलब्ध हो।
3. निर्दोष एवं प्रासुक गौचरी सुलभ हो।



4. साधुओं के प्रति श्रद्धा एवं आदर की भावना हो।

प्र.86. साधु को शास्त्रों में निर्भय कहा है तो फिर वे डण्डा क्यों रखते हैं?

उ. डण्डा किसी को डराने, पीटने अथवा मारने के लिये नहीं अपितु नदी पार करते समय उसकी गहराई जानने के लिये रखते हैं।

प्र.87. तो क्या साधु चलकर नदी पार कर सकते हैं?

उ. हाँ! कर सकते हैं परन्तु तब, जब कोई दूसरा मार्ग न हो। परन्तु इसमें भी शास्त्रीय नियम है कि पानी गहरा हो, डूबने का भय हो तब नाव का आगम-प्रमाण से उपयोग किया जा सकता है। उस समय चलकर नदी पार करना शास्त्राज्ञा का उल्लंघन करना है।

प्र.88. साधु कामली का उपयोग क्यों करते हैं?

उ. भगवती सूत्रानुसार सूक्ष्म अणुकारिक जीवों की वृष्टि होने से ऊनी कामली का उपयोग करते हैं ताकि उन जीवों को किलामणा (पीडा) न हो।

प्र.89. जैन साधु लोच क्यों करते हैं?

उ. जैन साधु स्वयं पर आश्रित है। यदि मुण्डन आदि करें तो अन्यों पर निर्भर रहना होगा, जिससे उसकी साधुता खंडित होगी। लोच करने से रक्त

प्रवाह सन्तुलित हो जाता है। ज्ञान तन्तु सक्रिय होते हैं। इसे एक्युपंकचर भी कहा जा सकता है। यदि कोई साधुता की हर उपासना करने में समर्थ हो पर उससे लोच न हो सके तो वह मुण्डन भी करवा सकता है, यह कल्पसूत्र में कहा गया है।

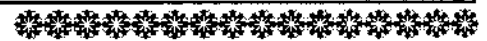
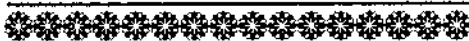
प्र.90. आगमों में कौन-कौनसे विशेष पद कहे गये हैं?

- उ. 1. **गणधर**— तीर्थकरों के प्रधान शिष्य अथवा मुनियों की दैनिक-साधनाओं का ध्यान रखने वाले।
2. **आचार्य**—पंचाचार के पालक, संघ-शासन में जिनाज्ञा का प्रवर्तन करने वाले।
3. **उपाध्याय**— सूत्र-अर्थ की वाचना देने वाले।
4. **प्रवर्तक**— साधुओं को योग्यतानुसार तप, वैयावच्य, संयम आदि में प्रवृत्त करने वाले।
5. **स्थविर**— संयम से डिगते हुए साधुओं को स्थिर करने वाले।
6. **गणी**— गण (साधु-समुदाय) की सार संभाल करने वाले।

प्र.91. दस प्रकार के यति धर्म कौनसे हैं ?

उ. मोक्ष मार्ग में यत्न करने वाला यति और उसका धर्म यति धर्म कहलाता है, जिसके दस भेद शास्त्रों में वर्णित हैं—

1. **क्षमा**— प्राणी मात्र के प्रति मैत्री रखते हुए क्रोध, अपमान, प्रहार,



- वैर-विरोध करने वाले के प्रति करुणा रखना क्षमा है।
2. **मार्दव**— नम्रता रखना। जाति, कुलादि का अभिमान नहीं करना।
 3. **आर्जव** — आर्जव यानि सरलता। माया, प्रपंच, दम्भ का सर्वथा त्याग करना।
 4. **मुक्ति**— निर्लोभी होना। किसी प्रकार का लोभ न रखना।
 5. **तप**— इच्छाओं पर नियमन करना।
 6. **संयम**— हिंसा, चोरी आदि से निवृत्त होकर मूल एवं उत्तर गुणों का पालन करना।
 7. **सत्य**— हित, मित, निर्दोष, सत्य, निरवद्य एवं मधुर वचनों का प्रयोग करना।
 8. **शौच**— मन, वचन, काया व आत्मा से पवित्र होना।
 9. **आकिंचन्य**— परिग्रह व आसक्ति रहित होना।
 10. **ब्रह्मचर्य**—मैथुन/कामभोग से विरत होना।

प्र.92. साधु के बाईस परीषह कौनसे हैं ?

- उ. (1) क्षुधा (भूख) (2) पिपासा (प्यास) (3) शीत (4) उष्ण (5) दंशमशक (मच्छरों का उपद्रव) (6) अचेल (वस्त्र त्याग) (7) अरति (8) स्त्री (9) चर्या (10) निषद्या (11) शय्या (12) आक्रोश (13) वध (14) याचना (15) अलाभ (16) रोग (17) तृण-स्पर्श (18) मल (मेल) (19) सत्कार (20) प्रज्ञा (21) अज्ञान (22) सम्यक्त्व।

प्र 93. साधु के तीन मनोरथ कौनसे हैं ?

- उ. (1) विपुल श्रुतज्ञान सीखना (2) एकल विहारी बनना (3) पण्डित मरण को प्राप्त करना।

प्र.94. साधु की चार प्रकार की सुखशय्या कौनसी हैं ?

- उ. सुखशय्या यानि सुख देने वाले स्थान – (1) जिनवाणी में श्रद्धा (2) परलाभ की अनिच्छा (3) काम-भोग की अकामना (4) स्नान आदि की अनाकांक्षा।



पंच परमेष्ठी के रंगों का वैज्ञानिक विश्लेषण

प्र.95. जैन ध्वज में कितने रंग होते हैं?

उ. पांच रंग— 1. श्वेत 2. रक्त 3. पीत
4. हरा 5. काला।

प्र.96. उपरोक्त पांच रंग किसके प्रतीक हैं?

उ. ये पांच रंग पंचपरमेष्ठी के प्रतीक हैं—
1. श्वेत वर्ण अरिहंत परमात्मा का प्रतीक है।
2. रक्त वर्ण सिद्ध परमात्मा का प्रतीक है।
3. पीत वर्ण आचार्य भगवंत का प्रतीक है।
4. हरित वर्ण उपाध्याय भगवंत का प्रतीक है।
5. कृष्ण वर्ण मुनि भगवंत का प्रतीक है।

प्र.97. अरिहंत परमात्मा का वर्ण श्वेत क्यों कहा गया ?

उ. 1. अरिहंत परमात्मा का ध्यान शुक्ल होता है।
2. वृषभ (बैल) का वर्ण श्वेत होता है और उसके द्वारा भूमि में धान्य का वपन होता है। उसी प्रकार परमात्मा देशना के द्वारा भव्य जीवात्माओं में सम्यक्त्व/संयम रूपी बीजारोपण करते हैं।
3. अरिहंत परमात्मा का रक्त श्वेत-वर्णीय होता है।
4. कषाय, काम, अज्ञान आदि अठारह पाप स्थानों के पाप—मल से सर्वथा शुद्ध उनकी आत्मा में केवलज्ञान, यथाख्यात चारित्र आदि निर्मल,

अमल गुण प्रकट होने से अरिहन्त परमात्मा का श्वेत वर्ण कहा गया है।

5. चारों घाती कर्मों का सर्वथा क्षय होने से विश्व के समस्त चराचर, सूक्ष्म—स्थूल पदार्थों को हस्त आमलकवत् जानते हैं और स्फटिक की भांति पारदर्शी, पवित्र एवं विशुद्ध परिणति को प्राप्त होने से अरिहंत का श्वेत वर्ण कहा गया।

प्र.98. सिद्ध परमात्मा का रक्त वर्ण क्यों कहा गया ?

उ. 1. जो व्यक्ति परम स्वस्थ एवं रोग रहित होता है, उसकी काया रक्तवर्णीय चमकदार प्रतीत होती है, उसी प्रकार सिद्ध परमात्मा अष्ट कर्म रूपी रोग से मुक्त होकर परम निरामय—निरोगी अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं, अतः सिद्ध परमात्मा का वर्ण रक्त कहा गया।
2. वशीकरण की साधना में व्यक्ति रक्तवर्णीय वस्त्र, आसन, माला आदि उपकरणों का उपयोग करता है, उसी प्रकार सिद्ध परमात्मा ने मिथ्यात्व, कषाय आदि समस्त कर्म शत्रुओं को वश में कर लिया है।
3. जैसे अशुद्ध स्वर्ण में विविध द्रव्य मिश्रित करके अग्नि में सुहागे आदि

के सहयोग से गलाने पर जब रक्त अवस्था प्राप्त होती है तब सोना शुद्ध, चमकदार बन जाता है, उसी प्रकार आत्मा तपाग्नि में तपकर द रोग मुक्त होकर तेजोमय लाल वर्ण जैसा रूप धारण कर लेता है अतः सिद्धों का रक्त वर्ण कहा गया।

प्र.99. आचार्य भगवंत का पीत वर्ण क्यों कहा गया?

- उ. 1. वन का राजा केशरी सिंह जब गर्जना करता है, तब समस्त वन्य प्राणी शांत होकर उसकी आज्ञा को धारण करते हैं, उसी प्रकार आचार्य प्रवर जब जिनोक्त सूत्रों की आज्ञा फरमाते हैं, तब समस्त श्रोता उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं, अतः केशरी सिंह के वर्णानुरूप आचार्य भगवंत का पीत वर्ण कहा गया।
2. आचार्य भगवंत तीर्थकर की अनुपस्थिति में सम्पूर्ण विश्व में स्वोपार्जित ज्ञान-विज्ञान की किरणों को प्रसारित करते हैं अतः इनका तेजोमय पीत वर्ण कहा गया।

प्र.100. उपाध्याय भगवंत का वर्ण हरा क्यों कहा गया ?

- उ. 1. हरा वर्ण आँखों की रोशनी को बढ़ाता है, उसी प्रकार उपाध्याय भगवंत आगम, शास्त्र, तत्त्व आदि का पठन-पाठन करवाते हैं अतः श्रुत रूपी नयन देने के कारण उपाध्याय भगवंत का हरित वर्ण कहा गया।
2. उपाध्याय स्व-पर ज्ञान, ध्यान एवं

आत्म विकास में अत्यन्त निपुण एवं पारगामी होते हैं। जिस प्रकार हरा वर्ण कषाय-क्षय में महत्त्वपूर्ण है और कषाय-विजय से समता आती है, उसी प्रकार आगम ज्ञान से समता आती है और समता से ज्ञान-विज्ञान का विकास होने से उपाध्याय का हरा वर्ण कहा गया।

प्र.101. मुनि भगवंत का वर्ण कृष्ण क्यों कहा गया ?

- उ. 1. जिस प्रकार एक व्यक्ति जब युद्ध भूमि में जाता है तब काले वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार साधु कर्म शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिये संयम की रणस्थली में उपस्थित होता है, अतः उसका कृष्ण वर्ण कहा गया है।
2. जिस प्रकार काले रंग पर अन्य रंगों का प्रभाव नहीं होता, उसी प्रकार साधु पर राग-द्वेष का प्रभाव नहीं होने से उसका कृष्ण वर्ण कहा गया है।

प्र.102. सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चरित्र-तप का श्वेत वर्ण क्यों कहा गया?

- उ. रत्नत्रयी एवं तप का वर्ण श्वेत कहा गया क्योंकि ये चारों आत्मा के मूल गुण-धर्म हैं। धर्म आत्मा का विशुद्ध स्वभाव होने से इनका वर्ण भी श्वेत कहा गया।

प्र.103. तो क्या महाराजश्री! इन श्वेत, रक्तादि वर्णों में कोई वैज्ञानिक कारण मौजूद है?

- उ. हाँ! जैन दर्शन का प्रत्येक सूत्र, मंत्र व

सिद्धान्त वैज्ञानिकता की विभा से ओतप्रोत है। जरूरी है उस विज्ञान को प्रकट किया जाये।

हमारे महान् आचार्यों ने हर सूत्र-सिद्धान्त पर गहरा विश्लेषण एवं मनन किया है। उन्हें अनावृत्त कर विश्व साहित्य तथा विज्ञान पर महान् उपकार किया है। वे सिद्धान्त जीवन अभ्युदय एवं मानसिक शान्ति में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं, हो रहे हैं।

जैसे रात्रि भोजन का निषेध जीव दया के साथ स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भी अत्यन्त उपयोगी है। आज चिकित्सक रात्रि भोजन, तामसिक, अतिभोजन का निषेध करते हैं, जिसे परमात्मा महावीर 2500 वर्ष पूर्व कह चुके हैं। ऐसे अनेकानेक तथ्य हैं जिनके प्रकटीकरण की अनिवार्य आवश्यकता है।

इन पांचों वर्णों के संयोजन में विज्ञान की रोशनी भी रही हुई है।

1. हमारे मस्तिष्क तथा पृष्ठरज्जु में धुसर रंग का एक द्रव पदार्थ है, जो कि सम्पूर्ण ज्ञान शक्तियों का संवाहक है। 'नमो अरिहंताण' इस परम पद का मस्तिष्क पर श्वेत वर्ण के साथ यदि जाप किया जाये तो ज्ञान तंतुओं को जागृत/विकसित करने वाला द्रव स्रावित होता है। ज्ञान संवाहक ग्रंथियाँ स्वतः सक्रिय होती हैं और अज्ञान आवरण विलीन होते जाते हैं।

2. 'नमो सिद्धाणं' का जाप रक्त वर्ण से

यदि भृकुटि पर किया जाये तो तृतीय नेत्र जागृत होता है, पिच्यूटरी ग्लैण्ड (पीयूष ग्रंथि के) स्राव संतुलित होते हैं। आलस्य, प्रमाद और सुस्ती नौ दो ग्यारह हो जाते हैं तथा तन, मन व बुद्धि में नयी स्फूर्ति भर जाती है।

3. 'नमो आयरियाणं' पद के ध्यान से व्यक्ति की प्रवृत्ति, मानसिक स्थिति और आवेग नियन्त्रित होते हैं।

इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण यह है कि इस पद का कण्ठ पर तेजोमय पीत वर्ण के साथ ध्यान करने पर मन, संतुलित, स्थिर, एकाग्र, निश्चित और पवित्र बनता है क्योंकि इससे कण्ठस्थ थाइराइड ग्लैण्ड के स्राव नियमित होते हैं।

4. 'नमो उवज्झायाणं' मद्द का हरा रंग है। हरा वर्ण शान्ति खुशहाली, समृद्धि का प्रतीक है और इनका स्थान हृदय है। अतः इस पद का हृदय पर जाप करें तो स्वतः स्वस्थता, शान्ति एवं आनंद से परिपूर्ण स्थिति बन जाती है।

5. पंचम पद का वर्ण है—काला। काला रंग बाह्य प्रभावों को रोकता है इसलिये छाता व न्यायाधीश एवं वकील का काला कोट होता है। इस पद का नाभि पर ध्यान करने पर राग-द्वेष के प्रभाव दूर हो जाते हैं।



जैन क्रिया मीमांसा

1. अतिक्रमण का प्रतिक्रमण
2. समत्व की उपासना : सामायिक
3. चतुर्विंशतिस्तव और वंदनक
4. पापों की आलोचना : प्रतिक्रमण
5. संवर की साधना : प्रत्याख्यान

अतिक्रमण का प्रतिक्रमण

प्र.104. प्रतिक्रमण किसे कहते हैं?

उ. पापों से पीछे हटने की प्रक्रिया को प्रतिक्रमण कहते हैं। पूर्वकृत अपराधों एवं अतिचारों का मिच्छामि दुक्कडम् देकर प्रायश्चित्त करने को प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्र.105. प्रतिक्रमण को शास्त्रों में आवश्यक क्रिया क्यों कहा गया है?

उ. दिन और रात्रि के अन्त में साधु और श्रावक के लिये अवश्यमेव करणीय है, अतः प्रतिक्रमण को शास्त्रों में आवश्यक क्रिया कहा गया है।

प्र.106. आवश्यक कितने प्रकार के होते हैं?

उ. छह प्रकार के—1. सामायिक 2. चतुर्विंशतिस्तव 3. वंदनक 4. प्रतिक्रमण 5. कायोत्सर्ग 6. प्रत्याख्यान।

प्र.107. आवश्यक जब छह प्रकार के कहे गये हैं तो फिर इसे प्रतिक्रमण क्यों कहा जाता है?

उ. छह आवश्यकों में से प्रतिक्रमण आवश्यक सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण है, इसलिये इसे प्रतिक्रमण कहा जाता है।

प्र.108. छह आवश्यक के क्रमिक कथन का कारण बताईए।

उ. 1. किसी भी रोगी को यदि रोग मुक्त होना है तो दो बातों का ज्ञान आवश्यक है— 1. मैं रोगी हूँ। 2.

मुझे रोग का परिहार करना है। इस हेतु व्यक्ति चिकित्सालय में जाता है।

इसी प्रकार राग—द्वेष की बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति स्वस्थ होने के लिये 'मैं आत्मा हूँ और मुझे परमात्मा होना है।' यह निश्चय करके सामायिक रूपी अस्पताल में प्रविष्ट होता है। (सामायिक आवश्यक)

2. रोगी सर्वप्रथम मुख्य चिकित्सक के पास पहुँचता है। चिकित्सक जांच करके सारी बातें परची पर अंकित करता है, उसी प्रकार चौबीस तीर्थकरों का सानिध्य प्राप्त करके व्यक्ति उनकी स्तुति एवं भक्ति करता है। (चतुर्विंशति स्तव आवश्यक)

3. परची पर लिखित मुख्य बातों को समझने के लिये वह सहयोगी चिकित्सक (कंपाउंडर) के पास पहुँचता है, उसी प्रकार जिन प्ररूपित तत्त्व को समझने के लिए व्यक्ति गुरु महाराज के पास पहुँचता है और वंदना करता है। (वंदनक आवश्यक)

4. कंपाउंडर रोगी को याद करवाता है कि रोग कैसे हुआ, फिर



चिकित्सा करता है, वैसे ही गुरु महाराज के पास व्यक्ति कर्म व्याधि को समझकर प्रतिक्रमण के द्वारा दोषों की शल्य-चिकित्सा करता है। (प्रतिक्रमण आवश्यक)

5. जैसे शल्य चिकित्सा के बाद रोगी दवाई लेता है वैसे आत्मिक स्वास्थ्य लाभ के लिए कायोत्सर्ग रूप औषधि लेता है। (कायोत्सर्ग आवश्यक)
6. दवाई लेने मात्र से व्यक्ति स्वस्थ नहीं होता बल्कि परहेज भी जरूरी होता है। उसी प्रकार कायोत्सर्ग की औषधि लेने के उपरान्त अतिचार, अनाचार आदि पापों का त्याग/परहेज किया जाता है। (प्रत्याख्यान आवश्यक)

प्र.109. छह आवश्यकों को चिकित्सा के रूप में विभक्त करो।

- उ. 1. सामायिक – हॉस्पिटल
 2. चतुर्विंशति स्तव – मेन डॉक्टर
 3. वंदनक – असिस्टेंट डॉक्टर
 4. प्रतिक्रमण – ऑपरेशन
 5. कायोत्सर्ग – ड्रेसिंग – मेडिसीन
 6. प्रत्याख्यान – प्रिकोशन

प्र.110. छह आवश्यक के क्या लाभ हैं?

- उ. 1. सामायिक— समता में वृद्धि एवं सावद्य योगों से विरति।
 2. चतुर्विंशति स्तव—गुणी के गुण—गान से गुणों की प्राप्ति।
 3. वंदनक— नीच गोत्र का क्षय एवं उच्च गोत्र की प्राप्ति।

4. प्रतिक्रमण— पाप कर्मों से आत्मा की शुद्धि—विशुद्धि।

5. कायोत्सर्ग— शरीर के प्रति ममत्व का त्याग।

6. प्रत्याख्यान— पाप कर्म से मुक्ति एवं कर्म—निर्जरा।

प्र.111. प्रतिक्रमण के पाँच प्रकारों को स्पष्ट करो।

- उ. 1. दिन भर में हुए पापों की आलोचना के लिये दिवस के अन्त में किया जाने वाला **देवसिक** प्रतिक्रमण।
 2. रात्रि में हुए पापों की आलोचना के लिये रात्रि के अंत में किया जाने वाला **रात्रिक (राइ)** प्रतिक्रमण।
 3. पक्ष (15 दिन) में हुए पापों की आलोचना के लिये पक्ष के अन्त में किया जाने वाला **पाक्षिक** प्रतिक्रमण।
 4. चार माह में हुए पापों की आलोचना के लिये चार माह के अन्त में किया जाने वाला **चातुर्मासिक** प्रतिक्रमण।
 5. वर्ष भर में हुए पापों की आलोचना के लिये वर्ष के अन्त में किये जाने वाला **सांवत्सरिक** प्रतिक्रमण।

प्र.112. प्रतिक्रमण कितने कारणों से किया जाता है?

- उ. पाँच कारणों से—
 1. **मिथ्यात्व**— यदि कुदेव, कुगुरु और कुधर्म में श्रद्धा रखी हो।
 2. **अविरति**— जो कुछ सावद्य (पाप युक्त) प्रवृत्ति की हो।

3. प्रमाद—आत्मकल्याण के लिये उचित अवसर एवं समय का उपयोग नहीं किया हो।

4. कषाय—क्रोध—मान—माया— लोभ किया हो।

5. योग— मन, वचन और काया की अशुभ प्रवृत्ति की हो।

प्र.113. छह आवश्यकों में से देव, गुरु व धर्म के कितने आवश्यक हैं?

- उ. 1. देव—(एक) चतुर्विंशतिस्तव आवश्यक।
2. गुरु — (एक) वंदनक आवश्यक।
3. धर्म — शेष चार आवश्यक।

प्र.114. महाराजश्री! प्रतिक्रमण एवं सामायिक में चरवले के अभाव में खड़े होने का निषेध किया जाता है, इसका क्या कारण है?

उ. प्रमार्जन प्रतिक्रमण का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। चरवले के अभाव में व्यक्ति पृष्ठ भाग की, अग्र भाग की, घुटने आदि संधि द्वारों की प्रमार्जना नहीं कर पाएगा। अतः चरवले के अभाव में खड़े होने का निषेध किया जाता है।

प्र.115. महाराजश्री! शास्त्रों में उपधान, उपवास आदि तपश्चर्या के दौरान तीन बार देववंदन का कथन किया गया है जबकि खरतरगच्छ में एक बार ही देववंदन करने की परम्परा दिखायी देती है, तो क्या इसमें शास्त्राज्ञा का उल्लंघन नहीं है?

उ. नहीं, ऐसा नहीं है। खरतरगच्छ की परम्परा में सुबह प्रतिक्रमण के लगभग अन्त में तथा शाम प्रतिक्रमण के प्रारंभ में चार चार स्तुतियों के द्वारा एवं दोपहर को एक बार, इस प्रकार शास्त्रानुसार तीन बार देववंदन किया जाता है।

प्र.116. खरतरगच्छ में सामायिक विधि में करेमि भंते सूत्र पहले, इरियावहियं बाद में की जाती है एवं प्रतिक्रमण में अड्डाइज्जेसु नहीं कहा जाता है तथा सज्जाय भी नहीं करते हैं, इनके भी कारण बताने की कृपा कीजिये।

- उ. 1. आगमों में सामायिक में पहले करेमि भंते सूत्र तत्पश्चात् इरियावही करने की आज्ञा है।
2. श्री जिनवल्लभसूरि, दादा श्री जिनदत्तसूरि, श्री जिनपतिसूरि, समयसुंदरजी आदि द्वारा रचित समाचारी प्रकरणों में अड्डाइ—ज्जेसु बोलने का निषेध किया गया है। यह भेद केवल समाचारी का है।
3. खरतरगच्छीय समाचारी प्रकरणों में श्रावकों के लिये सज्जाय बोलने का निषेध कहने के पीछे तर्क यह है कि पूर्वकाल में प्रतिक्रमण के बाद साधु एकत्र होकर आगमों का स्वाध्याय करते थे, अतः साधु ही प्रतिक्रमण में सज्जाय बोलते हैं।

प्र.117. प्रतिक्रमण में छह आवश्यक कहाँ—
कहाँ होते हैं?

उ. सव्वस्सवि से प्रतिक्रमण की स्थापना से प्रतिक्रमण का प्रारम्भ होता है, उसके बाद:—

1. करेमि भंते से आठ नवकार के कायोत्सर्ग तक प्रथम आवश्यक ।
2. तत्पश्चात् बोला जाने वाला लोगस्स द्वितीय आवश्यक ।
3. तत्पश्चात् मुँहपत्ति प्रतिलेखन एवं वन्दनक द्वय से तीसरा आवश्यक ।
4. तत्पश्चात् देवसिअं आलोउं से आयरिय उवज्झाय तक चौथा आवश्यक ।
5. तत्पश्चात् दो एवं एक—एक लोगस्स का किया जाने वाला कायोत्सर्ग पाँचवां आवश्यक ।
6. तत्पश्चात् मुँहपत्ति प्रतिलेखन द्वारा वंदनक देकर प्रत्याख्यान करना छद्दा आवश्यक ।

प्र.118. सूत्र कंठस्थ करते समय किन तथ्यों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये?

- उ.
1. पुस्तक को जमीन अथवा आसन पर न रखकर ठवणी का उपयोग करना ।
 2. पुस्तक को थूँक नहीं लगाना ।
 3. पढते समय अवश्यमेव मुँहपत्ति का उपयोग करना ।

4. पुस्तक को योग्य स्थान पर रखना ।

5. ज्ञान प्राप्ति हेतु प्रतिदिन ज्ञान के पाँच खमासमणे देना, यथासंभव पाँच लोगस्स का कायोत्सर्ग करना ।

6. सूत्र का उच्चारण स्पष्ट एवं शुद्ध रूप से करना ।

7. जल्दबाजी में अक्षर पर अक्षर चढ़ जाये, ऐसे नहीं बोलना ।

8. गुरु भगवंत से गाथा लेने एवं सुनाने से पूर्व वंदन करना ।

प्र.119. प्रतिक्रमण के सूत्र प्राकृत में होने से उनका अर्थ तो समझ में आता नहीं है फिर उनका क्या लाभ है?

उ. वंदित्तु सूत्र की 38 वीं गाथा में कहा गया है—

जहा विसं कुट्टगयं, भंत मूल विसारया ।

विज्जाहणन्ति मन्तेहि, तोतं हवइ निव्विसं ॥

एक व्यक्ति, जिसे सर्प ने दंश दिया है, वह व्यक्ति यद्यपि गारुडी मंत्राक्षरों का अर्थ नहीं जानता है तथापि उस मंत्र से विषमुक्त हो जाता है, वैसे ही प्रतिक्रमण का हर सूत्र मंत्र स्वरूप है। उसका अर्थ नहीं आता है, फिर भी चेतन, मन एवं विचारों पर प्रभाव अवश्यमेव पड़ता है। यदि अर्थ आता है तो और अधिक आनंद की प्राप्ति होती है। अतः अर्थ — बोध का प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।



समत्व की उपासना : सामायिक

प्र.120. सामायिक किसे कहते हैं?

उ. जिस क्रिया से समता रूपी लाभ-आय की प्राप्ति होती है, उसे सामायिक कहते हैं।

कम से कम 48 मिनट तक समस्त पापकारी प्रवृत्तियों का त्याग करके आत्म कल्याण हेतु स्वाध्याय, ध्यान आदि कार्य करना सामायिक कहलाता है।

प्र.121. महाराजश्री! हमने लोगों के मुख से सुना है कि 'सामायिक में यदि व्यक्ति 48 मिनट से ज्यादा बैठता है तो दोष लगता है अतः 48 मिनट पूर्ण होते ही सामायिक पार लेनी चाहिये' इस कथन की सत्यता प्रकट करें।

उ. सामायिक का न्यूनतम काल 48 मिनट का एवं अधिकतम छह माह है, अतः उससे पहले पारने पर दोष लगता है पर बाद में पारने पर नहीं। वैसे ही जैसे चार माह का वाहन त्यागी यदि उससे अधिक समय तक वाहन का त्याग करता है तो हानि नहीं होती, अपितु लाभ ही होता है।

प्र.122. सामायिक लेने का सूत्र कौनसा है?

उ. करेमि भंते।

प्र.123. करेमि भंते में छह आवश्यक किस प्रकार अभिव्यक्त होते हैं?

- उ. 1. (करेमि) सामाइयं – सामायिक
2. (करेमि) भंते – चतुर्विंशति स्तव
3. (तरस्स) भन्ते – वंदनक
4. पडिक्कमामि – प्रतिक्रमण
5. अप्पाणं वोसिरामि – कायोत्सर्ग
6. पच्चक्खामि – प्रत्याख्यान

प्र.124. तपागच्छ में करेमि भंते एक बार ही बोला जाता है, फिर खरतरगच्छ में तीन बार क्यों बोला जाता है?

उ. कोई भी प्रतिज्ञा सूत्र तीन बार दोहराया जाता है। करेमि भंते सूत्र पापकारी कार्यों के त्याग का संकल्प सूत्र है, अतः इसे तीन बार बोला जाता है।

छोटी दीक्षा के समय तपागच्छ की परम्परा में भी तीन बार करेमि भन्ते बोला जाता है। साधु की छोटी दीक्षा हो अथवा श्रावक की 48 मिनट की सामायिक, दोनों का सामायिक चारित्र कहलाता है।

प्र.125. श्रावक की सामायिक कितने योग एवं करण से होती हैं?

उ. मन, वचन तथा काया, ये तीन योग कहलाते हैं। करना, करवाना एवं अनुमोदन करना, ये तीन करण कहलाते हैं।

सामायिक में श्रावक तीन योगों एवं प्रथम दो करण से पाप क्रिया का त्याग करता है।

प्र.126. तो क्या महाराज श्री! श्रावक सामायिक में सावद्य (पापकारी) कार्यों की अनुमोदना कर सकता है?

उ. बिल्कुल नहीं! यहाँ जिस अनुमोदना की छूट का कथन किया गया है, वह दुकान-मकान आदि से सम्बन्धित होने वाले हिंसाकारी कार्यों का अत्याग होने से है, क्योंकि उनकी सूक्ष्म रूप से अनुमोदना चालू है। परन्तु श्रावक सामायिक में चलाकर हिंसा, चोरी आदि की अनुमोदना कदापि नहीं कर सकता।

प्र.127. सामायिक में करणीय एवं अकरणीय कार्य बताओ।

उ. 1. सामायिक में प्रवचन श्रवण, जाप, ध्यान, कायोत्सर्ग, स्वाध्याय, तत्त्व - चर्चा, पुनरावर्तन आदि धार्मिक क्रियाएँ करनी चाहिये।
2. सामायिक में निंदा, विकथा, अखबार अथवा स्कूलों की पुस्तकों का पठन आदि कार्य नहीं करने चाहिये। इसी तरह सावद्य कार्यों का आदेश-उपदेश भी नहीं देना चाहिए।

प्र.128. सामायिक का माहात्म्य बताओ।

उ. एक व्यक्ति एक वर्ष तक प्रतिदिन 20 मण की एक खण्डी और ऐसी एक लाख खण्डी स्वर्ण मुद्राओं का दान

करें और एक व्यक्ति शुद्ध श्रद्धापूर्वक एक सामायिक करें तो भी सामायिक अधिक लाभप्रद है। शुद्ध सामायिक व्रताराधना से जीव जघन्यतः तीन भवों में एवं उत्कृष्टतः 15 भवों में मोक्षगामी होता है।

प्र.129. सामायिक में चार धर्मों का पालन किस प्रकार होता है?

उ. 1. समस्त पाप क्रियाओं का त्याग होने से व सकल सृष्टि को अभयदान से दान धर्म पलता है।
2. विजातीय स्पर्श-संपर्क का त्याग होने से शील धर्म पलता है।
3. चारों आहारों का त्याग होने से तप धर्म पलता है।
4. धर्मध्यान होने से भाव धर्म पलता है।

प्र.130. सामायिक में ऊनी आसन क्यों रखना चाहिए?

उ. ऊनी वस्त्र ऊर्जा को संग्रहित करता है, अतः जाप आदि धर्म क्रिया से उत्पन्न सकारात्मक ऊर्जा भूमि में जाने से रुक जाती है। उसका संग्रह त्रियों को एकाग्र, पवित्र एवं निर्मल बनाता है।

प्र.131. आसन, मुँहपत्ति और चरबले का कितना प्रमाण होना चाहिये?

उ. 1. आसन- स्वयं की बैठक से डेढ़ गुणा (समचौरस)।
2. मुँहपत्ति- एक वेंत चार अंगुल प्रमाण (समचौरस)।



3. चरवला— डण्डी 24 अंगुल प्रमाण
एवं दस्सियाँ 8 अंगुल प्रमाण।

प्र.132. एक साथ कितनी सामायिक ली जा सकती है?

उ. एक साथ दो सामायिक ली जा सकती है।

प्र.133. सामायिक में रहा हुआ साधक बिना पारे और कितनी सामायिक कर सकता है ?

उ. बिना पारे दो और सामायिक की जा सकती है। परन्तु क्रिया में थोड़ा फर्क होता है। सामायिक पारे बिना पुनः सामायिक लेने पर सबसे पहले मुँहपत्ति पडिलेहण पूर्वक तीन बार करेमि भंते बोलना चाहिये। इरियावही, बेसणो आदि करने की जरूरत नहीं होती। सज्जाय के आदेश में 'सज्जाय में हूँ' ऐसा कहना चाहिये। चौथी सामायिक लेने से पहले सामायिक पारनी ही होती है।

प्र.134. चलती हुई ट्रेन में सामायिक की जा सकती है अथवा नहीं?

उ. श्रीपाल—मयणा सुन्दरी के कथानक में जहाज में सामायिक व्रत करने का प्रसंग आता है, उस आधार पर ट्रेन में सामायिक की जा सकती है परन्तु उसमें विजातीय, सचित्त आदि के संघट्टे का पूर्ण विवेक रखना चाहिये।

प्र.135. सामायिक के कितने दोष कहे गये हैं?

उ. 10 मन के, 10 वचन के और 12 काया के—कुल 32 दोष।

प्र.136. किनकी सामायिक जिनशासन में प्रसिद्ध है?

उ. पूणिया श्रावक एवं केसरी चोर की।

प्र.137 सामायिक में बारह प्रकार के तप किस प्रकार पलते हैं ?

उ. (1-4) सामायिक में भोजन का सर्वथा त्याग होने से अनशन, उणोदरी, वृत्ति—संक्षेप एवं रस परित्याग, इन चार प्रकार के तपों का स्वयमेव पालन होता है।

(5) काय—क्लेश— पंखे आदि बाह्य सुविधाओं का त्याग होता है।

(6) संलीनता—शरीर की क्रियाओं कासंकोच किया जाता है।

(7) आलोचना—पूर्वकृत पापों की पुनः पुनः आलोचना, निंदा, गर्हा की जाती है।

(8) विनय—गुरु आदि का विनय किया जाता है।

(9) वैयावच्च—गुरु भगवंतों की सेवा की जाती है।

(10) स्वाध्याय— होता है।

(11) धर्म—ध्यान व शुक्ल ध्यान ध्याया जाता है।

(12) कायोत्सर्ग—किया जाता है।

चतुर्विंशतिस्तव और वन्दनक

प्र. 138. चतुर्विंशति स्तव से क्या अभिप्राय है?

उ. चौबीस तीर्थकरों की स्तुति/स्तवना करना चतुर्विंशति स्तव कहलाता है। यह आवश्यक लोगस्स सूत्र के द्वारा किया जाता है।

प्र. 139. वंदनक से क्या अभिप्राय है?

उ. सद्गुरु के चरणों की वंदना एवं उनका गुणोत्कीर्तन करना वंदनक आवश्यक कहलाता है।

प्र. 140. वंदनक में मुँहपत्ति खुली क्यों रखी जाती है?

उ. मुँहपत्ति में गुरु महाराज के चरण युगल की कल्पना करते हुए वंदनक में मुँहपत्ति खुली रखी जाती है।

प्र. 141. किसकी वंदना जगत में सुप्रसिद्ध है?

उ. वासुदेव श्रीकृष्ण की।

प्र. 142. वंदन कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. तीन प्रकार के -

1. फेटा वंदन- मार्ग में गुरु भगवंत के दर्शन होने पर 'मत्थएण वंदामि' से किया जाने वाला वंदन।
2. थोम वंदन- पंचांग प्रणिपात अर्थात् इच्छकार एवं अब्भुट्टियो से किया जाने वाला वंदन।
3. द्वादशावर्त्त वंदन- वंदनकद्वय (अहो कायं काय) से किया जाने वाला वंदन।

प्र. 143. अब्भुट्टियो का पाठ बोलते समय हाथ खुला रखना चाहिये या बंद?

उ. अब्भुट्टियो बोलते समय व्यक्ति गुरु के प्रति हुए अविनयादि व्यवहार की

क्षमायाचना करता है, अतः गुरु महाराज के चरण स्पर्श का भाव धारण करते हुए हाथ खुला रखना चाहिये।

प्र. 144. ऐसा कौनसा सूत्र है, जिससे भगवान एवं गुरु महाराज, दोनों को वंदना की जाती है?

उ. इच्छामि खमासमणो सूत्र।

प्र. 145. वंदन करते समय क्या क्या सावधानी बरतनी चाहिये?

- उ. 1. मार्ग में गुरु महाराज चल रहे हो तो तब मध्य में गुरु वंदन मात्र 'मत्थएण वंदामि' कहकर करना चाहिए।
2. गुरु महाराज जब आहार, विहार एवं लघुनीति-बडीनीति हेतु उद्यत हो तब वंदना नहीं करनी चाहिए।
3. 'इच्छामि खमासमणो' बोलते समय 'मत्थएण वंदामि' उच्चारण के साथ सिर का भूमि से स्पर्श होना चाहिये।
4. जब गुरु प्रशान्त एवं प्रसन्न मुद्रा में हो, आसन पर अप्रमत्त भाव से बिराजमान हो एवं वंदन करने वाले पर उनका ध्यान हो तब गुरु वंदन करना चाहिये।
5. मुनिवर, गुरु आदि से विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त कर रहे हो तो बीच में जाकर वंदन नहीं करके दूर से ही वंदन करना चाहिये।



पापों की आलोचना : प्रतिक्रमण

प्र.146. प्रतिक्रमण आवश्यक किसे कहते हैं?

उ. श्रमण के द्वारा पंचमहाव्रत आदि श्रमणाचार में और श्रावक के द्वारा बारह व्रत आदि श्रावकाचार में जो अतिचार/अनाचार का सेवन हुआ है, उनकी आलोचना जिस आवश्यक के द्वारा होती है, उसे प्रतिक्रमण आवश्यक कहते हैं।

प्र.147. प्रतिक्रमण में कभी बायाँ घुटना और कभी दायाँ घुटना ऊँचा किया जाता है, इसका क्या कारण है?

उ. 1. जब कभी विनय, नमन आदि भाव प्रकट करने होते हैं, तब बायाँ घुटना ऊँचा किया जाता है। इस घुटने को ऊँचा करने से शरीर में वे ग्रन्थियाँ एवं रस स्रावित होते हैं, जिनसे विनय गुण पुष्ट एवं प्रकट होता है। जं किंचि, नमुत्थुणं आदि विनय प्रकट करने के सूत्र हैं, अतः उस समय बायाँ घुटना ऊँचा किया जाता है।
2. दायाँ घुटना ऊँचा करके वंदितु सूत्र के द्वारा व्यक्ति स्वयं के दुष्कृत्यों की निंदा करने का वीरतापूर्ण कार्य करता है। दायाँ घुटना ऊँचा करने से जो मुद्रा

निर्मित होती है, उससे वीरतापूर्ण रस स्रावित करने वाली ग्रन्थियाँ सक्रिय होती हैं, अतः वंदितु सूत्र में दायाँ घुटना ऊँचा किया जाता है।

प्र.148. वंदितु सूत्र बोलते समय उसके बीच में खड़े क्यों होते हैं?

उ. बारह व्रतों में लगे अतिचारों की आलोचना करने के उपरान्त व्यक्ति पाप के भार से हल्का हो जाता है, इस कारण वंदितु सूत्र के मध्य में खड़ा हुआ जाता है।

प्र.149. प्रतिक्रमण आवश्यक के कौन-कौनसे सूत्र हैं?

उ. वंदितु, इच्छामि पडिक्कमिऊँ, सात लाख, अठारह पाप स्थानक आदि।

प्र.150. ऐसा कौनसा शब्द है, जिससे बार-बार प्रतिक्रमण किया जाता है?

उ. मिच्छामि दुक्कडम्।

प्र.151. कायोत्सर्ग से क्या अभिप्राय है?

उ. काया के प्रति आसक्ति का त्याग करके आत्मध्यान में उपस्थित होना कायोत्सर्ग कहलाता है।

प्र.152. कायोत्सर्ग के संदर्भ में आवश्यक जानकारी दीजिये।

उ. 1. कायोत्सर्ग में दृष्टि नासिका के

- अग्रभाग पर स्थापित करनी चाहिए। संभव न हो तो नयन बंद कर लेने चाहिए।
2. कायोत्सर्ग में दोनों पाँवों के अग्रभाग में चार अंगुल एवं पीछे चार अंगुल से कुछ कम प्रमाण अंतर रखना चाहिये।
 3. कायोत्सर्ग में चरवला बाये हाथ में होना चाहिये। उसकी डंडी बाहर की ओर निकली हुई होनी चाहिए। मुँहपत्ति दाये हाथ में रखनी चाहिये।
 4. हाथ-पाँव हिलाये बिना एकाग्र चित्त से कायोत्सर्ग करना चाहिये। लोगस्स आता हो तो लोगस्स से ही कायोत्सर्ग करना चाहिये। नवकार गिनना लोगस्स नहीं आने की स्थिति में ही उपयुक्त है।

प्र.153. कौनसा प्रतिक्रमण सम्पूर्ण वर्ष में कितनी बार आता है ?

- उ. (1) देवसिक एवं रात्रिक प्रतिक्रमण प्रतिदिन होता है।
 (2) पाक्षिक प्रतिक्रमण इक्कीस बार।
 (3) चातुर्मासिक प्रतिक्रमण तीन बार।
 (4) सांवत्सरिक प्रतिक्रमण एक बार।

प्र.154. प्रतिक्रमण किस – किसका किस सूत्र से किया जाता है ?

- उ. (1) मिथ्यात्व का—अठारह पापस्थानकों के पाठ से।
 (2) अविरति का—इच्छामि पडिक्कमिउं एवं वंदित्तु सूत्र से।
 (3) प्रमाद का—इरियावही, वंदित्तु से।
 (4) कषाय का—अठारह पापस्थानक एवं इच्छामि पडिक्कमिउं से।
 (5) अशुभ योग का—सात लाख आदि से।



संवर की साधना : प्रत्याख्यान

प्र.155. प्रत्याख्यान से क्या अभिप्राय है?

उ. पाप क्रिया का मर्यादा पूर्वक त्याग करना प्रत्याख्यान कहलाता है।

प्र.156. प्रतिक्रमण में कौनसे प्रत्याख्यान लिये जाते हैं?

उ. 1. पाणाहार—गर्म (अचित्त) पानी युक्त यानि उपवास, आयम्बिल, नीवी, एकासन, बियासन करने वाले के पाणाहार का प्रत्याख्यान होता है।

2. चौविहार— रात्रि में पानी का सर्वथा त्याग करने वाले के चौविहार का प्रत्याख्यान होता है।

3. दुविहार— रात्रि में केवल पानी पीने वालों के दुविहार का प्रत्याख्यान होता है। तपागच्छ में तिविहार का प्रत्याख्यान होता है।

प्र.157. विविध प्रत्याख्यानों के संदर्भ में जानकारी दीजिये।

उ. 1. नवकारसी— सूर्योदय से 48 मिनट बाद आती है।

2. पोरिसी— सूर्योदय से एक प्रहर बाद आती है।

3. साड्डपोरिसी— सूर्योदय से डेढ प्रहर बाद आती है।

4. पुरिमड्ड— सूर्योदय से दो प्रहर

बाद आता है।

5. अवड्ड— सूर्योदय से तीन प्रहर बाद आता है।

6. बियासना— दिन में दो बार ही आहार लेना।

7. एकासना— दिन में एक बार ही आहार लेना।

8. नीवी— छह विकृतियों का त्याग करके एक बार आहार लेना।

9. आयंबिल— छह विकृति, नमक आदि मसालों से रहित उबला हुआ शुद्ध आहार लेना।

10. तिविहार उपवास — केवल उबला हुआ पानी लेना।

11. चौविहार उपवास — भोजन व पानी का सर्वथा त्याग करना।

प्र.158. एक प्रहर तीन घण्टे का होता है अथवा उससे कम—ज्यादा?

उ. प्रहर का मान दिन—रात्रि के मान के अनुसार बदलता रहता है। दिन चार प्रहर का और रात्रि चार प्रहर की होती है। जैसे यदि सूर्योदय 6 बजे और सूर्यास्त 7 बजे होता है तो दिन 13 घण्टे का होता है। एक दिन में चार प्रहर होने से एक प्रहर 3 घण्टा 15

मिनट हुआ। इस समय के अनुसार--

(i) पोरिसी— 6 (सूर्योदय) + 3 घण्टा 15 मिनट (1 प्रहर) = 9 बजे 15 मिनट।

(ii) साड्डपोरिसी — 6 (सूर्योदय) + 4 घण्टा 52 मिनट 30 सैकेण्ड (डेढ प्रहर) = 10 बजे 52 मिनट 30 सैकेण्ड।

(iii) पुरिमड्ड — 6 (सूर्योदय) + 6 घण्टा 30 मिनट (दो प्रहर) = 12 बजे 30 मिनट।

(iv) अवड्ड— 6 (सूर्योदय) + 9 घण्टा 45 मिनट = 3 बजे 45 मिनट।

प्र.159. नवकारसी, पोरिसी कब लेने चाहिये?

उ. नवकारसी, पोरिसी, साड्डपोरिसी के प्रत्याख्यान सूर्योदय से पूर्व तथा पुरिमड्ड, अवड्ड के प्रत्याख्यान दिन के प्रथम प्रहर के अन्दर अन्दर लेने चाहिए। यह शास्त्रोक्त विधि है। कदाच सविधि नहीं हो पाये तो भी प्रत्याख्यान तो लेने ही चाहिये, उसका लाभ अवश्य प्राप्त होता है।

प्र.160. महाराज श्री! पूर्व में रात्रि भोजन किया हो तो दूसरे दिन उपवास किया जा सकता है या नहीं?

उ. उपवास के संदर्भ में शुद्ध शास्त्रीय परम्परा इस प्रकार है कि उपवास के

पूर्व दिन एवं पारणे के दिन एकासन तप करना चाहिए। इस प्रकार की परम्परा वर्तमान में लुप्त प्रायः हो चुकी है पर यह तो स्पष्ट ही है कि उपवास से पहली रात्रि में भोजन का सर्वथा निषेध करना चाहिये।

प्र.161. प्रत्याख्यान के परिप्रेक्ष्य में किन किन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिये?

- उ. 1. एकासने का प्रत्याख्यान करने वाला प्रत्याख्यान पारणे से पूर्व उससे बड़े यानि नीवी, आयंबिल, उपवास का प्रत्याख्यान कर सकता है परन्तु छोटे प्रत्याख्यान यथा बियासना आदि नहीं कर सकता है।
2. बियासने से उपवास तक के प्रत्याख्यान में अचित्त पानी का उपयोग होता है, कच्चे (सचित्त) पानी का नहीं। तीन बार उबाल आने पर ही पानी पूरी तरह अचित्त होता है।
3. उपवास के पूर्व दिन गरिष्ठ एवं अधिक नमकीन भोजन का त्याग करना चाहिए।
4. प्रत्याख्यान में क्रोध, अहंकार एवं निंदा का त्याग एवं ब्रह्मचर्य पालन, आत्म चिंतन और स्वाध्याय

अवश्य करना चाहिए।

5. मंजन आदि करके नवकारसी आदि प्रत्याख्यान नहीं किये जा सकते हैं।
6. एकासन आदि करते समय पट्ट स्थिर होना चाहिये। झूठे मुँह नहीं बोलना चाहिए एवं उठते समय तिविहार का प्रत्याख्यान करना चाहिये। बियासने में दूसरा भोजन करने के बाद तिविहार का प्रत्याख्यान करना चाहिये।

प्र.162. उपवास आदि में सचित्त जल को गर्म करके अचित्त किया जाता है, इससे असंख्य जीवों की विराधना होती है। प्रत्याख्यान में भला ऐसी जीव-हिंसा का क्या औचित्य है?

- उ. सम्भवतः आपको पता नहीं होगा कि पानी में प्रतिपल असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं एवं मृत्यु को प्राप्त होते हैं। जन्म-मरण की इस अन्तहीन परम्परा को रोकने के लिये पानी गर्म किया जाता है। यद्यपि एक बार जीव हिंसा का दोष तो लगता है तथापि कुछ घण्टों के लिये वह पानी अचित्त हो जाता है जिससे जीवों के जन्म-मरण की हिंसा के महा-दोष से भी बचा जाता है।

उष्ण जल का काल चातुर्मास में तीन

प्रहर, तत्पश्चात् फाल्गुन चातुर्मास तक चार प्रहर एवं आषाढ मास तक पाँच प्रहर का कहा गया है।

प्र.163. महाराजश्री! खरतरगच्छ और तपागच्छ की परम्परा में दुविहार और तिविहार का भेद क्यों दिखायी देता है?

- उ. शास्त्रीय कथन है— 'जत्थ जलं तत्थ वणं।' जहाँ जल है, वहाँ वनस्पति है। इसके आधार पर खरतरगच्छ में दुविहार का प्रत्याख्यान करके दो आहार अशन और खादिम का त्याग किया जाता है और जल एवं उसके अन्तर्गत वनस्पति की छूट रखी जाती है।

प्र.164. महाराजश्री! खरतरगच्छ में श्रावकों को पाणस्स के छह आगार 'पाणस्स लेवेणवा अलेवेण वा.....' बोलने का निषेध किया गया है, जबकि अन्य परम्पराओं में ये आगार बोले जाते हैं, इस भेद का कारण शास्त्रीय है या पारम्परिक?

- उ. खरतरगच्छ की यह परम्परा शास्त्रोक्त प्रमाणित है। इसके तीन आधार हैं—

1. शास्त्रों में निषेध — श्री वृहद्-भाष्य में कहा है— 'ए ए छ आगारा

साहूणं न पुण सङ्घाणं ।' उष्ण जल से संबंधित छह आगार साधु के लिये हैं, श्रावकों के लिये नहीं ।

2. परम्परा — दादा श्री जिनदत्तसूरि ने इसका सूत्रपदोद्घट्टने एवं जिनपतिसूरि ने समाचारी ग्रंथ में इसका निषेध किया गया है ।
3. साधु गौचरी जाते हैं अतः वे सभी प्रकार के प्रासुक जल ले सकते हैं पर गृहस्थ गौचरी नहीं जाता है, अतः उसके लिये शुद्ध उष्ण जल ही ग्राह्य है ।

प्र.165. महाराजश्री! खरतरगच्छ में बेले, तेले, चोले आदि का एक साथ प्रत्याख्यान क्यों नहीं करवाया जाता है?

उ. इसके संदर्भ में विद्वद्वर्य श्री समयसुंदरोपाध्याय ने अनेक तर्क एवं शास्त्रीय प्रमाण समाचारी शतक में प्रस्तुत किये हैं यथा—

1. एकाधिक उपवास कर्ता का मध्य में प्रत्याख्यान खण्डित होने पर पूरा तप खण्डित होगा, जिससे महान् दोष लगेगा ।
2. दो उपवास वाला एक दिन

चौविहार एवं एक दिन तिविहार उपवास करना चाहता है, तो वह कैसे संभव होगा ?

3. भगवती सूत्र के तृतीय एवं सप्तम शतक में, आवश्यक चूर्णि इत्यादि में एक साथ एक उपवास के प्रत्याख्यान का कथन किया गया है ।

प्र.166. छह आवश्यकों में से कितने किस काल से सम्बंधित है ?

- उ. (1) अतीत से सम्बन्धित एक — प्रतिक्रमण
(2) भविष्य से सम्बन्धित एक — प्रत्याख्यान ।
(3) वर्तमान से सम्बन्धित शेष चार ।

प्र.167. प्रतिक्रमण से किन गुणों की प्राप्ति होती है ?

- उ. (1) सम्यक्त्व की प्राप्ति व उसकी विशुद्धि ।
(2) विरति एवं विरक्ति ।
(3) अप्रमाद की साधना ।
(4) कषाय — मुक्ति अथवा उसकी मंदता ।
(5) शुभ योगों से पुण्यानुबंधी पुण्य का संचय ।



जैन तत्त्व मीमांसा

1. तत्त्वत्रयी : सुदेव, सुगुरु, सुधर्म
2. रत्नत्रयी : सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र
3. अष्ट प्रवचन माता : समिति और शुक्ति
4. नवतत्त्व : जिनवाणी का सार



तत्त्वत्रयी : सुदेव, सुगुरु, सुधर्म

प्र.168. तत्त्वत्रयी से क्या अभिप्राय है?

उ. 1. सुदेव 2. सुगुरु 3. सुधर्म।

प्र.169. सुदेव किसे कहते हैं?

उ. जो मिथ्यात्व, कषाय, अविरति, प्रमाद आदि दोषों से मुक्त हो चुके हैं और दूसरों को भी मुक्त करने वाले हैं, जो तिर गये और दूसरों को भी तारने वाले, आत्मबोध देने वाले हैं, उनको सुदेव कहते हैं। अरिहंत एवं सिद्ध परमात्मा सुदेव कहलाते हैं।

प्र.170. अरिहंत परमात्मा कितने गुणधारी होते हैं?

उ. अरिहंत परमात्मा के बारह गुण —
1. अशोक वृक्ष 2. सुरपुष्प वृष्टि 3. दिव्यध्वनि 4. चामर युगल 5. स्वर्ण सिंहासन 6. भामण्डल 7. देव—दुंदुभि 8. छत्रत्रय 9. अपायापगमातिशय 10. ज्ञानातिशय 11. वचनातिशय 12. पूजातिशय। इनमें से प्रथम आठ प्रातिहार्य और शेष चार अतिशय कहलाते हैं।

प्र.171. चार अतिशय से क्या अभिप्राय है?

उ. 1. अपायापगमातिशय — अपाय यानि उपद्रव। अपगम—नाश। जहाँ परमात्मा विचरते हैं, वहाँ चारों दिशाओं में 25 योजन तक एवं ऊपर नीचे साढ़े बारह योजन तक, इस प्रकार कुल 125 योजन पर्यन्त रोग, महामारी, अतिवृष्टि आदि

उपद्रव नहीं होते हैं।

2. ज्ञानातिशय — परमात्मा संपूर्ण लोकालोक को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जानते हैं।

3. वचनातिशय—परमात्मा की वाणी एक योजन (13 कि.मी.) तक सुनायी देती है एवं हर भाषा वाला उसे समझ जाता है। उनकी पैंतीस गुणालंकृत वाणी से समस्त शंकाओं का निवारण होता है। श्रोता को ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा मेरी भाषा में कह रहे हैं। वर्तमान में संसद भवन में भी इस प्रकार के यंत्र लगे हुए हैं कि कोई सांसद मराठी में बोलता है पर प्रत्येक सांसद को अपनी अपनी (तमिल, तेलगु, गुजराती आदि) भाषा में सुनाई देता है।

4. पूजातिशय— इन्द्र, देव, देवी, मनुष्य, तिर्यच, सभी प्रभु की पूजा करते हैं, यह परमात्मा का पूजातिशय है।

प्र.172. सिद्ध परमात्मा के कितने गुण होते हैं?

उ. आठ गुण—1. अनन्त ज्ञान 2. अनन्त दर्शन 3. अनन्त चारित्र 4. अनन्त वीर्य (शक्ति) 5. अव्याबाध सुख 6. अक्षय स्थिति 7. अगुरुलघुत्व 8. अरूपीत्व।

प्र.173. सुगुरु किसे कहते हैं?

उ. जो पंचमहाव्रतों का एवं समिति-गुप्ति का जिनाज्ञानुरूप पालन करते हैं, वे सुगुरु कहलाते हैं। आचार्य, उपाध्याय और मुनि सुगुरु कहलाते हैं।

प्र.174. सुधर्म किसे कहते हैं?

उ. परमात्मा द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों को सुधर्म कहा जाता है। मुख्य रूप से धर्म पाँच प्रकार का कहा गया है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

प्र.175. महाराजश्री! वर्तमान में हम देख रहे हैं कि एक जीव को बचाने में, रात्रि भोजन के त्याग में धर्म मान रहा है और दूसरा यज्ञ, बलि, रात्रि भोजन आदि में धर्म कह रहा है, ऐसी स्थिति में सच्चा कौन है, यह कैसे तय किया जा सकता है?

उ. हिंसा करना अधर्म है। धर्म उसे कहते हैं जो दुर्गति में गिरते हुए जीव को धारण करता है। आगम हो या वेद और गीता, बाइबिल, कुरान या गुरु ग्रन्थ साहिब हो, हर ग्रन्थ में कहा गया है कि जो तुम्हें अच्छा नहीं लगता, वह दूसरों के साथ मत करो। जैसे तुम्हें दुःख अप्रिय और सुख प्रिय है, वैसे ही हर जीव को दुःख अप्रिय और सुख प्रिय है।

जब हमारे पाँव में एक कांटा चुभता है, तब भी सहन नहीं होता तो फिर किसी जीव के प्राण लेना उसे कैसे सह्य हो सकता है। इसलिए सिद्धांत

का निर्णय निर्मल बुद्धि के द्वारा करना चाहिये कि वस्तुतः सत्य क्या है? हर बात को आत्मकल्याण के लक्ष्य से देखना चाहिये, यही धर्म और अधर्म का मापदण्ड है।

प्र.176. महाराजश्री! हम तो साक्षात् ही देखते हैं कि बलि, यज्ञ आदि से वांछित फल की प्राप्ति होती है, फिर उन्हें अधर्म कैसे माना जा सकता है?

उ. माना कि बलि, यज्ञ आदि से वांछित फल की प्राप्ति होती है पर वह भी पुण्याधीन है। पापकारी तथा हिंसक प्रवृत्तियों से कदाच मनोरथ सिद्ध हो जाये परन्तु वे भी अन्ततः दुःख के ही कारण बनते हैं। जैसे किंपाक फल का स्वाद प्रथम क्षण में मधुर एवं स्वादिष्ट प्रतीत होता है परन्तु आने वाले क्षणों में वह जीव को यमलोक भेज देता है।

धर्म तो उसे ही कह सकते हैं, जो समस्त इच्छाओं, के जाल से मुक्त करके भगवान बना देता है। इसलिए अन्तहीन इच्छाओं की पूर्ति के साधनों को नहीं बल्कि इच्छा मुक्त बनाने वाले साधनों को ही धर्म कह सकते हैं। इसी प्रकार सुदेव भी उन्हें कहा जाता है, जो वीतराग बन चुके हैं और सुगुरु उन्हें ही कहा जा सकता है, जो वीतराग बनने की दिशा में गतिशील रहते हुए सभी को वीतराग बनने की प्रेरणा देते हैं।

रत्नत्रयी : सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र

प्र.177. रत्नत्रयी से क्या अभिप्राय है?

उ. सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रयी कहा जाता है।

प्र.178. सम्यक्दर्शन किसे कहते हैं?

उ. सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा—आस्था रखना, सम्यक्दर्शन कहलाता है।

प्र.179. सम्यक्ज्ञान किसे कहते हैं?

उ. जिसके द्वारा आत्मा को, आत्मा के हित—अहित को जाना जाता है, उसे सम्यक्ज्ञान कहते हैं।

प्र.180. सम्यक्चारित्र किसे कहते हैं?

उ. जो आत्मा में संचित कर्मों को रिक्त/खाली करता है, उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं।

प्र.181. रत्नत्रयी का महत्व समझाईए।

उ. 1. सम्यक्दर्शन के कारण जीव को आत्मा के शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होता है। मैं शुद्धात्मा हूँ परन्तु मिथ्यात्व, कषाय, प्रमाद आदि कारणों से संसार में भटक रहा हूँ। अब मुझे मुक्ति पद प्राप्त करना है, यह भावना जगाने वाला

सम्यक्दर्शन है। शास्त्रों में इसे ही निर्वाण का मूल कहा गया है।

2. 'पढमं नाणं तओ दया' एवं 'नमो नमः सुयदिवायरस्स' इन सूत्रों में ज्ञान की महिमा गायी गयी है। ज्ञान होने के बाद ही दया तथा संयम धर्म का पालन हो सकता है। श्रुत ज्ञान ही विश्व में धर्म का उद्योत करता है। पूर्वभव में प्रतिदिन पाँच सौ बार पुण्डरिक—कण्डरिक अध्ययन का आवर्तन करके पालने में ही वज्रस्वामी ने ग्यारह अंगसूत्र कण्ठाग्र कर लिये। ज्ञान की महिमा में यहाँ तक कहा गया है कि प्रतिदिन नया श्रुतज्ञान सीखने वाला जीव तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन करता है।

3. शास्त्रों में कहा गया— चारित्तं खलु धम्मो।


वास्तव में चारित्र ही धर्म है। चारित्र बिना कोई भी आत्मा न मोक्ष में गयी है, न जायेगी। यह चारित्र धर्म का ही प्रभाव है, जो

समस्त कर्म क्षय कर जीव को
संसार चक्र से मुक्त करता है।

प्र.182. रत्नत्रयी के उपकरण बताईए।

उ. 1. जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, स्थापना—
चार्य, सम्यक्दर्शनी आदि सम्यक्
दर्शन के उपकरण हैं।

2. आगम, शास्त्र, पुस्तक, ठवणी,
नवकारवाली, कलम आदि
ज्ञानोपकरण हैं।

3. आसन, मुँहपत्ति, रजोहरण
(चरवला), डंडासन, पात्र, वस्त्र
आदि चारित्रोपकरण हैं। 

अष्ट प्रवचन माता : समिति और गुप्ति

प्र.183. अष्टप्रवचन माता से क्या अभिप्राय है?

उ. पाँच समिति और तीन गुप्ति को अष्टप्रवचन माता कहते हैं।

प्र.184. अष्ट प्रवचन माता को साधु की माता क्यों कहा जाता है?

उ. 1. द्वादशांगी स्वरूप प्रवचन (जिनवाणी) की जन्मदात्री होने से समिति-गुप्ति को माता कहते हैं।
2. जिस प्रकार एक माँ संतान के हित-अहित का ध्यान रखती हुई उसका लालन-पालन करती है एवं उन्नति की कामना करती है, उसी प्रकार समिति एवं गुप्ति रूप अष्ट प्रवचन (जिनाज्ञा) माता संयमी के हित-अहित का ध्यान रखती है, उसे दोषों से बचाती है, गुणों का प्रकटीकरण करती है तथा सर्वोत्कृष्ट उन्नति रूप सिद्धत्व की आभा से परिपूर्ण बनाती है।

प्र.185. अष्ट प्रवचन माता के कितने भेद होते हैं?

उ. आठ भेद— 1. ईर्या समिति 2. भाषा समिति 3. एषणा समिति 4. आदान भंडमत्त निक्षेपण समिति 5. पारिष्ठा-

पनिका समिति 6. मनोगुप्ति 7. वचन गुप्ति 8. काय गुप्ति।

प्र.186. समिति के पाँच प्रकारों को स्पष्ट कीजिये।

उ. 1. ज्ञान-दर्शन-चारित्र की विशुद्धि, जयणा एवं संयम के लक्ष्य से चार हाथ प्रमाण आगे की भूमि को एकाग्रतापूर्वक देखते हुए गमना-गमन करना ईर्या समिति कहलाती है।
2. हित, मित, प्रिय, निरवद्य एवं असंदिग्ध भाषा का प्रयोग करना भाषा समिति कहलाती है।
3. शुद्ध, कल्पनीय आहार, वस्त्र, पात्र, शय्या आदि की संयमपूर्वक गवेषणा/खोज करना एषणा समिति कहलाती है।
4. वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि उपकरणों को उपयोगपूर्वक देखकर एवं रजोहरण से प्रमार्जना करके लेना एवं रखना आदान भण्डमत्त निक्षेपण समिति कहलाती है।
5. मल, मूत्र, कफ, श्लेष्म आदि अनावश्यक वस्तुओं को निर्दोष

स्थान पर परठना पारिष्ठापनिका
समिति कहलाती है।

प्र.187. गुप्तित्रय के स्वरूप पर प्रकाश
डालिये।

- उ. 1. मनोगुप्ति—शुभ एवं अशुभ मान—
सिक विचारों को अवरुद्ध करके
मन को आत्ममय बनाना या मन
को रोकना।
2. वचनगुप्ति— शुभ—अशुभ भाषा
का त्याग करके मौन धारण
करना।
3. कायगुप्ति— उठना, बैठना आदि
समस्त कायिक प्रवृत्तियों से निवृत्त
होकर कायोत्सर्ग करना।

प्र.188. समिति और गुप्ति में क्या अन्तर है?

- उ. 1. समिति में अशुभ का त्याग
किया जाता है जबकि गुप्ति में
योग संबंधी समस्त शुभाशुभ
प्रवृत्तियों का सर्वथा त्याग किया
जाता है।
2. समिति में विवेक एवं जयणा की
मुख्यता होती है जबकि गुप्ति में
पाँच इन्द्रियों एवं मन का सर्वथा
गोपन होता है।
3. निरवद्य भाषा का प्रयोग करना
समिति है परन्तु सर्वथा मौन धारण
करना गुप्ति है। जयणापूर्वक
चलना समिति है और अप्रकंप एवं
स्थिर होकर ध्यान करना गुप्ति है।



नवतत्त्व : जिनवाणी का सार

प्र.189. तत्त्व नौ ही क्यों कहे गये?

उ. इन नवतत्त्वों में सम्पूर्ण सृष्टि समाविष्ट हो जाती है। जीव की निगोद से लेकर सिद्ध पद की सारी यात्रा इसमें आ जाती है। समस्त तत्त्वों का इनमें अन्तर्भाव हो जाने से नवतत्त्व ही कहे गये।

प्र.190. नव तत्त्व कौनसे हैं ?

उ. (1) जीव (2) अजीव (3) पुण्य (4) पाप (5) आश्रव (6) बंध (7) संवर (8) निर्जरा (9) मोक्ष।

प्र.191. जीव किसे कहते हैं?

उ. जो जीवन जीता है, प्राणों को धारण करता है तथा जिसमें चेतना है, उसे जीव कहते हैं। चलना-फिरना, रोना-हँसना, श्वासोच्छ्वास आदि क्रियाएँ जिसमें होती हैं, वह जीव है।

प्र.192. अजीव किसे कहते हैं?

उ. जीव तत्त्व से विपरीत जिसमें चेतना नहीं है एवं जिन्हें सुख-दुःख की अनुभूति नहीं होती है, उन्हें अजीव कहते हैं। जैसे गाड़ी, कपड़ा, मकान, फर्नीचर आदि।

प्र.193. पुण्य किसे कहते हैं?

उ. जिसके कारण जीव अनुकूलता,

शांता, समृद्धि, यश आदि प्राप्त करता है, उसे पुण्य कहते हैं। इसके बयालीस भेद कहे गये हैं।

प्र.194. पुण्य कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. दो प्रकार का—

(1) **पुण्यानुबंधी पुण्य**— जो पुण्य नये पुण्य के बंध में कारण बनता है, शुभ तथा अच्छे की ओर प्रेरित करता है, जैसे किसी को धन मिला, यह पुण्य का परिणाम है और वह उस धन को परोपकार, सुपात्रदान में खर्च करता है तो नया पुण्य बंधता है, इसे पुण्यानुबंधी पुण्य कहा जायेगा। जैसे — पुण्य के उदय से शालिभद्र अतुल सम्पत्ति का स्वामी बना और अन्त में उनकी नश्वरता का शाश्वत बोध प्राप्त करके एकावतारी देव बना।

(2) **पापानुबंधी पुण्य**— वह पुण्य, जो पाप, अशुभ, अनैतिकता, बुराई, हिंसा आदि गलत प्रवृत्तियों की ओर ले जाता है। जैसे—धनी व्यक्ति का दुराचार, मदिरापान, व्यसन, हिंसा, आदि में प्रवृत्त

होना। जैसे - ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने पुण्य के उदय से षट्खण्ड का साम्राज्य पाया पर उसकी आसक्ति में बंध- कर महापाप कर्मों का संचय किया और मरकर सातवीं नरक में गया।

प्र.195. पुण्य कितने कारणों से बन्धता हैं?

- उ. 1. अन्न पुण्य—पात्र को अन्न दान से।
 2. जल पुण्य—पात्र को जल दान से।
 3. लयण पुण्य—पात्र को स्थान-दान से।
 4. शयन पुण्य—पात्र को शय्या आदि के दान से।
 5. वस्त्र पुण्य—पात्र को वस्त्र देने से।
 6. मन पुण्य—शुभ विचार से।
 7. वचन पुण्य—शुभ वचन से।
 8. काय पुण्य—शुभ प्रवृत्ति से।
 9. नमस्कार पुण्य—देव, गुरु, गुणी को नमन—विनय करने से।

प्र.196. पाप किसे कहते हैं?

- उ. जिस कारण जीव दुःख, अपयश, गरीबी, कुरूपता आदि पाता है। इसके 82 भेद कहे गये हैं।

प्र.197. पाप कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. दो प्रकार के—

- (1) पापानुबंधी पाप— जो पाप नये पाप का बंध करवाता है। पाप के उदय से कालसौकरिक कसाई

की भाँति कोई व्यक्ति बीमार पड़ा और वह बीमारी में मन ही मन आर्तध्यान, क्रोध, खेदादि करके नये पाप का बंध करता है उसे पापानुबंधी पाप कहते हैं।

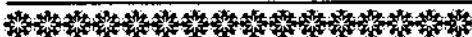
(2) पुण्यानुबंधी पाप— जो पाप उदयकाल में पुण्य का बंध करवाता है। जैसे—पाप के उदय से सनत्कुमार चक्रवर्ती को सोलह रोगों का उपसर्ग आया परन्तु उस दुःख में भी संमता रखकर वे देवलोक में गये। इसे पुण्यानुबंधी पाप कहते हैं।

प्र.198. पाप कितने कारणों से बंधता है?

- उ. अठारह कारणों से— (1) हिंसा (2) असत्य (3) चोरी (4) अब्रह्मचर्य (5) परिग्रह (6-9) क्रोध— मान— माया— लोभ (10-11) राग—द्वेष (12) कलह (झगड़ा) (13) अभ्याख्यान (झूठा कलंक लगाना) (14) पैशुन्य (चुगली) (15) रति—अरति (सुख में आनंद एवं दुःख में शोक) (16) परपरिवाद (परनिंदा) (17) माया मृषावाद (कपट युक्त झूठ बोलना) (18) मिथ्यादर्शन शल्य (गलत धारणा)।

प्र.199. आश्रव किसे कहते हैं?

- उ. पुण्य—पाप रूप कर्मों के आत्मा में आने के द्वार को आश्रव कहते हैं।



इसके पाँच कारण हैं— मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय एवं योग।

प्र.200. बंध किसे कहते हैं?

उ. आत्मा के साथ कर्मों का जुड़ना/मिलना बंध कहलाता है। प्रकृति आदि चार प्रकार के बंध का विवेचन कर्म पदार्थ की व्याख्या में किया गया है।

प्र.201. संवर किसे कहते हैं?

उ. संवर आश्रव का विपरीत तत्त्व है। आत्मा में आते हुए नये कर्मों को रोकना संवर कहलाता है। संवर पाँच प्रकार से होता है—(1) सम्यक्त्व (2) व्रत/महाव्रत (3) अप्रमाद (4) कषाय—मुक्ति (5) अयोग।

प्र.202. निर्जरा किसे कहते हैं?

उ. यह बंध का विपरीत तत्त्व है। आत्मा से जुड़े कर्मों का कुछ अंशों में नष्ट होना निर्जरा कहलाती है। अनशन, ऊणोदरी, रस परित्याग, प्रायश्चित्त, स्वाध्याय आदि बारह प्रकार के तप करने से निर्जरा होती है।

प्र.203. मोक्ष किसे कहते हैं?

उ. आत्मा से सम्पूर्ण कर्मों का अलग होना मोक्ष कहलाता है। सम्यक्ज्ञान—दर्शन—चारित्र और तप से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसकी प्राप्ति के बाद जीव पुनः संसार में नहीं आता है।

प्र.204. धर्म और पुण्य में क्या अन्तर है?

उ. धर्म आत्मा का परिणाम है जबकि पुण्य शुभ कर्म—पुद्गल रूप है अतः एक जीव है और दूसरा अजीव। धर्म (समता, सरलता, निर्लोभता आदि) आत्मा की पवित्र साधना है। इससे जीव का कल्याण होता है परन्तु पुण्य की इच्छा से पाप होता है अतः सामायिक, प्रतिक्रमण, सुपात्र दान आदि धर्म की भावना से करने चाहिये, न कि सत्ता, सम्पत्ति, पुत्र आदि की इच्छा से।

प्र.205. नव तत्त्वों में हेय, ज्ञेय एवं उपादेय तत्त्व कितने हैं?

उ. (1) हेय— छोड़ने योग्य—पुण्य, पाप, आश्रव, बंध।
(2) ज्ञेय— जानने योग्य—जीव व अजीव।
(3) उपादेय— अपनाने योग्य—संवर, निर्जरा और मोक्ष। पुण्यानुबंधी पुण्य की अपेक्षा से पुण्य को भी उपादेय कहा गया है।

प्र.206. नव तत्त्वों को समुद्र एवं नौका के उदाहरण से समझाईए।

उ. (1) जीव— यह नौका स्वरूप है और इधर—उधर भटक रहा है।
(2) अजीव— यह सागर स्वरूप है।

जीव के चारों तरफ अजीव रूपी पानी है।

(3) **पुण्य**— नौका को जब अनुकूल वायु एवं जल प्रवाह मिलता है तब वह सही दिशा में चलती है, वैसे ही पुण्य रूप निरोगी शरीर, अनुकूल सामग्री आदि मिलने पर जीव संसार में सुखपूर्वक जीवन यात्रा करता है।

(4) **पाप**— जिस प्रकार प्रतिकूल वायु, जल—प्रवाह होने पर नौका को खैना कठिन होता है, वैसे ही पाप रूप गरीबी, अपयश, रोग आदि प्रतिकूलता होने पर जीवन यात्रा कठिन हो जाती है।

(5) **आश्रव**— जैसे नौका में छिद्र होने पर पानी भरने लगता है और वह डूबने लगती है, वैसे ही आत्मा में राग, द्वेष, प्रमाद, कषाय आदि छिद्र होने पर जीव कर्मों के भार से संसार रूपी सागर में डूबता जाता है।

(6) **संवर**—जिस प्रकार कुशल नाविक छिद्रों को बंद करके नाव को डूबने से बचाता है, वैसे ही सम्यक्त्वी जीव त्याग, प्रत्याख्यान, अप्रमाद के द्वारा दोष रूपी छिद्रों को बंद करके कर्म—नीर का आगमन रोक देता है।

(7) **निर्जरा**— नाव में भरे पानी को निकालने की भाँति जीवात्मा पूर्वकृत पाप कर्मों का जल तप रूपी बाल्टी से बाहर फेंकता है।

(8) **बंध**— जिस प्रकार तट को पाये बिना नाव दिन—रात पानी में रहती है, इसी प्रकार मुक्ति पर्यन्त कर्म भी आत्मा के साथ क्षीरनीरवत् जुड़े रहते हैं।

(9) **मोक्ष**—जैसे सुज्ञ नाविक सुरक्षित नाव को अच्छी तरह किनारे तक पहुँचा देता है, वैसे ही अहिंसा, संयम एवं तप से आत्मा मोक्ष रूपी मंजिल तक पहुँच जाता है।



जैन तत्त्व मीमांसा

1. निगोद से मोक्ष की यात्रा
2. जीव सृष्टि का परिचय
3. नरक : दुःखों का महासागर
4. देवलोक : सुख का कल्पवृक्ष
5. प्राण एवं पर्याप्ति का विवेचन



निगोद से मोक्ष की यात्रा

प्र.207. संसार में जीवात्मा कब से भटक रहा है?

उ. अनादिकाल से!

इसका कोई प्रारंभिक बिन्दु नहीं है।

प्र.208. जीव के कितने भेद कहे जा सकते हैं?

उ. दो भेद— (1) अव्यवहार राशि और (2) व्यवहार राशि।

प्र.209. अव्यवहार राशि के जीव किसे कहते हैं?

उ. जीव अनादिकाल से सूक्ष्म निगोद में है। जब तक वह सूक्ष्म निगोद से बाहर निकलकर पृथ्वीकाय आदि अन्य पर्याय में नहीं आता है, तब तक अव्यवहार राशि का जीव कहलाता है।

प्र.210. व्यवहार राशि किसे कहते हैं?

उ. जब एक जीव सिद्ध पद को प्राप्त करता है, तब अनादिकाल से सूक्ष्म निगोद में रहा हुआ एक जीव बाहर आता है, उस जीव को व्यवहार राशि कहा जाता है। इस प्रकार जीव के प्रथम उपकारी सिद्ध परमात्मा है।

प्र.211. क्या हर जीव निगोद से अवश्यमेव बाहर आयेगा?

उ. नहीं! हर जीव निगोद से बाहर नहीं आयेगा। इसे समझने के लिये जीव के तीन भेदों को समझना जरूरी है।

(1) भव्य जीव— वह जीव, जो निगोद से निकलकर एक दिन मोक्ष में जायेगा।

(2) अमव्य जीव— वह जीव, जो निगोद से बाहर निकलता है, यहाँ तक कि द्रव्य साधु बनकर उत्कृष्ट चारित्र्य का पालन करता है परन्तु यह सब यश, नाम, सत्ता, सम्पत्ति आदि सांसारिक सुखों के लक्ष्य से ही करता है। इस जीव को जिनोक्त तत्त्व पर कभी भी श्रद्धा नहीं होती है। जैसे अंगारमर्दकाचार्य।

(3) जातिभव्य जीव— वह जीव, जो है तो भव्य परन्तु निगोद से कभी भी बाहर नहीं आयेगा अतः मोक्ष में भी नहीं जायेगा।

प्र.212. इन जीवों के अनन्तज्ञान—दर्शन—चारित्र्यादि गुणों में रंच मात्र भी अन्तर नहीं होता है तो फिर वे सभी मोक्षगमन में समर्थ क्यों नहीं?

उ. इसे हम एक उदाहरण के द्वारा समझ सकते हैं—

(1) जैसे एक कन्या शादी के बाद माता बनती है, वैसे ही आराधना करके मोक्ष में जाने वाला जीव भव्य कहलाता है।

(2) जैसे एक कन्या शादी के बाद भी

अयोग्य होने से माँ नहीं बनती है, उसे वंध्या कहा जाता है। वैसे ही अभव्य जीव चारित्र्य तक स्वीकार कर लेता है, पर सम्यग् श्रद्धा, मुक्ति की झंखना और आत्म-साधना रूपी योग्यता के अभाव में मोक्ष में नहीं जा सकता है।

(3) जैसे एक कन्या साध्वी बन गयी। उसमें माँ बनने की योग्यता है पर अब बन नहीं सकती। वैसे ही जातिभव्य जीव में मोक्ष प्राप्ति की योग्यता है परन्तु जिनदर्शन, प्रवचन, चारित्र्य, ज्ञान आदि निमित्तों का निगोद में अभाव होने से मोक्ष में कभी नहीं जायेगा।

प्र.213. निगोद से निकलने के बाद जीव किस प्रकार मोक्ष तक का सफर तय करता है?

उ. निगोद से निकलने के बाद वह बादर, त्रस, पंचेन्द्रिय पर्याय को प्राप्त करता हुआ भवितव्यता के योग से सम्यक्त्व को प्राप्त कर जिनोक्त तत्त्व पर श्रद्धान्वित बनता है और अनादि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक को छोड़कर चतुर्थ गुणस्थान में प्रविष्ट होता है। क्रमशः श्रावकत्व, श्रमणत्व को प्राप्त करके क्षपक श्रेणीपूर्वक चारों घाती कर्मों का क्षय करके तेरहवें गुणठाणे में आकर केवलज्ञानी बनता है। कितने काल तक जीवों को प्रतिबोध देता हुआ निर्वाण काल में वह अंतिम

चौदहवें गुणस्थानक में आता है तथा शेष चार अघाती कर्मों का क्षय करके आत्मा की शुद्ध-विशुद्ध कर्महीन अवस्था को प्राप्त करके परम एवं चरम मोक्ष पद को प्राप्त हो जाता है।

प्र.214. क्या एक बार निगोद से बाहर आने के बाद जीव पुनः उसमें उत्पन्न हो सकता है?

उ. हाँ! उत्पन्न हो सकता है। शास्त्रों में कहा गया है कि मोक्ष मार्ग रूप सम्यग् ज्ञान - दर्शन - चारित्र्य प्राप्त होने पर भी उसमें प्रमाद करके चौदह पूर्वधर भी पुनः निगोद में उत्पन्न हो जाते हैं।

परमात्मा महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में गौतम स्वामी के माध्यम से समस्त जगत् को प्रतिबोध दिया—‘समयं गोयम मा पमायए।’ गौतम! क्षण भर भी प्रमाद मत कर।

इसलिये प्रज्ञावान् आत्मा को मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, विकथा, इन पाँच प्रकार के प्रमादों का त्याग करके साधना में अग्रमत्त बनना चाहिये।

प्र.215. वर्तमान काल में सर्वज्ञ का अभाव है तो फिर यह कैसे जाना जा सकता है कि ‘मैं भव्य हूँ अथवा अभव्य?’

उ. इस प्रश्न का उत्तर परमात्मा आगमों में फरमाते हैं कि तुम्हारे अन्तर में अन्तर्भाव से यदि यह प्रश्न उठे कि ‘मैं भव्य हूँ अथवा अभव्य?’ तो निश्चित रूप से तुम भव्य जीव ही हो।

जीव सृष्टि का परिचय

प्र.216. जीव किसे कहते हैं?

उ. जो सचेतन हो, जो सुख-दुःख का अनुभव करें, जो अनन्तज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों से युक्त हो, उसे जीव कहते हैं।

प्र.217. जीव के लक्षण कौनसे हैं ?

उ. जिससे जीव में जीवत्व की पहचान हो, वह उसका लक्षण कहलाता है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य (शक्ति) और उपयोग, ये छहों लक्षण हर जीव में अल्प या विशेष रूप अवश्यमेव पाये जाते हैं, अतः इन्हें लक्षण कहा जाता है। सजातीय का उत्पादन और वृद्धि को प्राप्त होना जीव की खास दो पहचान है जिसका वर्णन आचारांग आदि आगमों में उपलब्ध होता है।

प्र.218. जीव सृष्टि के ज्ञान की अनिवार्यता क्यों है?

उ. जब तक व्यक्ति को जीव सृष्टि का ज्ञान नहीं होगा, तब तक दया, अहिंसा और संयम का जीवन जी पाना असंभव ही होगा। अतः प्रेम,

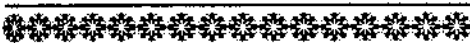
अनुकंपा, मैत्री और संयम का भाव जगाने के लिये सम्पूर्ण जीव सृष्टि का ज्ञान परमावश्यक है।

प्र.219. माना कि जीव तत्त्व का ज्ञान मोक्ष का मुख्य सोपान है परन्तु महाराजश्री! क्या जीव तत्त्व के ज्ञान से परिवार, समाज और विश्व को कोई लाभ हो सकता है?

उ. बिल्कुल ! जीव सृष्टि का ज्ञान व्यक्ति को जहाँ जीव मात्र के प्रति प्रेम और मैत्री के रस से हरा-भरा एवं संवेदनशील बनाता है, वहीं प्रकृति, वातावरण और पर्यावरण के प्रति सचेत, करुणाशील और भीगा भीगा बनाता है।

यदि व्यक्ति जीव तत्त्व को गहनता से जानता हुआ आत्मसात् करता है तो वह किसी को न तो अनावश्यक पीड़ा देगा, न किसी के साथ क्रूरता भरा व्यवहार करेगा।

आज प्रकृति सम्पूर्ण विश्व से जिस प्रकार रूठी हुई है— अतिवृष्टि, अना-



वृष्टि, ज्वालामुखी, उल्कापात, भूकंप, यह सब प्रकृति पर किये गये एवं हो रहे अत्याचारों के ही परिणाम हैं।

यदि व्यक्ति पानी, खनिज पदार्थ, पैड-पौधे, जलवायु आदि का उचित-विवेकानुसार उपयोग करें, उसके अपव्यय से बचे तो जीव हिंसा के महान् पाप से बचने के साथ-साथ विश्व-मैत्री का संदेश भी जन-जन तक पहुँचा सकता है। उनके अभाव से उपजी युद्ध, अराजकता, आतंक आदि समस्याओं को सहज ही समाहित किया जा सकता है।

विभिन्न जाति, देश, प्रदेश के मध्य जो तनाव-टकराव की स्थिति बढती जा रही है, वह भी जीव मात्र के प्रति मैत्री और स्नेह के प्रभावी उपाय से मिटायी जा सकती है।

प्र.220. इन्द्रियों के आधार पर जीव के कितने भेद होते हैं?

उ. पांच भेद—

(1) **एकेन्द्रिय**— जिन जीवों के एक मात्र स्पर्शेन्द्रिय (त्वचा) होती है, वे एकेन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति।

(2) **द्वीन्द्रिय**— जिन जीवों के स्पर्शन एवं रसन (जीभ), ये दो इन्द्रियाँ होती हैं, वे द्वीन्द्रिय कहलाते हैं, जैसे—लट, घुण, कृमि, शंख, जोंक, कोडी, अलसिया, नाहरू, केंचुआ आदि।

(3) **त्रीन्द्रिय**— जिन जीवों के स्पर्शन, रसन, घ्राण (नाक), ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं, वे त्रीन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे— चींटी, कान—खजूरा, मकोड़ा, उदेहि, खटमल, इल्ली, जूं आदि।

(4) **चतुरिन्द्रिय**— जिन जीवों के चक्षु (आँख) सहित चार इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते हैं। जैसे—पतंग, मक्खी, मच्छर, बिच्छु, भ्रमर, डांस, टिड्डी, जुगनू, तितली, मधुमक्खी आदि।

(5) **पंचेन्द्रिय**— पांच इन्द्रियों वाले जीव पंचेन्द्रिय कहलाते हैं। जैसे— मनुष्य, हाथी, घोड़ा, देव, नारकी आदि।

प्र.221. त्रस और स्थावर में क्या अन्तर है?

उ. (1) **त्रस**— एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने, जाने वाले जीवों को त्रस

कहते हैं। इसके चार भेद कहे गये हैं—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इनका उदाहरण सहित विवेचन पूर्व प्रश्न में किया जा चुका है।

(2) **स्थावर**—एक स्थान से दूसरे स्थान पर जो जीव आ-जा नहीं सकते हैं, वे स्थावर कहलाते हैं। एकेन्द्रिय स्थावर कहलाते हैं।

प्र.222. स्थावर के पाँच भेदों को स्पष्ट कीजिये।

उ. (1) स्फटिक, सोना, चांदी, जस्ता, लोहा आदि धातुएँ, काला-सफेद आदि नमक, विभिन्न पाषाण, लाल, हरी, भूरी, पीली आदि वर्णों वाली मिट्टी, मणि, रतन, चूना, पारा, अभ्रक आदि **पृथ्वीकाय** कहलाते हैं।

(2) वर्षा, तालाब, समुद्र आदि का पानी, ओस, शबनम, ओले आदि **अप्काय** (पानी) कहलाते हैं।

(3) अंगार, ज्वाला, चिंगारी, बांस-पत्थर आदि के आपस में टकराने से उत्पन्न होने वाली अग्नि **तेसकाय** कहलाते हैं।

(4) मंद - तीव्र वायु, आंधी, तूफान, चक्रवात आदि **वायुकाय** कहलाते हैं।

(5) फल, फूल, छाल, काष्ठ, शाखा, प्रशाखा, पत्ता, जड़, बीज आदि **वनस्पतिकाय** कहलाते हैं।

प्र.223. पृथ्वीकाय आदि में कितने जीव कहे गये हैं?

उ. पृथ्वी की एक डली में, पानी की एक बूंद में, अग्नि की एक चिंगारी में और वायु के एक झोंके में इतने (असंख्य) जीव हैं कि उन्हें क्रमशः सूक्ष्म धान्य, सरसों के दाने, खसखस एवं बड़ वृक्ष के बीज जितने बनाये जाये तो संपूर्ण एक लाख योजन (तेरह लाख कि. मी.) प्रमाण जम्बूद्वीप में भी नहीं समा सकते।

साधारण वनस्पतिकाय (आलू, प्याज, लहसुन, मूली, गाजर, शकरकंद आदि) में सुई के नोक प्रमाण भाग में अनन्त जीव होते हैं।

यह जानकर बुद्धिमान् एवं मोक्षमार्गी को इनके उपयोग में विवेक रखना चाहिये। अनन्तकाय भक्षण का शास्त्रों में निषेध किया गया है।

प्र.224. पृथ्वीकाय आदि का इतना छोटा



शरीर होता है, रसनादि चार इन्द्रियों का अभाव होने से गूंगे, बहरे, अंधे हैं तो फिर उन्हें कष्ट का अनुभव किस प्रकार हो सकता है?

उ. वे जीव इन्द्रियहीन होने से वेदना को कहने, सुनने, देखने में भले ही सक्षम न हो, फिर भी सजीव होने से पीड़ा अवश्य ही होती है। इस संदर्भ में आचारांग सूत्र के शस्त्र परिज्ञा नामक प्रथम अध्ययन में उदाहरण दिया गया है—
जन्मतः एक अन्धे, बहरे, गूंगे, रोगी, कोमल— मुलायम शिशु के आँख, नाक, मुँह आदि बत्तीस स्थानों का कोई भाले से तीव्र रूप में छेदन—भेदन करे, तब उसे जो पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा पृथ्वीकाय आदि जीवों को भी छेदन—भेदन से होती है।

प्र.225. पर यह कैसे सम्भव है कि पानी की एक बूंद आदि में असंख्य जीव एवं आलू आदि के सुई के अग्र भाग जितने स्थान में अनन्त जीव समा जाये?

उ. कोई व्यक्ति लाख औषधियों को एकत्र करके महिनो तक घिस कर लक्षपाक तेल बनाता है, तब उसकी

हर एक बूंद में जैसे एक लाख औषधियाँ समा जाती हैं, वैसे ही यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

प्र.226. पृथ्वीकाय आदि में जीव (आत्मा) है, यह कैसे माना जाये जबकि उनमें मनुष्य की भाँति कोई प्रवृत्ति नजर नहीं आती है, यह सब कहीं कपोल कल्पना तो नहीं है? उ. नहीं। यह सब आज वैज्ञानिकों के द्वारा प्रमाणित हो चुका है—

(1) पृथ्वी— मनुष्य का घाव जिस प्रकार शनैः शनैः वापस भर जाता है, उसी प्रकार खोदी हुई खानें भी भर जाती हैं। पर्वत भी बढ़ते हैं, यह वैज्ञानिकों के द्वारा कहा गया है। वैज्ञानिक एच.टी. बर्सटापेट का मानना है कि जैसे बालक का शरीर शनैः शनैः बढ़ता है, वैसे ही पर्वत भी बढ़ते हैं। उनका कहना है कि न्यूगिनी के पर्वतों ने अभी अपनी शैशव—अवस्था पार की है। डॉ. बेल्मेन का मानना है कि आल्पस पर्वतमाला का पश्चिमी भाग अभी भी बढ़ रहा है।

(2) जल— शीतकाल में मनुष्य के मुख

की भाँति कुँ, समुद्र आदि के पानी से भी भाप निकलती है।

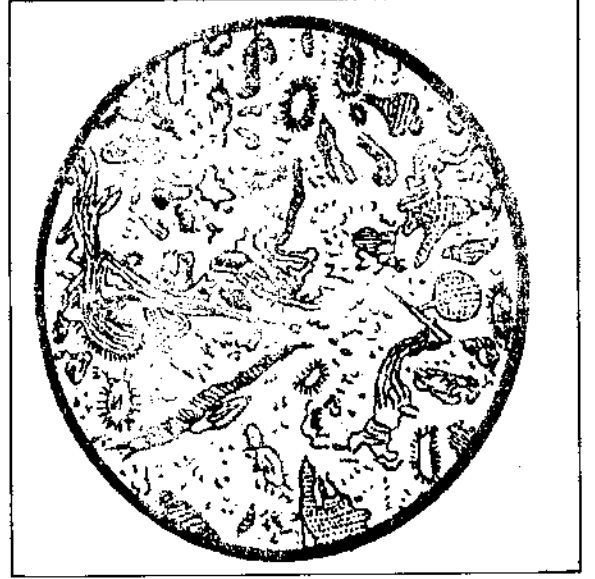
(3) अग्नि— मनुष्य की भाँति अग्नि भी आहार (ईंधन) पाकर बढ़ती है, उसके अभाव में बुझ जाती है।

(4) वायु— अन्य जीवों की तरह वायु के शरीर का संकोच व विकोच होता है।

(5) वनस्पति— मनुष्य की भाँति वनस्पति, जल, वायु, खाद, धूप आदि पाकर वृद्धि को प्राप्त होती है। उनके अभाव में नष्ट हो जाती है। छुई—मुई आदि वनस्पतियाँ स्पर्श पाकर भय/लज्जा से संकुचित हो जाती हैं। अनेक फल—फूल, पौधे मधुर संगीत से जल्दी अंकुरित एवं पुष्पित होते हैं। कोकनद का वृक्ष क्रोध में हुंकार करता है।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र से कैप्टन स्कोर्स बी. ने पानी की एक बूंद में 36450 चलते—फिरते जीव प्रमाणित किये हैं। उसका फोटो इलाहाबाद गवर्नमेंट प्रेस में मुद्रित सिन्धु पदार्थ विज्ञान नामक पुस्तक में

छपा है—वह फोटो नीचे देखिये—



डॉ. जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति में जीवत्व की सिद्धि की एवं दूरबीन के माध्यम से विविध प्रयोगों के द्वारा उनमें घटित होने वाले हर्ष—शोक को साक्षात् रूप से दिखाया।

प्र.227. सूक्ष्म और बादर से क्या अभिप्राय है?

उ. जिन जीवों का शरीर इतना छोटा होता है कि नेत्र अथवा यंत्र के द्वारा भी देखा न जा सके, उन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं।

जिन जीवों को नेत्र, यंत्र आदि के द्वारा देख पाना संभव हो, वे बादर जीव कहलाते हैं।

एकेन्द्रिय सूक्ष्म/बादर, दोनों प्रकार

के होते हैं, परन्तु द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय जीव बादर ही होते हैं।

प्र.228. संज्ञी एवं असंज्ञी में क्या अन्तर है?

उ. मन वाले जीवों को संज्ञी एवं बिना मन वाले जीवों को असंज्ञी कहा जाता है। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जीव नियमतः असंज्ञी, देव—नारकी नियमतः संज्ञी तथा पंचेन्द्रिय तिर्यच एवं मनुष्य संज्ञी—असंज्ञी, दोनों होते हैं।

प्र.229. प्रत्येक एवं साधारण जीव में क्या भेद है?

उ. जिस एक शरीर में एक जीव होता है, उसे प्रत्येक कहते हैं। जिस एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं, उसे साधारण कहते हैं। साधारण को निगोद तथा अनन्तकाय भी कहा जाता है। साधारण वनस्पतिकाय (कंदमूल—आलू, प्याज आदि) के सिवाय समस्त जीव प्रत्येक ही होते हैं।

प्र.230. पचेन्द्रिय जीवों के कितने भेद कहे गये हैं?

उ. चार भेद— (1) तिर्यच (2) नारकी (3) मनुष्य (4) देव।

प्र.231. पचेन्द्रिय तिर्यच के कितने भेद होते हैं?

उ. तीन भेद—

(i) **स्थलचर**—इसके तीन भेद होते हैं—

(1) चार पाँव वाले **चतुष्पद**। जैसे— हाथी, घोड़ा आदि।

(2) पेट के बल पर रेंगने वाले **उरपरिसर्प**। जैसे—सर्प, अजगर आदि।

(3) भुजा के बल पर चलने वाले **भुजपरिसर्प**। जैसे—चूहा, बंदर, छिपकली आदि।

(ii) **जलचर**— जल में रहने वाले **जलचर** जैसे—मछली, मगरमच्छ आदि।

(iii) **खेचर**— आकाश में उड़ने वाले जीव **खेचर** (नभचर) जैसे— कबूतर, मैना, तोता, चिड़िया, बाज, गरुड़ आदि।



नरक : दुःखों का महासागर

प्र.232. नरक किसे कहते हैं?

उ. पंचेन्द्रिय वध, महारंभ—समारंभ, पर—स्त्रीगमन आदि कठोर, पापकारी, क्रूर कार्यों का अशुभ फल जीव को जहाँ प्राप्त होता है, उसे नरक एवं उसमें रहने वाले जीवों को नारकी कहा जाता है। नरक के सात भेद कहे गये हैं— घम्मा, वंशा, सेला, अंजना, रिष्टा, मघा और माघवती।

प्र.233. नरक में जीव को किस प्रकार के दुःख प्राप्त होते हैं?

उ. नरक में तीन प्रकार के दुःख कहे गये हैं—

(1) परमाधामी देवकृत वेदना— पंद्रह परमाधामी देव नारकी जीवों को विविध घोर यातनाएँ देते हैं।

(2) क्षेत्रजन्य वेदना—यह दस प्रकार की होती है जैसे—

(1) नरक में इतनी सर्दी है कि कंदाच नारकी जीवों को हिमालय पर्वत पर ले जाये तो भी गर्मी का अहसास होगा।

(2) नरक में गर्मी इतनी ज्यादा है कि यहाँ भट्टी में रखें तो भी नैरयिकों को शांति का अनुभव होगा।

(3) प्रतिपल क्षुधा एवं तृषा का ऐसा परीषह कि संसार का

सारा अन्न—जल मिले तो भी भूख—प्यास शान्त न हो परन्तु खाने—पीने को कुछ भी प्राप्त नहीं होता है।

(4) भयंकर खुजली, तीव्र ज्वर एवं हजारों रोगों से ग्रस्त और प्रतिपल भयभीत नारकी जीव घोर वेदना को भोगते हैं।

(3) परस्परकृत वेदना— कुत्ते—बिल्ली, सांप—नेवले की भांति जन्मजात वैरी नारकी जीव परस्पर लड़—झगड़ कर तीव्र वेदना को प्राप्त करते हैं।

प्र.234. यह तो समझ में आ गया कि नरक में खतरनाक वेदना है पर क्या भावी तीर्थंकर को भी भोगनी पड़ती है?

उ. अवश्यमेव। 'कर्म किसी का सगा नहीं।' तीर्थंकर हो चाहे चक्रवर्ती, इन्द्र हो चाहे नरेन्द्र। हर जीव को स्वकृत कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है।

प्र.235. क्या सभी नारकी जीवों को एक समान वेदना प्राप्त होती है ?

उ. प्रथम नरकापेक्षया द्वितीय नरक में वेदना अधिक है, इसी तरह सप्तम नरक पर्यन्त समझना चाहिये। पर

यह भी ज्ञातव्य है कि एक ही नरक के भिन्न भिन्न नारकी जीवों की वेदना में भी भिन्नता होती है।

प्र.236. परमाधामी देव उन्हें किस प्रकार से वेदना देते हैं?

उ. परमाधामी देव उन्हें विविध प्रकार से पीड़ित व प्रताड़ित करते हैं यथा—

- (1) मांस खाने वाले को उसी के शरीर का मांस काट-काटकर एवं उसे तल-भूनकर उन्हें जबरदस्ती खिलाते हैं।
- (2) मदिरा पान करने वाले को उबलते शीशे, ताम्बे का रस पिलाते हैं।
- (3) वेश्या एवं परस्त्रीगमन करने वाले को अग्नि से तप्त रक्तवर्णीय लोहे की पुतली से जबरदस्ती आलिंगन करवाते हैं।
- (4) जानवर, नौकर, चाकर से अधिक काम करवाने वाले को एवं उन पर अधिक बोझ लादने वाले को अधिक भार वाली गाड़ी मार पीटकर खिंचवाते हैं।
- (5) स्नान आदि में पानी का अपव्यय करने वाले को गर्म उबलती हुई खून, शीशे की वैतरणी नदी में तैरने के लिये मजबूर करते हैं।
- (6) सर्प-बिच्छू आदि की हिंसा करने वालों को वैसा रूप बनाकर काटते हैं।
- (7) शिकार करने वाले के अंगोपांग धनुष-बाण से भेद देते हैं।

(8) देव, गुरु, धर्म, माता-पिता एवं सम्माननीय बुजुर्गों की अवज्ञा-अनादर करने वाले के हृदय को भाले से चीर देते हैं।

(9) चोरी, माया, प्रपंच, किसी के पैसे लूटने वाले डकैतों, आतंकवादियों को ऊँचे पर्वत से नीचे गिराते हैं एवं वृक्षों से लटकाकर असह्य वेदना देते हैं।

(10) दूसरों को मारने-पीटने वालों के हाथ-पाँव काट देते हैं। निंदा एवं चुगली करने वाले की एवं असत्य-अपशब्द बोलने वालों की जीभ काट देते हैं, गलत बातें सुनने वाले, फिल्मी-गंदे गीत सुनने वाले के कानों में गर्म शीशा उंडेलते हैं, अश्लील दृश्य देखने वाले की आँखों को फोड़ देते हैं।

(11) अज्ञानी, भोले भाले जीवों को बहलाकर गुमराह करने वालों को जाज्वल्यमान अंगारों पर चलाते हैं।

प्र.237. नारकी जीवों को परमाधामी देव अनेक प्रकार से अनेक बार दारुण यातनाएँ देते हैं तो क्या वे मर नहीं जाते?

उ. नहीं। उनका शरीर वैक्रिय होता है। वह पारे की तरह पुनः पुनः एकमेक हो जाता है। अतः जब तक आयु पूर्ण नहीं होती, तब तक कृतकर्मा का फल भोगना ही होता है।



प्र.238. मनुष्य से क्या अभिप्राय है?

उ. 'मत्वा हिताहितं ज्ञात्वा कार्याणि सीवन्ति इति मनुष्याः' जो स्वयं के हित एवं अहित का विचार करके कार्य करते हैं, उन्हें मनुष्य कहते हैं।

प्र.239. मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं?

उ. मुख्यतः तीन प्रकार के—

(1) कर्मभूमिज— जहाँ असि (शस्त्रादि), मसि (लेखनी) और कृषि से संबंधित कार्य होता है तथा जहाँ जीव मोक्ष प्राप्त करने का कर्म (पुरुषार्थ) करता है, उसे कर्मभूमि कहते हैं। उनमें रहने वाले मनुष्य कर्मभूमिज कहलाते हैं।

कर्मभूमियाँ पन्द्रह कही गयी हैं—(1) पाँच भरत (2) पाँच ऐरावत

(3) पाँच महाविदेह।

जम्बूद्वीप में भरतादि तीनों एक-एक भूमि है। धातकीखण्ड एवं अर्द्धपुष्करावर्त द्वीप में भरतादि तीनों भूमियाँ दो-दो की संख्या में हैं।

(2-3) अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज— जिस क्षेत्र में असि-मसि-कृषि का कार्य नहीं होता है एवं जहाँ युगलिक मनुष्य होते हैं, उन्हें अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्य कहते हैं।

हिमवंत, हिरण्यवंत, हरिवर्ष, रम्यक, देवकुरु और उत्तरकुरु, ये पाँच-पाँच की संख्या में होने से कुल तीस अकर्मभूमियाँ हैं। 56 अंतर्द्वीप कहे गये हैं।

प्र. 240. जीवों के कुल कितने भेद कहे गये हैं ?

उ.

जीव	भेद
एकेन्द्रिय	22
द्वीन्द्रिय	2
त्रीन्द्रिय	2
चतुरिन्द्रिय	2
पंचेन्द्रिय तिर्यच	20
नारकी	14
देव	198
मनुष्य	303
कुल	563

इन्हें विस्तार से जानने के लिये जीव विचार प्रकरण का अध्ययन करना चाहिये।



देवलोक : सुख का कल्पवृक्ष

प्र.241. देव से क्या अभिप्राय है?

उ. जिस तरह महापापी जीव नरक में उत्पन्न होकर अतिशय दुःख भोगते हैं, उसी प्रकार पूर्व जन्म में किये गये पुण्य-कार्य के परिणामस्वरूप जीव जहाँ दिव्य-विविध सुखों को भोगते हैं, उसे देवलोक कहते हैं। देवलोकों में उत्पन्न जीव देव कहलाते हैं। मनुष्यों की अपेक्षा उनका ऐश्वर्य एवं सुख हजारों-लाखों गुणा ज्यादा होता है।

प्र.242. देवों का रूप-सौंदर्य कैसा होता है?

उ. देवों का शरीर मनुष्य एवं तिर्यच की भाँति मांस, अस्थि आदि से निर्मित न होकर शुभ पुद्गलों से बनता है। उनकी काया निरोगी, सुगंधमयी, लावण्ययुक्त और द्युतिमयी होती है। मृत्यु के उपरान्त कपूर की भाँति उनका शरीर बिखर जाता है, मुर्दे के रूप में नहीं रहता है।

प्र.243. देवों की शक्ति अधिक होती है या मनुष्य की?

उ. सामान्य मनुष्य की अपेक्षा उनकी शक्ति अधिक और आश्चर्यकारी होती है। भगवती सूत्र में कहा गया है कि

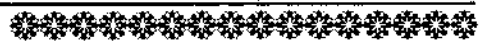
अनेक देवता ऐसे होते हैं जो एक ही समय में हजार-हजार रूप बनाकर पृथक्-पृथक् हजार-हजार भाषाएँ बोल सकते हैं।

अनेक ऋद्धि सम्पन्न देव मनुष्यों की पलकों पर बत्तीस प्रकार के दिव्य नाटक दिखा देते हैं पर उन मनुष्यों को तनिक भी पीड़ा नहीं होती है।

शक्रेन्द्र की शक्ति के संदर्भ में आगम कहते हैं कि देव किसी मनुष्य का सिर काटकर, उसे कूट-पीसकर चूर्ण बना दे और तत्काल उससे मस्तक बनाकर मनुष्य के धड़ से जोड़ने का कार्य इतनी दक्षता और शीघ्रता के साथ करते हैं कि उसे तनिक भी पीड़ा का अनुभव नहीं होता है।

प्र.244. देवों की गति तीव्र है अथवा वायु की?

उ. शास्त्रों में कहा गया है कि तीन चुटकी बजाने जितने समय में देव इक्कीस बार जम्बूद्वीप के चक्कर लगा सकते हैं। यदि इस गति से देव यहाँ आये तो पहुँचने में अनेक वर्ष व्यतीत हो जायेंगे। उनके पास ऐसी दिव्य गति है कि वे स्मरण करते ही यहाँ उपस्थित हो जाते हैं।



प्र.245. क्या कोई ऐसे चिह्न हैं, जिनसे हम देवों को पहचान सकते हैं?

उ. क्यों नहीं ! शास्त्रों में चार चिह्न बताये गये हैं —

- (1)उनकी पलकें नहीं झपकती हैं।
- (2)गले में स्थित पुष्पमालाएँ मुरझाती नहीं हैं।
- (3)उनको पसीना नहीं होता है।
- (4)जमीन से चार अंगुल ऊपर अर्थात् अधर रहते हैं।

प्र.246. देवों के दिव्य ऋद्धि—समृद्धि होती है तो क्या वे चोरी, युद्ध आदि घृणित कार्य करते हैं?

उ. देव भी अपने राज्य, धन की सीमा बढ़ाने के लिए युद्ध करते हैं, दूसरे देवों के मूल्यवान् रत्नों, देवियों आदि को भी चुरा लेते हैं।

प्र.247. देव किस प्रकार आहार ग्रहण करते हैं?

उ. देव मनुष्य की भाँति कवलाहार नहीं करते हैं। जब भी आहार की इच्छा उत्पन्न होती है, तब शक्ति के द्वारा शुभ, सरस, श्रेष्ठ, उत्तम पुद्गल स्वतः शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं और उन्हें संतुष्टि का अनुभव होता है।

प्र.248. देवों को अमर कहा जाता है तो क्या उनकी मृत्यु नहीं होती है? यदि मृत्यु नहीं होती है तब तो वे शाश्वत रूप से उसी स्थिति में रहते होंगे।

उ. अधिकांश देव—देवियों का दीर्घायुष्य (असंख्य वर्ष का) होता है, अतः उन्हें अमरा—अमरी कहा जाता है, परन्तु वह असंख्य वर्षों का आयुष्य भी अवश्यमेव पूर्ण होता है।

अलग—अलग देवों के मृत्यु के समय मनःस्थिति अलग—अलग होती है। सम्यक्त्वी आत्माएँ 'मनुष्य देह की प्राप्ति होगी और व्रत—महाव्रत की आराधना में प्रवृत्त होंगे।' इस हेतु से आनंदित होते हैं परन्तु मिथ्यात्वी एवं अहर्निश भोगोपभोगों में रत रहने वाले देव जब म्लान पुष्पमाला, कांपते कल्पवृक्ष, शोभाविहीन विमान एवं निस्तेज वस्त्राभूषणों को देखते हैं, तब जान जाते हैं कि छह माह के भीतर मेरी मृत्यु होने वाली है। उस समय उनकी आँखों के आगे अंधेरा छा जाता है। दिव्य विमान, महान् ऐश्वर्य एवं कल्पवृक्ष का पुनः पुनः स्मरण करते हुए दुःखी होकर करुण—कातर स्वरों से आक्रन्दन करते हैं— हाय। इस अनुपमेय ऋद्धि को छोड़कर नरक तुल्य स्त्री—गर्भ में वास करना होगा और अमृत—भोजन के बदले अपवित्र रज—वीर्य का आहार करना पड़ेगा। इस प्रकार रुदन तथा अश्रुपात करते हुए उनका जीवन—दीप बुझ जाता है।

प्र.249. देव के भेदों को विस्तार से समझाओ।

उ. देव विविध प्रकार के होते हैं—

(i) अधोलोकवर्ती देव—

(1) भवनपति देव— दस भेद वाले ये देव भवनों में रहते हैं तथा सुकुमार, मंद-भृदुचाल वाले क्रीड़ाशील होते हैं।

(2) परमाधामी देव—पन्द्रह प्रकार के ये देव नारकी जीवों को दारुण यातना देकर सताते हैं और आनंदित होते हैं।

(ii) मध्यलोकवर्ती देव—

(1) व्यंतर तथा वाणव्यंतर देव— वनों के अन्तरों में रहने वाले इन देवों के आठ-आठ भेद कहे गये हैं।

(2) तिर्यग्जृम्भक देव— दस प्रकार के ये देव जिस पर तुष्ट होते हैं, उसे मालामाल कर देते हैं तथा जिस पर रूष्ट होते हैं, उसे दुःखी करते हैं। तीर्थकर परमात्मा के च्यवन-जन्म कल्याणक के समय वन, भूमि, गुफा आदि में पड़े धन से

उनके खजाने भर देते हैं।

(3) ज्योतिष्क देव— सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा नामक पाँच प्रकार के ये देव प्रकाश करते हैं।

(iii) उर्ध्वलोकवर्ती देव—

(1) वैमानिक देव— सौधर्म, ईशान आदि बारह प्रकार के होते हैं।

(2) किल्बिषिक देव— तीन प्रकार के ये देव ढोली, चमार जैसा काम करते हैं, अविवेकवश बार-बार अपमानित होते हैं।

(3) नवलोकान्तिक देव—तीर्थकर प्रभु को दीक्षा लेकर केवलज्ञानपूर्वक चतुर्विध संघ स्थापना की विनंती करने जैसा पुण्यकर्म संपादित करने वाले लोकान्तिक देव नौ प्रकार के होते हैं।

(4) नवग्रैवेयक—ये नौ प्रकार के होते हैं।

(5) अनुत्तर वैमानिक—पाँच प्रकार के इन देवों में सर्वार्थसिद्ध विमान के देव नियमतः एकावतारी ही होते हैं।



प्राण एवं पर्याप्ति का विवेचन

प्र.250. प्राण किसे कहते हैं?

उ. जीवन शक्ति को प्राण कहा जाता है। इसका संयोग जीवन एवं वियोग मृत्यु है। जैसे-जैसे प्राण-शक्ति क्षीण होती है, वैसे-वैसे शरीर बूढ़ा, निर्बल एवं क्षीण होता जाता है। जब प्राण शक्ति नष्ट हो जाती है, तब प्राणान्त हो जाता है। प्राण धारण करने से ही जीव को प्राणी कहा जाता है।

प्र.251. प्राण कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. दस प्रकार के—

(1-5) पाँच इन्द्रिय प्राण— त्वचा में ठण्डा-गर्म, मृदु-कर्कश, स्निग्ध-रूक्ष, भारी-हल्का ये आठ स्पर्श जानने की, जीभ में स्वाद ग्रहण की, नाक में सूँघने की, आँख में देखने की तथा कान में सुनने की जो शक्ति है, वे स्पर्शनेन्द्रिय आदि प्राण कहलाते हैं।

(6-8) तीन योग प्राण— मन-वचन-काया में क्रमशः सोचने, बोलने एवं करने की जो शक्ति है, उन्हें मनोबल, वचनबल एवं कायबल प्राण कहा जाता है।

(9) श्वासोच्छ्वास प्राण— श्वास ग्रहण

एवं विसर्जन की शक्ति को श्वासोच्छ्वास प्राण कहा जाता है।

(10) आयुष्य प्राण— नियत काल पर्यन्त जीवित रहने की शक्ति को आयुष्य प्राण कहा जाता है।

प्र.252. पर्याप्ति किसे कहते हैं?

उ. पुद्गलों के समूह से आत्मा में प्रकट शक्ति को पर्याप्ति कहा जाता है।

प्र.253. पर्याप्तियाँ कितने प्रकार की कही गयी हैं?

उ. छह प्रकार की—

(1) आहार पर्याप्ति— जिस शक्ति से जीव पदार्थ को आहार में परिणत करता है।

(2) शरीर पर्याप्ति— जिस शक्ति से जीव आहार को रस, रक्त, अस्थि, मज्जा, चर्बी, मांस एवं वीर्य, इन सात धातुओं में बदलता है।

(3) इन्द्रिय पर्याप्ति— जिस शक्ति से जीव शरीर को पाँच इन्द्रियों में परिणत करता है।

(4) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति— जिस शक्ति से जीव श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है एवं छोड़ता है।

(5) **भाषा पर्याप्ति**—जिस शक्ति से जीव भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है एवं भाषा में बदल कर उनका विसर्जन करता है।

(6) **मनः पर्याप्ति**— जिस शक्ति से जीव मन योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके सोचता है।

प्र.254. प्राण तथा पर्याप्ति में क्या अन्तर है?

उ. प्राण जीव की आन्तरिक शक्ति है जबकि पर्याप्ति पौद्गलिक शक्ति है। जिस प्रकार किसी भी वाहन में दौड़ने की शक्ति होने पर भी उसे डीजल, पेट्रोल की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार आत्मा परम शक्तिशाली होने पर भी जीवन संचालन हेतु पुद्गलों की सहायता लेनी ही होती है।

प्राणी के द्वारा खाना, पीना, चलना, उठना, बैठना, बोलना, सोचना जो भी क्रियाएँ की जाती हैं, वह प्राण शक्ति है परन्तु उसमें जो पौद्गलिक शक्ति सहायक बनती है, उसे पर्याप्ति कहते हैं। ये आपस में जुड़े हुए हैं। जैसे पाँच इन्द्रियों की प्राण शक्ति का कारण इन्द्रिय पर्याप्ति है, मनोबल, वचन बल, कायबल का कारण क्रमशः मन, भाषा एवं काय (शरीर) पर्याप्ति है। श्वासोच्छ्वास प्राण का कारण श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति तथा जीवन टिकाने में आहार महत्त्वपूर्ण होने से आयुष्य प्राण का कारण आहार पर्याप्ति है।



जैन दर्शन मीमांसा

1. जैन धर्म क्या है ?
2. जगत क्या है ?
3. उंत्सर्पिणी और अवसर्पिणी
4. लोक का स्वरूप
5. जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त



जैन धर्म क्या है?

प्र.255. धर्म किसे कहते हैं?

उ. दुर्गति में गिरते हुए जीव को जो धारण करें, उसे धर्म कहते हैं। जिससे आत्मा कर्म-पंक से मुक्त होकर निर्मल व उज्ज्वल अवस्था रूप मोक्ष पद प्राप्त करती है, उसे धर्म कहते हैं।

प्र.256. जैन धर्म किसे कहते हैं?

उ. जिन्होंने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर ली, उन्हें जिन कहते हैं एवं उनके द्वारा प्ररूपित धर्म को जैन धर्म कहते हैं।

प्र.257. क्या जैन कुल में जन्मा व्यक्ति ही जैन हो सकता है अथवा ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र भी?

उ. जैन धर्म जातिवादी एवं व्यक्ति-रागी न होकर गुणानुरागी है। जो भी व्यक्ति जिन/तीर्थकर पर श्रद्धा करता हुआ जिनाज्ञा के अनुरूप जीवन जीता है, वह जैन कहलाता है। जैन धर्म जाति प्रधान न होकर जिनाज्ञाप्रधान है। यहाँ जाति-पाति का कोई सवाल ही नहीं है। देखिये! आदिनाथ से महावीर तक चौबीसों तीर्थकर क्षत्रिय, परमात्मा महावीर के गौतमादि ग्यारह गणधर

ब्राह्मण, जम्बूकुमार वैश्य, हरिकेशी व मेतारज मुनि चाण्डाल, आनंद श्रावक पटेल (जाट) थे।

आपको पता हो तो आज भी अनेक जाट, रबारी, राजपूत, घांची, दर्जी आदि अन्यान्य जाति के लोग संयम जीवन की साधना में गतिमान हैं और अपनी आत्मा का कल्याण कर रहे हैं। नवकार मंत्र भी गुण प्रधान है। जिन्होंने भी राग-द्वेष रूप शत्रुओं को जीत लिया, वे समस्त अरिहंत पूजनीय हैं। चाहे उनका नाम महावीर हो या शिव। कृष्ण हो या बुद्ध।

प्र.258. जैन धर्म का प्रारंभ कब से हुआ?

उ. जैन धर्म अनादि अनन्त काल से चल रहा है एवं अनन्तकाल तक चलता रहेगा। अनन्त तीर्थकर हो चुके हैं और अनन्त तीर्थकर होंगे।

भरत क्षेत्र की वर्तमान अवसर्पिणी के अनुसार जैन धर्म का प्रारंभ आदिनाथ से हुआ।

उसके बाद अजितनाथादि धर्म को बढ़ाते-चलाते रहे। लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व महावीर स्वामी हुए, जिनका शासन चल रहा है।



महाविदेह क्षेत्र में सर्वदा तीर्थकरों का विचरण होता रहता है, वहाँ वर्तमान में सीमंधर आदि बीस तीर्थकर धर्मोद्योत कर रहे हैं।

प्र.259. महाराजश्री! लोगों के मुख से सुनते हैं कि जैन धर्म कोई स्वतंत्र धर्म नहीं है, यह हिन्दु अथवा बौद्ध धर्म की शाखा है तथा श्री पार्श्वनाथ एवं महावीर प्रभु ने कुछ वर्षों पूर्व ही चलाया है, इसमें सच्चाई क्या है ? यह बताइये।

उ. वास्तविकता यह है कि उन लोगों को जैन इतिहास की जानकारी नहीं है। जिन्होंने जैन धर्म की प्राचीनता के संदर्भ में गहराई एवं बारीकी से अध्ययन-शोधन किया है, उन विद्वानों का कहना है कि जैन धर्म असंख्य वर्ष प्राचीन है एवं आदिनाथ से चला आ रहा है। इस बारे में दो तथ्यों को प्रामाणिक माना जाता है —

1. शास्त्र 2. विद्वानों का मन्तव्य।

(i) शास्त्र— यजुर्वेद में ऋषभदेव, अजितनाथ एवं अरिष्टनेमि, इन तीन तीर्थकरों के नाम उपलब्ध होते हैं। भागवत पुराण में ऋषभ जैन धर्म के संस्थापक कहे गये हैं।

वायु पुराण, वराहमिहिर संहिता, ब्रह्मसूत्र, शंकर भाष्य में 'अर्हत्' शब्द

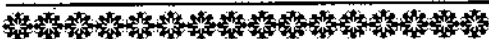
का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में एक स्थान पर कहा गया — अर्हत् इदं दयसे विश्वमम्बम्। हे अर्हन्! तुम विश्व पर दया करते हो। और अन्य स्थान पर कहा गया — हे अर्हन् ! आप ऐसी आत्मा है, जो रत्न की भांति प्रकाशित एवं मल विमुक्त है तथा विश्व के समस्त पदार्थों को एक साथ निरन्तर जानती है।

योगवाशिष्ठ में 'जिन' का, अग्नि पुराण में 'अर्हत्' मत का, महाभारत शान्ति पर्व अध्याय में 'स्याद्वाद' का विवेचन उपलब्ध होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि योगवाशिष्ठ, महाभारत एवं पुराण से पूर्व भी जैन धर्म प्रचलित था।

अमर कोषकार ने अर्हत् को मानने वाले को आर्हत् एवं स्याद्वादिक कहा है। शाश्वत कोष एवं शारदीय नाममाला में 'अर्हत्' को जिन का पर्यायवाची कहा गया है।

(ii) प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता अन्तर्राष्ट्रीय विद्वान् डॉ. हर्मन जेकोबी ने लिखा है कि 'जैन धर्म सर्वथा स्वतंत्र धर्म है। मेरा विश्वास है कि वह किसी का अनुकरण नहीं है।

लोकमान्य पण्डित बाल गंगाधर तिलक, महोपाध्याय सतीशचन्द्र, डॉ. राधाकृष्णन आदि अनेक



विद्वानों ने जैन धर्म को प्राचीन एवं स्वतंत्र धर्म के रूप में प्रमाणित किया है।

राम, लक्ष्मण, सीता, पाँच पाण्डव, कृष्ण, सत्यभामा, रुक्मिणी, द्रौपदी आदि भी जैन धर्मानुयायी थे।

महावीर के बाद अनेक राजा—महाराजा भी जैन हुए—जैसे चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट् खारवेल, अशोक सम्राट्, कुमारपाल, भामाशाह आदि।

प्र.260. जैन धर्म नास्तिक है अथवा आस्तिक?

उ. जैन धर्म की आत्मा, परमात्मा, पुण्य—पाप, स्वर्ग—नरक, कर्म—मोक्ष आदि में आस्था होने से आस्तिक है।

प्र.261 कोई कहता है— गौशाला—अनाथाश्रम बनाना धर्म है, कोई कहता है — प्रजा का विधिवत् पालन करना धर्म है तो बतायें कि धर्म का वास्तविक अर्थ क्या है?

उ. धर्म के मुख्य रूप से तीन अर्थ होते हैं—

1. प्रथम अर्थ—'वत्यु सहावो धम्मो'

वस्तु का स्वभाव (गुण) धर्म हैं। जैसे आग का स्वभाव उष्णता, पानी का स्वभाव शीतलता, सूर्य का स्वभाव तेजस्विता आदि।

2. **द्वितीय अर्थ**— धर्म का दूसरा अर्थ परम्परा, कर्तव्य और व्यवहार होता है। साम, दाम, दंड, भेद के द्वारा शासन चलाना, शत्रुओं को नष्ट कर प्रजा का रक्षण करना, यह सब राष्ट्र धर्म है।

भूखे—प्यासे को जलाहार देना, अंधे, बहरे, गूंगे, लूले आदि असहाय की सहायता करना, ये सब सामाजिक धर्म है।

माता—पिता की सेवा करना, संतान का लालन—पालन करना, यह पारिवारिक धर्म है। ये तीनों धर्म सामाजिक व्यवहार में गिने जाते हैं।

3. **तृतीय अर्थ**—आत्म शुद्धि, कषाय—मुक्ति एवं मोक्ष—प्राप्ति के हेतु से किये जाने वाले जप—तप, ज्ञान—ध्यान, संयम—साधना आदि निर्मल अनुष्ठान आत्म धर्म कहे जाते हैं।



जगत क्या है?

प्र.262. ब्रह्मा को विश्व निर्माता कहा जाता है तो क्या यह संभव है?

उ. इस विश्व को न ब्रह्मा ने बनाया, न किसी अन्य ईश्वर ने। यह अनादि—काल से स्वाभाविक रूप से चल रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा।

प्र.263. बहुधा सुना जाता है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर ही जगत्कर्ता है। क्या यह कथन न्याय संगत है?

उ. ईश्वर को जगत्कर्ता नहीं मानना चाहिये क्योंकि ऐसा मानने में अनेक दोष—आपत्तियाँ उपस्थित हो जाती हैं जैसे—

1. यदि ईश्वर ने संसार को बनाया तो किस साधन से बनाया क्योंकि साधन के बिना वस्तु का निर्माण असंभव है। कोई भी तन्तुवाय बिना धागे के वस्त्र का निर्माण नहीं कर सकता।
2. यदि कहे कि प्रभु ने स्वयं ही जगत की रचना की है यानि स्वयं ही नारकी, तिर्यच, मनुष्य और देव बना है तो फिर प्रश्न होता है कि ईश्वरत्व को छोड़कर संसार रूप धारण करके उसे दुःखमय जन्म—मरण, अशान्ति, तनाव और पीडाओं के झमेले में पडने की क्या जरूरत थी ?

3. यदि कोई कहे कि ईश्वर जीवों को कर्म फल भुगताने के लिये यह सब करता है तो यह भी उचित नहीं क्योंकि जब संसार था ही नहीं तो जीव ने कर्म कहाँ से किये? और जब कर्म नहीं किये तो उनका फल भुगतान कैसा?

4. यदि कहा जाये कि ईश्वर ने सोचा कि मैं अनेक हो जाऊँ और जगत् बनाकर मनोरंजन करूँ तो यह भी उचित नहीं है क्योंकि ईश्वर के मन नहीं है और वह कोई अबोध बाल तो है नहीं कि उसे खिलौना चाहिये। ईश्वर तो अपने आत्म गुणों में रमणता से आनंद प्राप्त करता है।

5. फिर ईश्वर ने ऐसे नास्तिक, चोर, व्याभिचारी, क्रोधी, मायावी लोगों से भरा संसार क्यों बनाया। यदि यह कहा जाये कि सभी अपने अपने कर्मों के अनुसार फल प्राप्त करते हैं, तो फिर ईश्वर को जगत्कर्ता मानने की आवश्यकता नहीं है। इससे स्पष्ट है कि सृष्टि अनादिकाल से अपने आप गतिमान है।

प्र.264. इससे तो ऐसा लगता है कि जैन धर्म ईश्वर की सत्ता नहीं मानता है?

उ. जैन दर्शन में ईश्वरीय/परमात्म सत्ता की व्याख्या की गयी है परन्तु उसे जगत्कर्ता-धर्ता एवं नियन्ता नहीं माना गया है। हर आत्मा में परमात्मा छिपा है। जब आत्मा समस्त कर्मों से मुक्त हो जाता है, तब वह परमात्मा (सिद्ध) बन जाता है। परमात्म स्वरूप दो पदों की व्याख्या जैनधर्म में की गयी है—

1. अरिहंत 2. सिद्ध।

इनका आलम्बन लेकर जीव क्रमशः कर्म शत्रु पर विजय प्राप्त करता हुआ स्वयं निरंजन-निराकार सिद्ध/परमात्मा बन जाता है।

प्र.265. ईश्वर एक है या अनेक?

उ. जो जीव संसार रूप जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाते हैं, वे ईश्वर कहलाते हैं। अतः ईश्वर एक न होकर अनन्त हैं।

प्र.266. ईश्वर बनने के बाद वे फिर से संसार में आते हैं अथवा नहीं?

उ. जब तक कर्म बीज रहता है, तब तक ही संसार रूपी वृक्ष होता है। मोह, माया, अज्ञान, इच्छा, राग-द्वेष आदि दोषों के कारण ही जीव संसार में जन्म-मरण करता है। ईश्वर में मोहादि का अभाव होने से वे पुनः संसार में नहीं आते अर्थात् अवतार नहीं लेते। गीता में श्रीकृष्ण धनुर्धर अर्जुन को अपना धाम बताते हुए कहते हैं— 'यद्गत्वा न निवर्तन्ते, तद्दधाम परमं मम।' जहाँ जाकर

वापस नहीं लौटा जाता, वही मेरा धाम है।

प्र.267. जब ईश्वर न तो सुख देता है, न शक्ति, फिर उनके कीर्तन, अर्चन व स्मरण से क्या लाभ?

उ. जैसे दर्पण में देखकर व्यक्ति अपने मुख पर लगे दाग को साफ कर लेता है, उसी प्रकार हम ईश्वर स्वरूप को जानकर एवं उन्हें आदर्श मानकर आत्मा पर लगे मिथ्यात्व, कषाय, मूर्च्छा, इच्छा के मेल, गंदगी एवं कचरे को साफ कर सकते हैं अतः ईश्वर का ध्यान वैसा बनने के लिये करना चाहिये, न कि संसार की कामना के लिये।

प्र.268. महाराजश्री ! यह तो अब समझ में आ चुका है कि जगत् का कोई कर्ता नहीं है एवं यह अनादि-अनन्त एवं स्वभाविक है तो फिर जगत् का वास्तविक स्वरूप क्या है?

उ. सामूहिक छह द्रव्यों का नाम जगत् है—

1. धर्मास्तिकाय, 2. अधर्मास्तिकाय, 3. आकाशास्तिकाय, 4. पुद्गला-स्तिकाय, 5. जीवास्तिकाय, 6. काल

1. जीवास्तिकाय के सिवाय शेष पाँच अजीव हैं।

2. पुद्गलास्तिकाय के अतिरिक्त पाँच अरूपी हैं, उनमें वर्ण, गंध, रस आदि गुण नहीं हैं।

3. पुद्गलास्तिकाय एवं जीव अनन्त हैं, शेष चार एक-एक ही हैं।

1. धर्मास्तिकाय—जो द्रव्य गति करने

में सहज रूप से सहायक बनता है, उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं। जैसे जल मछली के तैरने में सहज सहायक बनता है। वैज्ञानिकों की ईथर की मान्यता इस द्रव्य से मेल खाती है।

2. **अधर्मास्तिकाय**—रुकने / ठहरने में जो द्रव्य सहज भाव से सहायक बनता है, उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं।

3. **आकाशास्तिकाय**—जो अवकाश / स्थान देता है, उसे आकाशा-स्तिकाय कहते हैं। यहाँ नभ-आकाश को नहीं अपितु खाली स्थान को आकाश समझना है।

4. **पुद्गलास्तिकाय** — जो पूरण, गलन, सडन, उत्पन्न, नष्ट आदि गुणों से युक्त है, जिसमें वर्ण-गंध-रस-स्पर्श एवं रूप पाये जाते हैं, उसे पुद्गलास्तिकाय कहते हैं।

शरीर, दुकान, मकान, दुनिया का हर पदार्थ पुद्गल स्वरूप है, उसकी उत्पत्ति व विनाश गुण जानकर उसके प्रति निःस्पृह, निरपेक्ष व अनासक्त बनना चाहिये।

5. **जीवास्तिकाय** — अनन्त ज्ञानादि गुण संयुक्त, सुख-दुःख का अनुभवी, चेतनावान्, प्राणवान् द्रव्य को जीवास्तिकाय कहते हैं। चींटी और हाथी में समान आत्मा व

उनके समान सुख-दुःख जानकर उनके प्रति समत्व व आत्म-तुल्य का व्यवहार करना चाहिये।

6. **काल**— जो नये को पुराना व पुराने को नष्ट करता है, वह काल द्रव्य है। शिशु को बाल, बाल को किशोर, किशोर को युवा, युवा को प्रौढ़, प्रौढ़ को वृद्ध एवं वृद्ध को मरणासन्न करना कालद्रव्य का ही कार्य है। व्यवहार की अपेक्षा से इसके तीन भेद होते हैं — अतीत, वर्तमान एवं भविष्यकाल।

प्र.269. क्या संसार का कभी विनाश होता है?

उ. काल के अनुसार संसार की अवस्था (पर्याय-स्वरूप) बदलती है परन्तु मूल रूप से उसका सर्वथा विनाश कभी नहीं होता।

प्र.270. द्रव्य और पर्याय में क्या अन्तर है?

उ. द्रव्य मूल रूप से कभी नहीं बदलता है, जबकि पर्याय बदलती है। जैसे एक सोने के कडे को पिघलाकर अंगुठी बना दी जाये तो कडा मिटा और अंगुठी उत्पन्न हुई पर दोनों ही दशाओं में सोना बरकरार रहा। इसी प्रकार मनुष्य मरा, देवलोक में उत्पन्न हुआ पर आत्मा / जीव द्रव्य दोनों में रहा अतः स्पष्ट है कि द्रव्य ध्रुव, नित्य होता है और पर्याय परिणमनशील होने से उत्पन्न व नष्ट होती है। यह जानकर प्रज्ञावान् को पदार्थ, सत्ता, रूप आदि पर राग अथवा द्वेष नहीं करना चाहिये।



उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी

प्र.271. समय किसे कहते हैं?

उ. काल का वह अविभाज्य अंश जिसका केवली के ज्ञान में भी विभाग नहीं हो सके, उसे समय कहते हैं।

एक दिन को चौबीस घंटों में, एक घण्टे को साठ मिनट में, एक मिनट को साठ सैकेण्ड में विभक्त किया जा सकता है पर समय को नहीं।

(1) एक पलक झपकाने में असंख्य समय बीत जाते हैं।

(2) जीर्ण-शीर्ण कपड़े के दो टुकड़े कोई बलशाली करें तो उसे लगभग एक सैकेण्ड जितना समय लगे। उस वस्त्र के निकटतम दो धागों (तन्तुओं) के टूटने के बीच असंख्य समय व्यतीत हो जाते हैं।

प्र.272. जैन दर्शनानुसार काल को विवेचित कीजिये।

- उ. 1. असंख्य समय— एक आवलिका
2. 24 मिनट — एक घड़ी
3. दो घड़ी — एक मुहूर्त
4. पन्द्रह मुहूर्त — एक दिन
(एक रात्रि)
5. एक दिन—रात— एक अहोरात्रि
6. पन्द्रह अहोरात्रि — एक पक्ष

7. दो पक्ष — एक मास

8. दो माह — एक ऋतु

9. छह ऋतु — एक वर्ष

10. पाँच वर्ष — एक युग

11. 70 लाख 56 हजार

करोड़ वर्ष — एक पूर्व

12. असंख्य वर्ष — एक पल्योपम

13. दस कोडा कोडी

पल्योपम — एक सागरोपम

17. दस कोडा — एक उत्सर्पिणी

कोडी अथवा एक

सागरोपम अवसर्पिणी

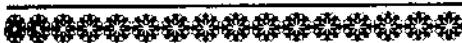
प्र.273. उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी किसे कहते हैं?

उ. उत्सर्पिणी अर्थात् उन्नति—उत्कर्ष का काल।
अवसर्पिणी अर्थात् अवनति—अपकर्ष का काल।

जिस काल में आयुष्य, धन, बल, धर्म, सौंदर्य आदि बढ़ते जाते हैं, वह उत्सर्पिणी और जिस काल में ये सभी क्रमशः हीन होते जाते हैं, वह अवसर्पिणी कहलाती है। इन दोनों में छह—छह आरे होते हैं।

प्र.274. आरे से क्या अभिप्राय है?

उ. जैन ग्रन्थों में काल को चक्र (पहिये)



की उपमा दी गयी है। जिस प्रकार चक्र में बारह आरे (लकड़ी के डण्डे) होते हैं, उसी प्रकार कालचक्र के भी बारह आरे माने गये हैं। आरे का अर्थ विभाग समझना चाहिये।

प्र.275. यह भी तो बताईये कि बारह आरे कौन-कौन से होते हैं?

उ. (1)सुषम-सुषम (2) सुषम (3) सुषम-दुषम (4) दुषम-सुषम (5) दुषम (6) दुषम-दुषम। इसी नाम के छह आरे उत्सर्पिणी में होते हैं। परन्तु वे उल्टे क्रम से चलते हैं। सुषम यानि सुख एवं दुषम यानि दुःख।

प्र.276. अवसर्पिणी के प्रथम आरे में क्या-क्या होता है?

उ. (1)सुषम-सुषम यानि अतिशय सुख का वातावरण।
 (2)काल-चार कोडाकोडी सागरोपम का।
 (3)तीन कोस की अवगाहना।
 (4)तीन पल्योपम की आयु।
 (5)राजा-प्रजा का व्यवहार नहीं होता है। सभी स्वतन्त्र जीवन जीते हैं।
 (6)सवारी का सर्वथा अभाव होता है। मनुष्य पद-विहारी होते हैं।
 (7)सिंह, अजगर, सर्प, आदि हिंसक पशु किसी भी प्रकार का उपद्रव नहीं करते हैं। मक्खी, मच्छर, आदि क्षूद्र प्राणी नहीं होते हैं।

(8)इस आरे में अत्यन्त रमणीय, सुखद एवं मनोरम वातावरण होता है। मिट्टी का स्वाद गुड़-शक्कर के समान मधुर होता है। काँटें बिल्कुल नहीं होते हैं।

(9)सोना, चांदी, रत्न आदि का सदभाव होता है पर लोग काम में नहीं लेते हैं।

(10)मनुष्य अत्यन्त सरल, भद्रिक, मंदकषायी, शान्तिप्रिय एवं कलह-रहित होते हैं।

(11)उनका शरीर स्वस्थ एवं रोग-मुक्त होता है।

(12)वे तीन-तीन दिन के अन्तर से तुअर के दाने प्रमाण में भोजन करते हैं।

(13)नगर, दुकान, मकान आदि नहीं होते हैं। कल्पवृक्षों के नीचे लोग रहते हैं। वे कल्पवृक्ष विविध आकृति वाले सुन्दर, मनोहर एवं आरामदायक होते हैं।

(14)असि-मसि-कृषि का कार्य नहीं होता है। दस प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त सामग्री से युगलिक मनुष्य शांति व आदरपूर्वक जीवन यापन करते हैं।

(15)मृत्यु से छह मास पूर्व एक पुत्र-पुत्री युगल का जन्म होता है। उनपचास दिन के उपरान्त



वह युवा होकर पति-पत्नी में परिणत हो जाता है। एक साथ दो-दो का जन्म होने से वे युगलिक कहलाते हैं।

- (16) उनकी मृत्यु खांसी, छींक, जम्हाई के द्वारा होती है तथा अल्पकषायी होने से मरकर नियमतः देवलोक में जाते हैं।

प्र.277. कल्पवृक्ष दस प्रकार के होते हैं परन्तु कौन-कौन से?

उ. कल्प अर्थात् इच्छा। इच्छानुसार पदार्थ देने वाले कल्पवृक्ष कहलाते हैं। ये वृक्ष स्वाभाविक वनस्पतिकायमय होते हैं। युगलिकों के पुण्य-प्रभाव से मन-वाञ्छित सामग्री देते हैं।

- (1) मातंग—शक्तिवर्द्धक फलों का रस देते हैं।
- (2) भाजनांक—स्वर्ण-रजतमय बर्तन देते हैं।
- (3) त्रुटितांग—उनपचास प्रकार के बाजे देते हैं तथा विविध राग-रागिनियाँ सुनाते हैं।
- (4) दीपांग—दीपक के समान प्रकाश करते हैं।
- (5) ज्योतिषांग—सूर्यवत् प्रकाशित करते हैं।
- (6) कुसुमांग—सुरभिमयी विविध पुष्प-मालाएँ प्रदान करते हैं।
- (7) चित्ररसांग—विविध प्रकार के

सरस आहार देते हैं।

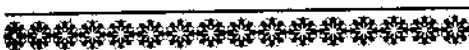
- (8) मण्यंग—स्वर्ण व रत्नमय आभूषण देते हैं।
- (9) गेहाकार—निवास हेतु मनोहर महल उपस्थित करते हैं।
- (10) वस्त्रांग—बहुमूल्य वस्त्र प्रदान करते हैं।

प्र.278. दूसरे आरे के भाव बताओ।

उ. सुषम नामक इस आरे में दुःख का सर्वथा अभाव होता है परन्तु सुख प्रथम आरे की अपेक्षा कम होता है। तीन कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण इस आरे में आयु दो पल्योपम की एवं अवगाहना दो कोस की होती है। दो दिन के अन्तर में बेर फल प्रमाण आहार करते हैं तथा सन्तान का 64 दिन तक लालन-पालन करते हैं। शेष बातें प्रथम आरे के अनुरूप हैं पर सुख में क्रमशः हानि होती जाती है।

प्र.279. तीसरे आरे का स्वरूप बताईये।

उ. दो कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण तीसरे आरे में उत्कृष्ट अवगाहना एक कोस और आयु एक पल्य प्रमाण होती है। एक-एक दिन के अन्तर में भोजन करने वाले युगलिक मनुष्य 79 दिनों तक पुत्र-पुत्री का पालन करते हैं। काल प्रभाव से शनैः शनैः कल्पवृक्ष घटने से स्वाधिकार एवं संग्रह की दूषित भावनाएँ मन में धर करने



लगी। इससे कलह एवं आपसी लड़ाई-झगड़े का जन्म हुआ। कुलकर्षों की हकार-मकार-धक्कार जैसी दण्डनीतियों का भी अतिक्रमण होने लगा। तत्पश्चात् नाभिकुलकर की पत्नी मरुदेवी की रत्नकुक्षि से प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव का जन्म हुआ।

परिग्रह व कलह के निराकरण हेतु ऋषभकुमार ने असि-मसि-कृषि का प्रवर्तन किया। जम्बूद्वीप के इस भरत क्षेत्र में आपने ही समय का तकाजा समझकर परिवर्तन किये जैसे-

- (1) पूर्वकाल में राजा नहीं होता था। इन्द्रादि ने आपको नृपति पद पर अभिषिक्त किया तब से राजा-प्रजा का व्यवहार चला।
- (2) पूर्व में कल्पवृक्षों द्वारा यथेष्ट सामग्री प्राप्ति होने से भोजन आदि विधियों का लोगों को ज्ञान नहीं था। तब आपने कृषि, अग्नि आदि के माध्यम से अन्न उगाना/पकाना/खाना सिखाया।
- (3) पहले कोई पढ़ना, लिखना नहीं जानता था। काल की मांग समझकर आपने पुत्री ब्राह्मी को अक्षर (अ,आ,ई आदि) का एवं सुंदरी को अंक (1, 2, 3) का ज्ञान प्रदान किया।

(4) पूर्व में विवाह प्रथा नहीं थी। एक स्त्री जिस जोड़े को उत्पन्न करती थी, वह उचित समय पर पति-पत्नी में बदल जाता था। आपकी सुमंगला एवं सुनंदा दो रानियाँ थी, उनसे सौ पुत्र एवं दो पुत्रियाँ हुई। ज्येष्ठ पुत्र भरत प्रथम चक्री बने।

(5) आपने पुरुषों की 72 एवं स्त्रियों की 64 कलाओं का प्रवर्तन किया।

(6) इससे पूर्व कोई धर्म नहीं था। आप ही प्रथम साधु, प्रथम जिन एवं प्रथम तीर्थकर बने। परमात्मा ऋषभदेव का निर्वाण तीसरे आरे में हुआ। उनके निर्वाण के बाद तीस वर्ष साढ़े आठ माह व्यतीत होने पर चतुर्थ आरा लगा।

प्र.280. चौथे आरे का स्वरूप समझाईये।

उ. सुख कम और दुःख ज्यादा ऐसा दुषम-सुषम नामक चौथा आरा एक कोडा-कोडी सांगरोपम में से 42,000 वर्ष जितने कम काल का होता है। त्रिषष्टिशलाका पुरुषों में से 61 शलाका पुरुष इस आरे में हुए- 23 तीर्थकर, 11 चक्रवर्ती, नव-नव बलदेव, वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव। इस आरे में जीव पाँचों गतियों में जाते हैं। उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष्य की अवगाहना एवं आयु एक करोड़ पूर्व



की होती है।

प्र.281. पांचवें आरे की विवेचना कीजिये।

उ. (1) 21 हजार वर्ष के इस दुःखपूर्ण दुषम आरे में जन्मा जीव मोक्षगामी नहीं होता है, शेष चार गतियों में जाता है।

(2) मनःपर्यवज्ञान, केवलज्ञान, क्षपक श्रेणी, उपशम श्रेणी, सिद्धि गमन आदि दस बातें पंचम आरे में नहीं होती हैं।

(3) पंचम आरे में पच्चीस बातें मुख्य रूप से घटित होती है— जैसे शहर गाँव की तरह और गाँव शमशान जैसे हो जाते हैं, कुलीन लोग दास—दासी की भाँति होते हैं, उनका आदर—सम्मान नहीं होता है, दुष्काल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, रोग, विघ्न बढ़ जाते हैं, झगड़े—मतभेद बढ़ते हैं, गुरु एवं माता—पिता का सत्कार—सेवा घट जाती है, कुदेवों कुगुरुओं, एवं कुधर्म का अधिक प्रचलन बढ़ जाता है, स्त्रियों में लज्जा घट जाती है, आदि।

(4) इस आरे के आरंभ में आयु सौ वर्ष एवं अवगाहना सात हाथ की थी, वह घटती हुई अन्त में बीस वर्ष की एवं एक हाथ की रह जायेगी।

(5) आरे के अन्त में इन्द्र महाराज

उद्घोषणा करेंगे— जो धर्म—कर्म करना हो, वह कर लो, छट्टा आरा लगने वाला है।

यह सुनकर दुप्पसहसूरि, साध्वी फल्गुश्री, नागिल श्रावक एवं सत्यश्री श्राविका अनशन करके स्वर्गवासी हो जायेंगे।

(7) अन्तिम दिन आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को प्रथम प्रहर में जैन मत का, दूसरे प्रहर में अन्य धर्मों का, तीसरे प्रहर में राजनीति एवं चतुर्थ प्रहर में अग्नि का लोप/विच्छेद हो जायेगा। श्रावण वदि एकम को अतिशय दुःखपूर्ण षष्ठम आरे का प्रारंभ होगा।

प्र.282. दुषम दुषम आरे की व्याख्या कीजिये।

उ. (1) 21 हजार वर्ष प्रमाण दुःख, अधर्म, हिंसा और कषाय से परिपूर्ण इस आरे के प्रारंभ में विष, अग्नि, धूल, आदि की भीषण वृष्टियाँ होगी।

जहर से प्राणी मर जायेंगे, अग्नि से सब कुछ भस्मीभूत हो जायेगा। प्रलयकारी संवर्तक वायु से भूमि अस्त—व्यस्त हो जायेगी। वैताढ्य पर्वत, ऋषभकूट, गंगा व सिंधुनदी के अलावा समस्त पर्वत, नदी—नाले महल, घर आदि नष्ट हो जायेंगे।

(2) उस समय चन्द्रमा की किरणें

अत्यन्त शीतल एवं सूर्य की किरणों
अतिशय उष्ण होगी।

(3) पृथ्वी का स्पर्श तलवार-धार की
तरह तीक्ष्ण-वेदनाकारी एवं
अंगारों के समान अत्युष्ण होगा।
उसमें फूल, वृक्ष आदि की उत्पत्ति
नहीं होगी।

(4) ग्राम, नगर, पहाड़, समुद्र, तालाब
आदि सब कुछ विनष्ट हो जायेंगे।
गंगा-सिन्धु नामक दो नदियों में
स्थ की धुरी प्रमाण ही पानी रहेगा।
उसमें भी भयंकर मगरमच्छ आदि
प्राणी विशेष रूप से उत्पन्न होंगे।

(5) विष आदि की वृष्टि होने पर
भयभीत होकर मनुष्य वैतादय
पर्वत के उत्तर में स्थित
गंगा-सिन्धु नदियों के आठ किनारों
पर जो बहत्तर गुफाएँ हैं, उसमें
निवास करेंगे।

(6) उनकी अवगाहना एक हाथ की,
स्त्री की 16 वर्ष की एवं पुरुष
की 20 वर्ष की उत्कृष्ट आयु होगी।

(7) वे मनुष्य तीव्र कषायी होने से
कलह करते रहेंगे। अति
काम-लिप्सु होने से उन्हें माँ,
बहिन, बेटी का भी भान नहीं
रहेगा। स्त्री पाँच वर्ष की उम्र में
गर्भ धारण कर लेगी। संतान
अधिक होगी।

(8) उन जीवों को अपरिमित आहार की

इच्छा होगी। क्षुधापूर्ति के लिये
फल, धान्यादि नहीं होने से वे मच्छ,
कच्छ आदि का आहार करेंगे।

सूर्योदय के एक मुहूर्त पश्चात् वे नदी
में स्थित जलचर जन्तुओं को
पकड़कर धूल में दबा देंगे। शाम
तक सूर्य के तीव्र ताप में शकरकंद की
भाँति स्वतः सिक जायेंगे तब सूर्यास्त
के एक मुहूर्त बाद निकालकर लायेंगे,
काट-काटकर खायेंगे और कठोर-
घोर पापकर्मों का संचय करके
प्रायः नरक और तिर्यच योनि में
जन्म लेंगे।

यहाँ अवसर्पिणी के छह आरों का
वर्णन परिपूर्ण होता है।

प्र.283. उत्सर्पिणी का स्वरूप समझाओ।

उ. उत्सर्पिणी का स्वरूप अवसर्पिणी के
समान है पर उसका क्रम उल्टा है।
अवसर्पिणी में जो बल, आयु,
अवगाहना आदि घटते जाते हैं, वे
उत्सर्पिणी में बढ़ते जाते हैं।

(1) प्रथम आरा — यह आरा अव-
सर्पिणी के छठे आरे के समान
होगा। विशेषता यह है कि इसमें
क्रमशः आयु, अवगाहना आदि
बढ़ती जायेगी।

(2) दूसरा आरा — इस आरे के प्रारंभ
में सात-सात दिन तक पांच
प्रकार की वृष्टि होगी।

(1) पुष्कर संवर्तक मेघ— इससे भूमि

की. उष्णता, रूक्षता नष्ट हो जायगी। इसके बाद सात दिन तक वृष्टि बंद रहेगी।

(2) **क्षीर मेघ**— इससे पृथ्वी की दुर्गन्ध नष्ट हो जायेगी। इसके पश्चात् सात दिन तक वर्षा नहीं होगी।

(3) **घृत मेघ**— इससे पृथ्वी में स्निग्धता उत्पन्न होगी।

(4) **अमृत मेघ**— इससे पृथ्वी में धान्य, फल, फूल, आदि की उत्पत्ति होगी।

(5) **इक्षु रस मेघ**— इससे वनस्पति रस एवं मधुरता से परिपूर्ण बनेगी। उनपचास दिनों में यह आश्चर्य—जनक शुभ परिवर्तन देखकर, रमणीय, मनोरम एवं हरी-भरी सृष्टि को निहारकर सब लोग बिल से बाहर निकलेंगे। नृत्य करके अपना आनंद अभिव्यक्त करेंगे और परस्पर कहेंगे— आज के दिन पुण्योदय—सौभाग्योदय हुआ है। देखो! यह प्रकृति कितनी सुखदायी और शान्तियुक्त हो गयी है। तब वे मांसाहार आदि को छोड़कर खाद्य—पदार्थों का भोग करेंगे और प्रेम से मिलकर अनेक सामाजिक मर्यादाओं का निर्माण करेंगे।

वह दिन होगा भाद्रपद शुक्ला पंचमी का, जिस दिन को

जैनागमों में सांवत्सरिक पर्व माना गया है। लगातार वर्षा, गंध, रस, स्पर्श आदि में अनंत गुणी वृद्धि होगी।

(3) **तीसरा आरा**— यह आरा अव—सर्पिणी के चतुर्थ आरे के समान होगा। इस आरे के तीन वर्ष साढ़े आठ माह बीतने पर नरक से च्यवकर श्रेणिक पद्मनाभ नामक तीर्थंकर बनेंगे। तदुपरान्त क्रमशः सुरदेवादि बावीस तीर्थंकर, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ—नौ बलदेव—वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव जन्म लेंगे।

(4) तत्पश्चात् चौथे आरे में अन्तिम तीर्थंकर एवं चक्रवर्ती होंगे। करोड़ पूर्व वर्षों के बाद कल्पवृक्षों की उत्पत्ति होगी। उनसे आहार आदि की प्राप्ति होने से असि, मसि, कृषि कार्य बंद होंगे। बादर अग्नि और धर्म का विच्छेद हो जायेगा। उसके बाद मनुष्य धर्म का विच्छेद होगा और युगलिक युग का प्रारंभ होगा।

(5-6) फिर 5 वां एवं 6वा आरा अवसर्पिणी के पहले व दूसरे आरे के समान होगा। इसके बाद फिर अवसर्पिणी का प्रारंभ होगा। इस प्रकार यह कालचक्र अनन्तकाल से चल रहा है तथा अनन्त काल तक चलता रहेगा।



लोक का स्वरूप

प्र.284. लोक और अलोक में क्या अन्तर है?

उ. जिस क्षेत्र में धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल, जीव और काल, ये छहों द्रव्य पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं।

जिस क्षेत्र में आकाशास्तिकाय नामक एक मात्र द्रव्य पाया जाता है, उसे अलोक कहते हैं।

प्र.285. लोक बड़ा है अथवा अलोक?

उ. लोक से अलोक अनन्त गुणा बड़ा है।

प्र.286. लोक कितने रज्जु प्रमाण है?

उ. चौदह रज्जु प्रमाण। एक रज्जु असंख्य कोडाकोडी योजन प्रमाण कहा गया है।

प्र.287. योजन आदि मापदण्डों को समझाईये।

उ. (1)सुई की नोक जितने स्थान को घेरती है, उसका असंख्यातवाँ भाग—अंगुल का असंख्यातवाँ भाग।

2. छह अंगुल की — एक मुट्ठी

3. दो मुट्ठी की — एक वेंत

4. दो वेंत का — एक हाथ

5. दो हाथ का — एक दण्ड

6. दो दण्ड का — एक धनुष्य

7. दो हजार — एक कोस

धनुष्य का (गारु)

8. चार कोस का — एक योजन
व्यवहार में एक योजन तेरह कि.
मी. का होता है।

प्र.288. सम्पूर्ण लोक को कितने भागों में बांटा गया है?

उ. तीन भागों में—

(i) उर्ध्वलोक— 7 रज्जु में से 900 योजन कम प्रमाण विस्तृत उर्ध्वलोक में सिद्धशिला एवं देवलोक स्थित है।

(ii) मध्यलोक— 1800 योजन प्रमाण मध्यलोक में मनुष्य, तिर्यच, ज्योतिष्क, व्यंतर एवं वाणव्यंतर देव स्थित हैं।

(iii) अधोलोक— 7 रज्जु में से 900 योजन कम क्षेत्र में नारकी, भवनपति तथा परमाधामी देव हैं।

प्र.289. मध्यलोक कितना विस्तृत है?

उ. (1)1800 योजन मोटा एवं असंख्य योजन लम्बा—चौड़ा है, जिसके ठीक मध्य में जम्बूद्वीप है और उसके मध्य में सुदर्शन नामक मेरु पर्वत है।

(2)जम्बूद्वीप के चारों तरफ लवण

समुद्र है। उससे आगे-आगे वलयाकार में धातकी-खण्ड, कालोदधि समुद्र, पुष्करावर्त द्वीप आदि हैं। उनका विस्तार क्रमशः दुगुना-दुगुना है। असंख्य द्वीप-समुद्र वाले मध्यलोक दो अन्त में स्वयंभूरमण समुद्र है।

(3) जम्बूद्वीप थाली के आकार का एवं शेष द्वीप-समुद्र चूड़ी जैसी आकृति के हैं।

प्र.290. क्या इन सभी द्वीप-समुद्रों में मनुष्य होते हैं?

उ. जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड एवं अर्द्ध पुष्करावर्त-द्वीप, इन ढाई द्वीपों में तथा लवण समुद्र के कुछ भाग में ही मनुष्यों का वास है। जहाँ तक मनुष्यों का वास है, उसे मनुष्य लोक एवं समय क्षेत्र कहा जाता है। जंघाचारण, विद्याचारण मुनियों के अलावा कोई भी मनुष्य देव-शक्ति

के बिना इससे बाहर नहीं जा सकता है।

प्र.291. ढाई द्वीप में कुल कितने मेरु पर्वत हैं?

उ. पांच-एक जम्बूद्वीप में, दो धातकी-खण्ड में एवं दो अर्द्धपुष्करावर्त द्वीप में हैं। मेरु पर्वत दस हजार योजन चौड़ा और एक लाख योजन प्रमाण ऊँचा है।

प्र.292. लोक का आकार कैसा कहा गया है?

उ. कटि (कमर) पर दोनों हाथ रखकर पाँव चौड़े किये हुए मनुष्य जैसा आकार लोक का है।

प्र.293. जीवों का अल्पबहुत्व बताओ।

उ. इस लोक में-

1. सबसे कम मनुष्य हैं।
2. नैरयिक उनसे असंख्य गुणा हैं।
3. देव उनसे असंख्य गुणा हैं।
4. सिद्ध उनसे अनन्तगुणा हैं।
5. तिर्यच उनसे अनन्त गुणा हैं।



जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त

प्र.294. अनेकान्तवाद से क्या अभिप्राय है?

उ. अनेक दृष्टिकोणों से वस्तु का कथन करना अनेकान्तवाद कहलाता है। इसे स्थादवाद, विभज्यवाद भी कहा जाता है। जैसे एक व्यक्ति अपने माता-पिता की अपेक्षा से पुत्र है तो अपनी सन्तान की अपेक्षा से पिता है। वह विविध अपेक्षाओं से नाना-दोहिता, चाचा-भतीजा, ससुर-दामाद, साला-बहनोई, शत्रु-मित्र आदि भी हो सकता है।

यह अनेकान्तवाद का सिद्धान्त एक ही पदार्थ व व्यक्ति में विपरीत गुणों का कथन करता है। एक पाँच फुट वाला व्यक्ति लम्बा है भी और नहीं भी। वह 3, 4 फुट वाले की अपेक्षा से लम्बा है तथा 6, 7 फुट वाले की अपेक्षा बौना है।

यह अनेकान्त का सिद्धान्त परिवार से लेकर से राष्ट्र तक, झोंपड़ी से लगाकर महल तक, कृषक से लगाकर राजनेता तक एवं व्यक्ति से लेकर सम्पूर्ण सृष्टि तक सभी को सुखी और शान्तिमय बना सकता है। जैसे एक व्यक्ति दुःखी है क्योंकि वह किराये के मकान में रहता है पर वह

सोच बदल ले कि मैं उनकी अपेक्षा तो सुखी ही हूँ जिनको किराये का घर भी नसीब नहीं हुआ है, फुटपाथ पर जीवन-गुजारा करते हैं। इसके द्वारा हम हर बात को स्पष्ट, पूर्ण एवं व्यवस्थित जानकर जीवन यात्रा को आनंदमय बना सकते हैं।

प्र.295. उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य, इन तीन बातों को बताओ।

उ. हर वस्तु-पदार्थ तीन गुणों से संयुक्त है-

1. उत्पाद- उत्पन्न होना।
2. व्यय- नष्ट होना।
3. ध्रौव्य-स्थिर होना। इसे त्रिपदी कहते हैं।

जैसे-दूध से दही बनाया तो दूध का विनाश एवं दही का जन्म हुआ पर गौरस दोनों में ज्यों का त्यों बना रहा। स्वर्ण की अंगूठी को पिघलाकर चेन बनायी तो अंगूठी का नाश और चेन की उत्पत्ति हुई पर सोना दोनों में स्थिर रहा।

प्र.296. द्रव्य, गुण और पर्याय से क्या अभिप्राय है?

उ. जिसमें गुण और पर्याय रहते हैं, उसे द्रव्य कहा जाता है। जो द्रव्य से कभी

भी अलग- नहीं होता है, उसे गुण कहते हैं। पूर्व आकार, स्थिति आदि का त्याग एवं नये आकारादि की प्राप्ति को पर्याय कहते हैं।

द्रव्य छह प्रकार के हैं, जिनका पूर्व में विवेचन किया जा चुका है। जीवास्तिकाय (आत्मा) एक द्रव्य है, उसमें चेतनता, उपयोग, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, आदि अनन्त गुण नित्य एवं अविनाभावी रूप से स्थित हैं, इस विशिष्टता को गुण कहा जाता है। मनुष्य आदि का मरकर देवादि होना पर्याय कहलाता है। इस प्रकार जीव को द्रव्य, चेतनत्व आदि को गुण तथा देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि रूपों में परिवर्तित होना पर्याय कहलाता है।

प्र.297. निक्षेप किसे कहते हैं?

उ. प्रतिपाद्य वस्तु का व्यवस्थित रूप से बोध प्राप्त करने के लिये उसमें नाम आदि की स्थापना करना निक्षेप कहलाता है। निक्षेप चार प्रकार के कहे गये हैं—

(1) **नाम निक्षेप**— किसी भी वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि के गुण— अवगुण की विवक्षा किये बिना व्यवहार हेतु नाम रखना नाम निक्षेप कहलाता है। जैसे—पहचान हेतु राम, कृष्ण, मोहन, सोहन

आदि नाम रखना।

(2) **स्थापना निक्षेप**— किसी व्यक्ति अथवा वस्तु का चित्र, मूर्ति आदि में आरोपण करना। जैसे महावीर, कृष्ण आदि की मूर्ति अथवा चित्र।

(3) **द्रव्य निक्षेप**— भूतकाल अथवा भविष्य के आधार पर वर्तमान में कथन करना। जैसे—गृहस्थाश्रम में स्थित अव्यक्त तीर्थंकर को अथवा उनके निर्वाण के बाद उनकी काया को तीर्थंकर कहना।

(4) **भाव निक्षेप**— वर्तमान के आधार पर कथन करना। जैसे केवल—ज्ञान—केवलदर्शन से युक्त ऋषभ, महावीर आदि प्रभु देशना दे रहे हो, तब उनको तीर्थंकर कहना।

प्र.298. जैन दर्शन एवं व्यवहार में प्रयुक्त शब्दों की व्याख्या कीजिये।

उ. (1) **देव गुरु पसाय**— जब साधु—साध्वी भगवंतों को सुख शांता—पृच्छा की जाती है, तब वे देव गुरु पसाय कहते हैं, यानि देव और गुरु की कृपा से शांता है।

(2) **वर्तमान जोग**— गौचरी की प्रार्थना करने पर गुरु भगवंत स्पष्ट रूप से स्वीकृति अथवा निषेध न करके वर्तमान जोग कहा करते हैं अर्थात् उस समय द्रव्य—क्षेत्र—काल एवं भाव की जैसी

जैन कर्म मीमांसा

1. जैन कर्मवाद
2. कर्म के भेद व प्रभेद
3. कर्म का फल
4. बंध के कारण : मुक्ति के उपाय
5. चौदह गुणस्थानक



जैन कर्मवाद

प्र.299. यदि समस्त जीवों में समान आत्म शक्ति है तो फिर संसार में मूर्ख—विद्वान्, अमीर—गरीब, राजा—रंक, रोगी—निरोगी आदि भेद क्यों दिखायी देते हैं?

उ. इस विश्व में कर्म नामक एक शक्ति है जिसके कारण अनन्त शक्ति, सौन्दर्य, ज्ञान, साधना सम्पन्न होने पर भी जीवों में सुखी—दुःखी, नारकी—तिर्यच—मनुष्य—देव आदि अनेक भेद दृष्टिगत होते हैं। इसी कर्म शक्ति को वेदान्त दर्शन में माया या अविद्या, सांख्य दर्शन में प्रकृति, वैशेषिक दर्शन में अदृष्ट, मीमांसक दर्शन में अपूर्व कहा गया है। विभिन्न स्थानों पर इसे भाग्य, दैव, पुण्य—पाप के रूप में व्याख्यायित किया गया है।

प्र.300. महाराजश्री! हम सुनते हैं और कहते भी हैं कि परमात्मा/ भगवान जैसा चाहते हैं, वही होता है तो फिर कर्म का अस्तित्व कैसे माने?

उ. यदि भगवान को विश्व का नियंता, कर्ता, धर्ता और सुख—दुःख में कारण

माना जाये तो प्रश्न होगा कि भगवान किस आधार पर जीवों को सुखी—दुःखी, विपन्न—सम्पन्न बनाता है। उसे सर्वशक्तिसम्पन्न होने से सभी को सुखी, सम्पन्न, विद्वान्, यशस्वी ही बनाना चाहिये। फिर भला किसी को दुःखी, विपन्न, मूर्ख एवं निंदा का पात्र क्यों बनाता है?

इसके उत्तर में यह तर्क दिया जाये कि वह जीव के कर्मानुसार सुख—दुःख, बुद्धि, धन, यश, साधन देता है तो स्पष्ट ही है कि ईश्वर/ भगवान भी कर्मानुसार ही जीव को सुख—दुःख देता है और कर्मसत्ता में वह किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करने में असमर्थ है।

जैन दर्शन में ईश्वरीय सत्ता को मध्य में न लाकर सीधे—सीधे कर्म सत्ता की प्ररूपणा एवं व्याख्या की गयी है।

प्र.301. कर्म तो अदृश्य तत्त्व है, फिर इसकी सिद्धि किस प्रकार संभव है?

उ. संसार में ऐसी अनेक विचित्रताएँ दिखाई देती हैं, जिनका कोई कारण नजर नहीं आता है परन्तु यह भी

निश्चित है कि कारण के बिना कोई भी कार्य नहीं होता है। वृक्ष नजर आता है पर यह भी निश्चित है कि इसके मूल में बीज रहा हुआ है, चाहे वह दिखायी न दे। कारण भले ही प्रत्यक्षरूपेण दृष्टिगत नहीं होता है परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से कारण अवश्यमेव विद्यमान होता है यथा —

1. एक ही माता-पिता के दो पुत्रों में से एक मूर्ख होता है और दूसरा विद्वान्। एक कुरूप होता है और दूसरा सुन्दर। एक अमीर होता है और दूसरा गरीब।
2. एक ही अध्यापक के सानिध्य में समान रूप से विद्यार्जन करने वाले दो बालकों में से एक प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होता है और दूसरा अनुत्तीर्ण हो जाता है।

प्र.302. 'पूर्वकृत कर्मानुसार जीव सुख-दुःख प्राप्त करता है और प्रयत्नशील होने पर भी मुक्त नहीं हो पाता है।' कर्मवाद के इस सिद्धान्त से प्रतीत होता कि जीव से ज्यादा बलवान कर्म है। और जब जीव से ज्यादा बलवान कर्म है तो फिर कर्ममुक्ति की दिशा में प्रयत्न क्यों किया जाये?

उ. विविध कर्मों में से कुछ कर्म परिस्थिति विशेष में आत्मा से ज्यादा बलवान होते हैं परन्तु अधिकतर कर्म निर्बल होते हैं।

सबल कर्म जिन्हें शास्त्रों में निकाचित कहा गया है, वे कर्म तीर्थकर, चक्रवर्ती, इन्द्र, हर जीव को भोगने ही होते हैं। वे जप-तप, साधना-संयम, किसी भी उपाय से नष्ट नहीं होते हैं जैसे महावीर प्रभु को भी कान में खीले टुकवाने पड़े। परन्तु अधिकतर कर्म ऐसे होते हैं, जिन्हें जप-तप-ध्यान आदि के द्वारा घटाया-बढ़ाया जा सकता है अथवा पूर्ण रूप से नष्ट किया जा सकता है। अशाता को शाता में, अघयश को सुयश में परिवर्तित किया जा सकता है, लम्बी स्थिति को छोटा किया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि प्रयास करके कर्म पर विजय प्राप्त की जा सकती है। कदाच सफलता प्राप्त न हो तो पूर्वकृत कर्म की प्रबलता जानकर धैर्य धारण करना चाहिये।

इस प्रकार आत्मा साधना के विविध अनुष्ठानों से जुडती हुई आश्रव द्वारों को बन्द करके एवं सम्पूर्ण निर्जरा करके परमात्मा बन जाती है।



प्र.303. आत्मा चैतन्य स्वरूप और कर्म जडरूप है तो फिर पारस्परिक संबंध किस प्रकार संभव है?

उ. घृत या तेल की बूंदों से युक्त वस्त्र पर वायु प्रवाह में उड़कर आने वाली धूल चेतना रहित होने पर भी चिपक जाती है, ठीक उसी प्रकार आत्मा पर राग-द्वेष की स्निग्धता होने से कर्मण वर्गणा के पुद्गल उससे संयुक्त हो जाते हैं।

प्र.304. कर्मपुद्गल मूर्त, रूपी है तो फिर वे अमूर्त, अरूपी आत्मा से कैसे बंध सकते हैं?

उ. प्रत्येक संसारी आत्मा पर कर्मपुद्गल चिपके हुए हैं। वास्तव में कर्मपुद्गलों पर ही, कर्मपुद्गल से युक्त आत्मा से ही कर्मण परमाणु बंध सकते हैं। सिद्धात्मा कर्म मुक्त होने से उनसे कर्मपुद्गल नहीं बंधते हैं। इसलिये गहराई से देखा जाये तो मूर्त से मूर्त का ही संयोग होता है, मूर्त से अमूर्त का नहीं।

प्र.305. यदि कर्म जड/निर्जीव है तो फिर जीव को सुख-दुःख आदि फल कैसे दे सकते हैं?

उ. यद्यपि कर्म जड/निर्जीव है तथापि उनमें अनुग्रह-निग्रह, अभिशाप-

वरदान की शक्ति निहित है। यह आँखों देखी और अनुभव की गयी बात है कि मदिरा निर्जीव होने पर भी पीने वाले को बेहोश, बेभान और उन्मत्त बना देती है। अमृत बेहोश को होश में ले आता है, जहर मार डालता है, दुध-घी पुष्ट बनाता है, उसी प्रकार जड कर्म भी राग-द्वेष आदि संवेदनों के द्वारा आत्मा से जुड़कर सुख-दुःख की अनुभूति करवाते हैं।

प्र.306. महाराजश्री! क्षण-मात्र के लिये स्वीकार कर ले कि पूर्वकृत कर्म शुभ-अशुभ फल प्रदान करते हैं पर प्रश्न है कि जीव चैतन्यशील एवं विवेकी है, वह सुख रूपी परिणाम को तो स्वीकार कर लेगा पर दुःख रूप परिणाम को भला क्यों स्वीकार करेगा?

उ. यहाँ स्वीकृति व अस्वीकृति का कोई प्रश्न ही नहीं है क्योंकि शुभाशुभ कर्मानुसार जीव की बुद्धि स्वतः उस प्रकार की बन जाती है। वह तदनुसार अच्छा या बुरा कार्य करके सुख अथवा दुःख को प्राप्त कर लेता है। जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होने पर छात्र खेल-कूद, गपशप आदि में वक्त गंवाकर अनुत्तीर्ण हो जाता है।

बहुलता—प्रबलता से हार भी जाता है
अतः कहीं जीव कर्माधीन है, कहीं कर्म
जीवाधीन है।

प्र.309. कर्म और आत्मा का संबंध कब से है?

उ. अनादिकाल से।

**प्र.310. कर्म और आत्मा के सम्बंध की
आदि मान ले तो क्या आपत्ति हो
सकती है?**

उ. कर्म और आत्मा दोनों का संबंध
अनादि है।

1. यदि ऐसा माना जाय कि पहले
आत्मा थी, तत्पश्चात् उससे कर्म
का संयोग हुआ तो भी उचित नहीं
है, क्योंकि कर्म रहित शुद्धात्मा पुनः
कर्म सहित हो जाती है तो फिर
उसकी मुक्ति ही निरर्थक है।
मुक्तात्मा के पुनः कर्म लिप्त होने
से समस्त धर्म—कार्य व्यर्थ हो
जायेंगे।

2. यदि ऐसा माना जाये कि कर्म की
उत्पत्ति पहले हुई तो भी संभव नहीं
है क्योंकि जीव ही कर्म का कर्ता
है। जीव की शुभ—अशुभ
विचारधारा एवं क्रिया के द्वारा
आत्मा से संयुक्त होने वाले
पुद्गलों को 'कर्म' कहा जाता है।

जब तक उनका आत्मा से संयोग
नहीं होता है, तब तक वे मात्र
पुद्गल ही होते हैं, उनमें फल देने
की शक्ति नहीं होती है।

3. यदि कहा जाये कि दोनों की
उत्पत्ति एक ही साथ हुई, तो भी
असंभव ही है क्योंकि इन्हें उत्पन्न
करने वाला कोई ईश्वर नहीं है।
इससे स्पष्ट है कि कर्म और जीव,
दोनों का संबंध अनादि है। संसार
में जब भी जीव था, कर्म युक्त ही
था क्योंकि कर्म बिना तो जीव
मुक्ति की दशा में होता है।

**प्र.311. यदि कर्म और आत्मा का संबंध
अनादिकालीन है तो इस सम्बन्ध
का अन्त कैसे संभव है?**

उ. यह कोई अनिवार्य नियम नहीं कि
जिसका अनादि संबंध हो, वह अनन्त
हो। जिस प्रकार मिट्टी और स्वर्ण का
सम्बन्ध अनादिकालीन है परन्तु अग्नि
के साधन से उन्हें अलग—अलग
किया जा सकता है, उसी प्रकार
रत्नत्रयी की सम्यक् आराधना से
जीव कर्म मुक्त होकर सिद्ध अवस्था
को प्राप्त कर लेता है।

प्र.312. जीव जब यह जानता है कि शुभ

कर्म करने से सुख की एवं अशुभ कर्म करने से दुःख की प्राप्ति होती है, फिर वह अशुभ/ पापकार्य में प्रवृत्त क्यों होता है?

- उ. जीव अनादिकाल से विषय-भोग के प्रवाह में बहता आया है। उन अनादि कालिन संस्कारों के प्रभाव से वह धर्म

साधना को छोड़कर विषय, कषाय, राग-द्वेष में रत होकर कर्मबंधन करके दुःखी होता है। जब तक जीव मोह और प्रमाद पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता है, तब तक वह सांसारिक सुखों का गुलाम बनकर जानता हुआ भी पापकार्य में प्रवृत्त होता रहता है।



कर्म के भेद व प्रभेद

प्र.313. कर्म से क्या अभिप्राय है?

उ. मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के द्वारा कर्मण वर्गणा के पुद्गल आकृष्ट होकर आत्मा से क्षीर-नीर एवं लौहपिण्ड-अग्नि की भाँति एकमेक हो जाते हैं, उन्हें कर्म कहा जाता है।

प्र.314. कर्म और कर्मण वर्गणा में क्या अन्तर है?

उ. चौदह राजलोक में सर्वत्र पुद्गल भरे हुए हैं। उनमें से समान जाति वाले पुद्गलों को वर्गणा कहते हैं। यह वर्गणा आठ प्रकार की कही गयी हैं, जिनमें से एक कर्मण वर्गणा भी है। कर्मण वर्गणा के पुद्गल जब आत्मा से संयुक्त होते हैं, तब कर्म और अलग होने पर कर्मण परमाणु कहलाते हैं।

प्र.315. कर्म की कितनी अवस्थाएँ कही गयी हैं?

उ. दस — 1. बंध — मिथ्यात्व आदि कारणों से कर्मण पुद्गलों का आत्मा से बंधना बंध कहलाता है।
2. उद्वर्तना — अशुभ योग व करण से बंधे हुए कर्मों की स्थिति एवं

फल का बढ़ना उद्वर्तना कहलाता है।

3. अपवर्तना— शुभ योग व करण से पूर्वबद्ध कर्मों की स्थिति एवं परिणाम का घटना अपवर्तना कहलाता है।

4. सत्ता— आत्मा से बंधे कर्म फल न देकर जितने समय तक आत्मा के साथ रहते हैं, उसे सत्ता कहते हैं।

5. उदय— पूर्वबद्ध कर्मों का फल भोगना उदय कहलाता है।

6. उदीरणा— जो कर्म बाद में उदय में आने वाले हैं, उन्हें विशेष पुरुषार्थ से खींचकर उदय में लाकर भोगना उदीरणा कहलाता है।

7. संक्रमण— जिस प्रयत्न से पूर्व-बद्ध कर्म निज स्वरूप को छोड़कर अन्य स्वरूप को प्राप्त करता है, उसे संक्रमण कहते हैं।

8. उपशमन— उदय में आने वाले कर्म को तप, स्वाध्याय के द्वारा रोकने की प्रक्रिया को उपशमन कहते हैं।

9. निघत्ति— कर्मों का आपस में

मिल जाना निधत्ति कहलाता है।

10. **निकाचना** – जिन कर्मों का फल अवश्यमेव भोगना पडता है, उसे निकाचना कहते हैं।

प्र.316. कोई भी कर्म कितने प्रकार से बंधता है?

उ. चार प्रकार से —

1. **प्रकृति बंध**— जैसे मोदक अलग अलग प्रकृति वाले होते हैं, वैसे ही कर्म भी अलग-अलग प्रकृति वाले होते हैं। सोंठ, काली मिर्च से बना लड्डू वायुनाशक होता है, हल्दी, मुलहठी से निर्मित लड्डू कफ का नाश करता है। जिस प्रकार घी, आटा आदि समान होने पर भी लड्डू में मिली औषधियाँ अलग-अलग प्रभाव दिखाती हैं, उसी प्रकार कर्म बंधन काल में यह निर्धारित हो जाता है कि वह आत्मा के ज्ञानगुण को रोकेगा या दर्शनगुण को आच्छादित करेगा अथवा अन्य किसी गुण को।

2. **स्थिति बंध** – जिस प्रकार औषधि मिश्रित कोई लड्डू दो माह तक खराब नहीं होता है, कोई एक माह तक अथवा एक पक्ष तक खराब नहीं होता है, उसी प्रकार कर्म बंधन के समय कर्म की जो

स्थिति निर्धारित होती है, उसे स्थिति बंध कहते हैं।

3. **अनुभाग बंध**— औषधिमिश्रित कुछ लड्डू अधिक कडवे अथवा मीठे होते हैं, कई लड्डू कम कडवे अथवा मधुर होते हैं, उसी प्रकार कर्म की फलशक्ति में तीव्रता-मंदता (न्यूनाधिकता) को अनुभाग बंध कहते हैं। इसे रसबंध भी कहा जाता है।

4. **प्रदेश बंध**— कोई लड्डू छोटा होता है और कोई बड़ा, उसी प्रकार किसी कर्म के प्रदेश कम और किसी के अधिक होते हैं, उसे प्रदेश बंध कहते हैं।

प्र.317. कर्म के स्पृष्ट आदि चार प्रकारों को स्पष्ट कीजिये।

उ. 1. **स्पृष्ट कर्म**— जो कर्म पश्चात्ताप से नष्ट हो जाते हैं। जैसे मृगावती अपने पाप-अपराध के प्रति पश्चात्ताप करती हुई केवलज्ञान को प्राप्त हो गयी।

2. **बद्ध कर्म**— जो कर्म प्रतिक्रमण, आलोचना आदि से नष्ट होते हैं। जैसे अतिमुक्तक मुनि ने पानी में पात्र की नैया को तिराकर जो कर्म बांधा, वह इरियावही करते हुए नष्ट हो गया एवं मुनि केवली

बन गये।

3. **निधत्त कर्म**— जो कर्म कठोर तपाराधना से नष्ट होते हैं। जैसे अर्जुनमाली मुनि पूर्व में प्रतिदिन सात व्यक्तियों की हिंसा करता था परन्तु दीक्षा लेकर उग्र-तीव्र तपश्चर्या करके उन कर्मों का क्षय किया एवं मुक्त हो गये।

4. **निकाचित कर्म** — जो कर्म भोगे बिना नहीं छूटते हैं। जैसे त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में महावीर ने शय्यापालक के कानों में जो कथीर (उबलता शीशा) डलवाया, उस कारण महावीर के भव में उन्हें कानों में खीले ठुकवाने पड़े।

प्र.318. महाराजश्री! दो व्यक्ति समान रूप से दान देते हैं, उसके परिणाम स्वरूप एक महाराजा बनता है और दूसरा सामान्य फल प्राप्त करता है, तो क्या कर्म सत्ता को निष्पक्ष कहा जा सकता है?

उ. शुभ व अशुभ, किसी भी कर्म के बंधन में दो बातें आधारभूत होती हैं, एक बाह्य प्रवृत्ति, दूसरी आभ्यन्तर विचार-धारा। भले ही बाह्य रूप से दो व्यक्तियों की क्रिया में समानता नजर आती है परन्तु भावधारा में भेद होने से परिणाम में भी भेद आता है।

दो व्यक्तियों में से एक व्यक्ति मजबूरी, लोकलाज के कारण मुनि को आहार देता है तो सामान्य फल मिलता है परन्तु जो व्यक्ति श्रद्धा और उत्कट उल्लास से मुनि को दान देता है, वह विशिष्ट फल प्राप्त करता है। शुभ कार्य हो या अशुभ कार्य, भावों की मंदता एवं तीव्रता के आधार पर फल प्राप्त करता है। वासुदेव श्री कृष्ण ने 18000 मुनियों को श्रद्धा से वन्दना करके महापापों का क्षय किया पर उनके अनुचर ने केवल वासुदेव की प्रसन्नता के लिए वंदन किया अतः उसे सामान्य लाभ ही मिला। इस प्रकार कर्म साम्राज्य में किसी प्रकार का भेदभाव या पक्षपात नहीं है। जो भेद नजर आता है, वह भावधारा में भेद होने से ही है।

प्र.319. कर्म कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. आठ प्रकार के—

1. ज्ञानावरणीय 2. दर्शनावरणीय 3. वेदनीय
4. मोहनीय 5. आयुष्य 6. नाम 7. गोत्र
8. अन्तराय।

प्र.320. घाती और अघाती कर्म में क्या अन्तर है?

उ. अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और शक्ति, ये चार आत्मा के मूल गुण हैं। इन गुणों का घात करने वाले घाती

कर्म कहलाते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शना वरणीय, मोहनीय और अन्तराय, ये चार घाती कर्म कहे गये हैं। शेष मूल गुणों को आवृत्त करने में असमर्थ होने से अघाती कर्म कहलाते हैं।

प्र.321. ज्ञानावरणीय कर्म की विवेचना कीजिये।

- उ. 1. जो आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करता है, वह ज्ञाना-वरणीय कर्म कहलाता है।
यह कर्म पाँच प्रकार का है —
1. मन और इन्द्रियों के द्वारा होने वाला ज्ञान **मतिज्ञान** और उसे आच्छादित करने वाला **मतिज्ञाना-वरणीय** कर्म कहलाता है।
 2. शास्त्र / श्रवण से होने वाला ज्ञान **श्रुतज्ञान** और उसे आच्छादित करने वाला कर्म **श्रुतज्ञानावरणीय** कर्म कहलाता है।
 3. मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी पदार्थों का मर्यादा-पूर्वक होने वाला ज्ञान **अवधि-ज्ञान** एवं उसे आच्छादित करने वाला **अवधिज्ञानावरणीय** कर्म कहलाता है।
 4. मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मन के विचारों (पर्यायों) को

जानने वाला ज्ञान **मनःपर्यवज्ञान** एवं उसे आच्छादित करने वाला कर्म **मनःपर्यवज्ञानावरणीय** कर्म कहलाता है।

5. सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल व पर्याय (भाव) को आत्मा से जानने वाला ज्ञान **केवलज्ञान** एवं उसे आच्छादित करने वाला कर्म **केवल-ज्ञानावरणीय** कर्म कहलाता है।

प्र.322. दर्शनावरणीय कर्म को स्पष्ट कीजिये।

- उ. आत्मा के सामान्य बोध को दर्शन और उसे रोकने वाला दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।
इसके नौ भेद कहे गये हैं — 1. पाँच निद्रा 2. चार दर्शनावरण।
1. मंद ध्वनि से जागना **निद्रा**।
 2. तीव्र ध्वनि से या हाथ से हिलाने पर जागना **निद्रा-निद्रा**।
 3. बैठे बैठे या खड़े खड़े नींद लेना **प्रचला**।
 4. चलते चलते निद्रा आना **प्रचला-प्रचला**।
 5. तीव्र राग अथवा द्वेषवश दिन में सोचा हुआ कार्य अथवा अकार्य निद्रा में करना और स्वयं को पता भी न चलना वह **स्त्यानर्द्धि**।
 6. चक्षु के द्वारा होने वाला सामान्य

ज्ञान चक्षुदर्शन एवं उसे आवृत्त करने वाला चक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

7. चक्षु के सिवाय शेष इन्द्रियों से होने वाला सामान्य ज्ञान अचक्षु-दर्शन और उसे आवृत्त करने वाला अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

8. मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी पदार्थों का होने वाला सामान्य ज्ञान अवधिदर्शन और उसे आवृत्त करने वाला अवधि-दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

9. सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का सामान्य ज्ञान केवलदर्शन एवं उसे आवृत्त करने वाला केवल-दर्शनावरणीय कर्म कहलाता है।

प्र.323. वेदनीय कर्म की व्याख्या कीजिये।

उ. सुख-दुःख का अनुभव(वेदन) कराने वाला कर्म वेदनीय कर्म कहलाता है। इसके दो भेद कहे गये हैं— सुख का अनुभव करवाने वाला शांता वेदनीय और दुःख का अनुभव करवाने वाला अशांता वेदनीय कर्म कहलाता है।

प्र.324. मोहनीय कर्म की विवेचना कीजिये।

उ. जो व्यक्ति को मूढ़, विवेकहीन

बनाता है, आत्मा के हिताहित को पहचानने की शक्ति को आवृत्त करता है, उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। इस कर्म के दो भेद कहे गये हैं— दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

प्र.325. दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय को स्पष्ट कीजिये।

उ. 1. दर्शन मोहनीय— सुदेव, सुगुरु, सुधर्म में श्रद्धा करना दर्शन है और उस गुण को रोकने वाला अथवा जिनोक्त तत्व में शंकाशील बनाने वाला दर्शन मोहनीय कहलाता है। इसकी मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय नामक तीन प्रकृतियाँ होती हैं।

2. चारित्र मोहनीय— जिसके द्वारा कर्म का क्षय होता है, उस आचरण को चारित्र कहते हैं। आत्मा के चारित्र रूपी गुण को रोकने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, वेद, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा आदि चारित्र मोहनीय कर्म कहलाते हैं।

प्र.326. आयुष्य कर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म जीव को निश्चित काल तक एक भव में रोककर रखता है, वह आयुष्य कर्म कहलाता है। आयुष्य

कर्म के पूर्ण होने से पूर्व जीव मर नहीं सकता और पूर्ण होने के बाद जीव नहीं सकता। इसके देव – मनुष्य – तिर्यच और नरक आयुष्य रूप चार भेद होते हैं।

प्र.327. नाम कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के कारण जीव विविध पर्यायों को प्राप्त करता है, उसे नाम कर्म कहते हैं। इस कर्म के उदय से जीव शरीर, गति, रंग, गंध, स्वर, यश, अपयश, आकृति आदि प्राप्त करता है। नाम कर्म की विवक्षा भेद से 67, 93, 103 प्रकृतियाँ होती हैं, जिनका विवेचन प्रथम कर्मग्रंथ से समझना चाहिये।

प्र.328. गोत्र कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के कारण जीव में उच्च-नीच अथवा छोटे-बड़े का व्यवहार होता है, उसे गोत्र कर्म कहते हैं। इसके उच्च एवं नीच रूप दो भेद शास्त्रों में कहे गये हैं। गोत्र का अर्थ किसी समूह, जाति

विशेष से नहीं है। पशुओं में हाथी, बैल, घोड़ा उच्च तथा कुत्ता, सुअर, बिल्ली नीच माने जाते हैं। मनुष्य तथा देवों में कुछ उच्च तो कुछ नीच होते हैं।

परमात्मा महावीर का सिद्धान्त है कि नीची जाति में जन्म लेने वाला भी आचार-विचार, धर्म-कर्म से उच्च व सम्मानीय हो सकता है, जैसे हरिकेशी एवं मेतारज मुनि।

प्र.329. अन्तराय कर्म किसे कहते हैं?

उ. जिस कर्म के उदय से जीव को दान देने में, लाभ प्राप्ति में, भोग, उपभोग एवं वीर्य (धर्मकार्य) में अन्तराय उत्पन्न होता है, उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद कहे गये हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय। कर्म पदार्थ का विशिष्ट-विस्तृत विवेचन प्रथम कर्म विपाक नामक कर्म ग्रन्थ से जानना चाहिये।



कर्म का फल

प्र.330. अनुभाव से क्या अभिप्राय है?

उ. कर्मबंध के परिणाम/फल/परिणति को भोगना, अनुभाव कहलाता है।

प्र.331. ज्ञानावरणीय कर्म का परिणाम बताओ।

- उ.
1. बहरा होना अथवा कम सुनना।
 2. अंधा होना अथवा कम दिखना।
 3. सूंघने की शक्ति न होना अथवा कम होना।
 4. स्वाद ग्रहण की शक्ति का न होना अथवा कम होना।
 5. ठण्डा-गर्म आदि स्पर्श जान न पाना अथवा अल्पाधिक जानना।
 6. सुनकर, देखकर, सूंघकर, चखकर अथवा स्पर्श करके भी समझ न पाना।
 7. बुद्धि का अल्प होना अथवा न होना।
 8. ज्ञान प्राप्त न होना।
 9. अविकसित मन का होना।
 10. स्पष्ट व सही शब्दोच्चारण नहीं कर पाना।
 11. हकलाना।

प्र.332. दर्शनावरणीय कर्म के अनुभाव बताओ।

- उ.
1. हल्की, गहरी अथवा प्रगाढ निद्रा का आना।
 2. वस्तु -- तत्त्व का सामान्य बोध न हो पाना।

प्र.333. शाता और अशाता वेदनीय कर्म का फलभोग समझाईये।

- उ.
1. अनुकूल -- मनोज्ञ शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श की प्राप्ति।
 2. स्वस्थ मन, वचन और काया की प्राप्ति शाता वेदनीय कर्म के परिणाम हैं। इससे विपरीत प्रतिकूल शब्दादि की प्राप्ति अशाता वेदनीय कर्म के परिणाम है। जैसे -- रोगग्रस्त होना, कष्ट आना आदि।

प्र.334. मोहनीय कर्म के परिणाम बताईये।

- उ. मोहनीय कर्म के उदय से जीव मिथ्यात्वी बनता है, जिनोक्त तत्त्व पर शंका करता है, क्रोध-मान-माया-लोभ में लिप्त होता है, कामभोग की कामना करता है, प्रतिकूलता में विषादग्रस्त एवं अनुकूलता में आनंदित होता है। भयभीत एवं शोकमग्न बनता है।

प्र.335. आयुष्य कर्म के परिणामों की व्याख्या कीजिये।

- उ. 1. आयुष्य कर्म जीव को नरकादि निश्चित गतियाँ प्राप्त करवाता है।
2. इस कर्म के परिणामस्वरूप जीव किसी भी भव में निश्चितकाल तक रुकता है।
3. इस कर्म के फलस्वरूप जीव उर्ध्व, अधो, तिर्यग् दिशाओं में जाने की शक्ति प्राप्त करता है।

प्र.336. नाम कर्म का फलभोग कितने प्रकार से होता है?

- उ. शुभ नाम कर्म का फलभोग निम्न प्रकार से होता है —
1. सुंदर, सुगठित शरीराकृति प्राप्त होना।
2. यश की प्राप्ति।
3. लोगों पर प्रभाव।
4. प्रिय—मधुर—मनोज्ञ स्वर की प्राप्ति।
5. मान—सम्मान की प्राप्ति।
6. प्रभावशाली व्यक्तित्व की प्राप्ति आदि।
अशुभ नाम कर्म के फल स्वरूप

इससे विपरीत चीजों की प्राप्ति होती है — जैसे अच्छा काम करने पर भी वाहवाही न होना। दुर्बल—बेडोल शरीर की प्राप्ति, अपमान, कर्कश स्वर, कुरूपता आदि।

प्र.337. गोत्र कर्म के परिणामों को स्पष्ट कीजिये।

- उ. उच्च गोत्र के प्रभाव से व्यक्ति अच्छे, प्रतिष्ठित, संस्कारी कुल—जाति में जन्म पाता है, समाज—राष्ट्र में सम्मानित होता है। नीच गोत्र का प्रभाव इससे विपरीत जानना चाहिये।

प्र.338. अन्तराय कर्म के अनुभाव बताईये।

- उ. अन्तराय कर्म के कारण सुपात्र, सम्पत्ति का सद्भाव होने पर भी दान नहीं कर पाता, स्वयं को आवश्यकता होने पर भी और दाता के मिलने पर भी प्राप्त नहीं कर पाता, पदार्थ/सम्पत्ति/भोजन आदि होने पर भी उपयोग नहीं कर पाता, शारीरिक शक्ति नहीं मिलती अथवा मिलने पर भी धर्म कार्य में उत्साहपूर्वक उपयोग नहीं कर पाता।



बंध के कारण : मुक्ति के उपाय

प्र.339. ज्ञानावरणीय कर्म बंध के कारण बताओ ।

- उ. 1. ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञानोपकरण के प्रति द्वेष रखना, उनकी निंदा/तिरस्कार/अविनय करना ।
2. ज्ञानी से ईर्ष्या करना । उनको गिराने की चेष्टा करना ।
3. ज्ञान देने वाले का नाम छिपाना ।
4. भगवान की वाणी के विपरीत कहना ।
5. ज्ञान-प्राप्ति में अन्तराय करना ।
6. सीखे हुए ज्ञान का पुनरावर्तन नहीं करना ।
7. अविधि से पढ़ना-पढ़ाना ।
8. ईर्ष्या आदि कारणों से अनुकूलता होने पर भी ज्ञान देने से इंकार करना अथवा उसके बारे में झूठ बोलना ।
9. झूठे मुँह पढ़ना/लिखना/बोलना ।
10. अखबार, पुस्तक, ठवणी, कलम आदि को पाँव लगाना, थूँक लगाना, उनसे अशुचि साफ करना ।
11. ज्ञानोपकरण को गंदे स्थान पर रखना, जलाना, नष्ट करना, फेंकना आदि ।
12. अस्वाध्याय काल में स्वाध्याय करना । स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न करना ।

13. किसी की आँख आदि इन्द्रियों को क्षति पहुँचाना ।

14. ज्ञान का अभिमान करना ।

प्र.340. ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा के उपाय बताओ ।

- उ. 1. बंध के उपरोक्त कारणों का त्याग करना ।
2. ज्ञान का प्रचार करना । आगम, शास्त्र आदि लिखवाना/प्रकाशित करवाना ।
3. ज्ञान/ज्ञानी के प्रति श्रद्धा रखना ।
4. ओम् ह्रीं नमो नाणरस्स का नियमित जाप करना ।
5. ज्ञान, ज्ञानोपकरण, ज्ञानी का सम्मान करना ।
6. ज्ञान प्राप्ति हेतु नित्य प्रयत्न करना ।
7. अक्षर लिखे वस्त्र, जूते आदि धारण न करना ।
8. अक्षर लिखे पदार्थ नहीं खाना—जैसे चॉकलेट, बिस्कुट आदि ।
9. दूसरों को सदज्ञान बांटना । ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनना ।
10. तीर्थंकर परमात्मा, हरिभद्रसूरि, अमयदेवसूरि, हेमचंद्राचार्य, अमयकुमार आदि ज्ञानी पुरुषों का स्मरण करना ।
11. मुझमें सदबुद्धि का विकास हो, नित्य ऐसी प्रार्थना करना ।

प्र.341. दर्शनावरणीय कर्मबंध के कारण बताईये ।

उ. ज्ञानावरणीय कर्मबंध के जो कारण हैं, वे दर्शनावरणीय कर्म बंध के भी कारण हैं। यथा— दर्शन, दर्शनी एवं दर्शनोपकरण की निंदा, तिरस्कार, अविनय, अन्तराय एवं ईर्ष्या करना, दुर्भावना से किसी की निद्रा आदि में अन्तराय करना, इन्द्रियों को क्षति पहुँचाना।

प्र.342. दर्शनावरणीय कर्म—क्षय के उपाय बताईये ।

उ. दर्शन, दर्शनी, दर्शनोपकरण का बहुमान, विनय आदि करना। अंधे को चक्षु, चश्मा आदि साधन प्रदान करना। 'ओम् ह्रीं नमो दंसणस्स' की माला फेरना।

प्र.343. शाता वेदनीय कर्म बंध के कारण बताओ ।

उ. 1. जीवों पर दया करना, उन्हें दुःख न देना, लकड़ी आदि से नहीं पीटना, शोकग्रस्त एवं भयभीत नहीं करना।
2. देव—गुरु की भक्ति, गुणगान, सेवा करना एवं निर्दोष आहार आदि दान देना। अभयदान, सुपात्रदान देना। दीन—हीन, असहाय की सहायता करना। साधर्मिक का दुःख दूर करना।
3. ज्ञानदाता गुरु की सेवा व प्रशंसा करना।
4. अणुव्रतों अथवा महाव्रतों का पालन

करना।

5. क्षमा धारण करना। कषायों पर विजय प्राप्त करना।
6. धर्माचरण पर श्रद्धा एवं त्यागीजनों की सेवा करना।
7. दुःखी को सान्त्वना देना। मरते हुए को बचाना।

प्र.344. अशाता वेदनीय कर्म बंध के कारण बताओ ।

उ. 1. देव—गुरु का अपमान एवं अविनय करना।
2. हिंसा, आरंभ—समारंभ करना।
3. पशुओं पर अधिक बोझ लादना। उन्हें दुःखी करना।
4. व्रत / महाव्रत का खण्डन करना।
5. क्रोधादि कषाय करना।
6. पशु, पक्षियों को पिंजरे में डालना।
7. जीवों को दुःखी करना। अपने शोक—मोड़ के लिये हिंसक कार्य करना।
8. कर्मचारी, नौकर से अधिक कार्य करवाना। उन्हें पीड़ित करना।
9. अनन्तकाय, अभक्ष्य पदार्थों का प्रयोग करना। आतिशबाजी करना। अनछने पानी का उपयोग करना। बिना छाने/बीने अन्न का उपयोग करना।
10. दुःखी को देखकर सुखी और सुखी को देखकर दुःखी होना।
11. जीवों के अंगोपांगों का छेदन, भेदन करना।



12. हिसाबयुक्त लिपिस्टिक, साबुन, क्रीम आदि प्रसाधन सामग्री का उपयोग करना।

प्र.345. अशाता वेदनीय कर्म क्षय के उपाय बताओ।

- उ. 1. जयणा/यतनापूर्वक खाना, पीना, सोना, उठना, बैठना आदि क्रियाएँ करना।
2. दुःखी के दुःख को दूर करने के लिये तत्पर रहना।
3. दुःखी, दीन, असहाय पर अनुकंपा करना।
4. अहिंसा का अधिकतम पालन करना।
5. देव-गुरु की सेवा, विनय एवं वैयावच्य करना।
6. जीवों को अभयदान देना।
7. जल, अग्नि, वनस्पति आदि के उपभोग में संयम करना, उनका दुरुपयोग नहीं करना।
8. लोगों के साथ स्नेह, करुणा, प्रेम, शान्तिपूर्ण और सद्भावयुक्त व्यवहार करना।

प्र.346. दर्शन मोहनीय कर्म बंध के कारण बताओ।

- उ. 1. जिनवाणी से विपरीत कहना।
2. भोगोपभोग के साधनों में दिन-रात आसक्त रहना।
3. कुदेव-कुगुरु-कुधर्म पर श्रद्धा करना।
4. सन्मार्ग का विनाश करना।

5. लोगों को मिथ्या-गलत उपदेश देना।

6. कर्म-बंध के कारणों को अच्छा कहना, करना एवं उन्हें करने के लिये प्रेरित करना।

7. जिनेश्वर देव, जिनमंदिर-प्रतिमा-पूजा, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका की निंदा/अविनय करना।

प्र.347. चारित्र मोहनीय कर्मबंध के कारण बताओ।

- उ. 1. क्रोध-मान-माया-लोभ करना।
2. पांच इन्द्रियों के अधीन बनकर वेदत्रिक का बंध करना।
3. दूसरों को भयभीत करना, आर्तध्यान-रौद्रध्यान करना, दूसरों की हँसी-मजाक करना आदि।
4. भाण्ड जैसी कुचेष्टा करना, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना करना, भोगों का अनुमोदन करना, प्रिय-अप्रिय वस्तु अथवा व्यक्ति के संयोग-वियोग में अतिशय आनंद अथवा दुःख का अनुभव करना, धर्म-धर्मीजनों की हँसी-मशकरी करना, साधु-साध्वी आदि की निंदा, उनसे घृणा करना आदि।

प्र.348. मोहनीय कर्म का क्षय किस प्रकार होता है?

- उ. 1. प्रतिकूल प्रसंगों में भी क्रोध नहीं करना।
2. धन, ज्ञान, रूप, कुल, बल आदि का अभिमान नहीं करना।

3. संतोषवृत्ति धारण करना ।
4. अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, त्याग, तप, अपरिग्रह आदि नियम धारण करना ।
5. त्यागीजनों की प्रशंसा करना ।
6. त्याग, संयम, साधना आदि की प्रभावना करना ।
7. सुख में आसक्त एवं दुःख में खिन्न नहीं होना ।
8. विपत्तिकाल में धैर्य धारण करना, समता से कष्टों को सहन करना ।

प्र.349. आयुष्य कर्म बंध के कारण बताओ ।

- उ. 1. देवायुबंध के कारण — व्रत—महाव्रत का पालन करना, देवगुरु की बहुमानपूर्वक भक्ति करना, सुपात्र को दान देना, तपाराधना करना आदि ।
2. मनुष्य आयुबंध के कारण— क्रोध आदि कषायों पर विजय प्राप्त करना, निःस्वार्थ भाव से दान देना, विनय, विवेक, सदाचार, दया, परोपकार आदि गुणों को धारण करना ।
3. तिर्यच आयुष्य बंध के कारण — किसी के साथ धोखा करना, उपकारी के उपकार को भूलाना, व्रत आदि के खण्डित होने पर आलोचना नहीं लेना, दिनभर पशु की तरह आहार करना, कपट/माया करना, कम—ज्यादा तोलना

आदि ।

4. नरक आयुष्य बंध के कारण — पंचेन्द्रिय जीव का घात करना, मांसाहार करना, महारंभ व समारंभ करना—करवाना, व्यसनों का सेवन करना, परिग्रह में अत्यधिक आसक्त होना, रौद्र परिणाम करना, गर्भपात करना ।

प्र.350. आयुष्य कर्म का क्षय किस प्रकार होता है?

- उ. आयुष्य कर्म का क्षय भोगने से ही होता है। एक बार आयुष्य बांधने के बाद उसे भोगना ही होता है, चाहे वह तीर्थकर हो या चक्रवर्ती या राजा अथवा महाराजा। वासुदेव श्री कृष्ण, श्रेणिक राजा को भी नरक में जाना ही पडा। अनेक लोग दुःख से घबराकर आत्म हत्या कर बैठते हैं, इससे कर्मनष्ट नहीं होते हैं, बल्कि परभव भी बिगड जाता है। आयुष्य कर्म का जब संपूर्ण रूप से क्षय हो जाता है, तब जीव मोक्ष में चला जाता है।

प्र.351. अशुभ नामकर्म बंध के कारण बताओ ।

- उ. 1. किसी के साथ कपट/विश्वासघात करना ।
2. ज्ञान आदि का मद करना ।
3. कठोर व असत्य भाषा का प्रयोग करना ।
4. लोगों में विवाद, क्लेश उत्पन्न करना ।
5. किसी के रूप आदि से ईर्ष्या करना ।

इससे विपरीत कार्यों से शुभ नामकर्म का बंध होता है।

प्र.352. अशुभ नाम कर्म का क्षय किन उपायों से होता है?

- उ. 1. निर्मदपूर्वक तप आदि करना।
2. क्षमा, सरलता का आचरण करना।
3. गुणीजनों की प्रशंसा करना।
4. सेवा, स्वाध्याय, ध्यान आदि से आत्मा को पवित्र बनाना।
5. साधार्मिक भक्ति करना।
6. करुणा, दया, संयमपूर्वक जीवन जीना।

प्र.353. उच्च गोत्र कर्म बंध के कारण कौन कौनसे हैं?

- उ. 1. स्वयं के दोषों की निंदा करना।
2. दूसरों के गुणों की अनुमोदना करना।
3. कुल/जाति आदि का अभिमान नहीं करना।
4. स्वाध्याय (पठन-पाठन) में रूचि रखना।
5. जिनभक्ति, पूजा, सेवा और आराधना करना। इनसे विपरीत आचरण से जीव नीच गोत्र कर्म का बंध करता है।

प्र.354. नीच गोत्र कर्म का क्षय किस प्रकार संभव है?

- उ. 1. दूसरों के दान, ज्ञान, तप आदि गुणों की प्रशंसा करना।
2. स्वयं के दुर्गुणों की निंदा,

आलोचना करना।

प्र.355. अन्तराय कर्म का बंध किस प्रकार होता है?

- उ. 1. अरिहंत और मुनिभगवंत की सेवा, पूजा और सत्कार का निषेध करने से।
2. अठारह पाप-स्थानकों का सेवन करने से।
3. तप, जप, परोपकार आदि का निषेध करने से।
4. साधु-साध्वी आदि को आहार, वस्त्र, स्थान, औषधि आदि देने का निषेध करने से अथवा उसमें अन्तराय उत्पन्न करने से।
5. किसी के धन, ज्ञान, तप, भोजन आदि में अन्तराय करने से।

प्र.356. अन्तराय कर्म का क्षय किस प्रकार हो सकता है?

- उ. 1. सुपात्र दान करना।
2. किसी धर्म आदि कार्य में विघ्न उत्पन्न न करना।
3. ज्ञान, धन आदि के द्वारा सहायता करना।
4. परोपकार के कार्य करना।
5. दीन, दुःखी की सेवा करना।
6. दानी की प्रशंसा करना।
7. तपस्वी, ज्ञानी, परोपकारी, संयमी, साधक की प्रशंसा करना।
8. शक्ति के अनुसार जप, तप आदि आराधना करना।

चौदह गुणस्थानक

प्र.357. गुणस्थानक किसे कहते हैं ?

उ. गुणों की अधिकता या अल्पता के आधार पर जीवों का विभाजन करना गुण स्थानक कहलाता है। यह जैन दर्शन की विशिष्टता है कि इसमें जीवों का विभाजन धन, सत्ता, ऐश्वर्य आदि के अल्पाधिक्य पर न करके गुणों की कमी-वृद्धि के आधार पर किया गया है।

प्र.358. चौदह गुणस्थानक कौनसे हैं ?

- उ. (i) **मिथ्यादृष्टि**—इस गुणस्थानक में जीव कुदेव, कुगुरु और कुधर्म पर श्रद्धा करता हुआ संसार में परिभ्रमण करता रहता है।
- (ii) **सास्वादन**—सम्यक्त्व से पतित जीव जब प्रथम गुणस्थानक में जाता है, तब मिथ्यात्वी बनने से पहले जो थोड़ा बहुत सम्यक्त्व का आस्वाद आत्मा में रहता है, उसे सास्वादन कहते हैं।
- (iii) **मिश्र दृष्टि**—जिस प्रकार नालिकेर द्वीप के मनुष्यों को अन्न पर प्रीति और अप्रीति, दोनों नहीं होती है उसी प्रकार मिश्र दृष्टि को जैन धर्म पर न प्रीति होती है, न अप्रीति।
- (iv) **अविरत सम्यग्दृष्टि** — इस गुणस्थानक में जीव सुदेव—सुगुरु—सुधर्म पर श्रद्धा करके सम्यक्त्वी बनता है पर व्रत धारण नहीं कर पाता है।

- (v) **देशविरत** — इस गुणस्थानक में जीव व्रत धारण करता हुआ श्रावक बनता है।
- (vi) **प्रमत्तसंयत** — इस गुणस्थानक में जीव महाव्रत लेता है पर प्रमादवश दोष लगाता है।
- (vii) **अप्रमत्तसंयत**—इस गुणस्थानक में जीव अप्रमत्त साधु होता है।
- (viii) **अपूर्वकरण**—इस गुणठाणे में पूर्व में न आये ऐसे शुद्ध अध्यवसाय आते हैं।
- (ix) **अनिवृत्तिकरण** — इसमें स्थूल कषाय—उदय होता है तथा समान समय वाले जीवों की विचार—शुद्धि परस्पर समान होती है।
- (x) **सूक्ष्म सम्पराय**—इस गुणस्थानक में सूक्ष्म रूप से लोभ सम्पराय (कषाय) का उदय होता है।
- (xi) **उपशान्त मोह**—इस गुणस्थानक में मोहनीय कर्म का सर्वथा उपशम हो जाता है पर इस गुणठाणे में आने वाला जीव अवश्यमेव नीचे गिरता है।
- (xii) **क्षीण मोह**—क्षपक क्षेणी में चढ़ने वाला जीव ही दसवें से सीधा बारहवें गुणठाणे में आकर वीतरागी बनता है और शेष घाती कर्मों का यहाँ सम्पूर्ण क्षय करता है।
- (xiii) **सयोगी केवली**—शरीर सहित तीर्थंकर, केवली इस गुणठाणे के जीव होते हैं।
- (xiv) **अयोगी केवली**—इसमें जीव तीनों योगों को अवरूद्ध करके मोक्ष गामी हो जाता है।



जैन विचार मीमांसा

1. मिथ्यात्व का त्याग
सम्यक्त्व का राग
2. संज्ञा का शमन
3. कषाय : जन्म-मरण की आय
4. विकथा की विकटता
5. लेश्या-विज्ञान
6. सम्बोधि के सोपान



मिथ्यात्व का त्याग : सम्यक्त्व का राग

प्र.359. मिथ्यात्व किसे कहते हैं?

उ. सही तत्त्व में गलत की बुद्धि अथवा गलत में सही की बुद्धि होना मिथ्यात्व कहलाता है। जिनोक्त तत्त्व को न समझना या विपरीत अर्थ में समझना मिथ्यात्व का परिणाम है।

शास्त्रों में मिथ्यात्व को घोर—अन्धकार, विष एवं शत्रु की उपमा दी गयी है। इसके कारण जीव आत्महित—अहित एवं अच्छे—बुरे का विवेक प्राप्त नहीं कर पाता है।

अविवेक एवं मोह के अधीन होकर जिस प्रकार मदोन्मत्त व्यक्ति पत्नी को माता एवं माता को पत्नी समझने की भूल करता है, वैसे ही मिथ्यात्वग्रस्त व्यक्ति सरागी देवों को वीतराग एवं वीतराग को रागी समझ बैठता है।

अहिंसा, सत्य आदि को अधर्म एवं हिंसा, असत्य आदि को धर्म समझ बैठता है और अनन्त संसार में परिभ्रमण करता हुआ बार—बार जन्म—मरण का दुःख प्राप्त करता है।

प्र.360. मिथ्यात्व कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. स्थानांग सूत्र में दस प्रकार के बताये गये हैं—

(1—2) धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानना।

(3—4) सम्यग् ज्ञान—दर्शन तथा चारित्र्य रूपी सन्मार्ग (मोक्षमार्ग) को उन्मार्ग मानना एवं मिथ्यात्व, अज्ञान, कषाय आदि भटकाने वाले उन्मार्ग को सन्मार्ग मानना।

(5—6) जीव को अजीव तथा अजीव को जीव मानना। संसार में अनेक प्राणी अज्ञानता के कारण आकाश, पुद्गल आदि को जीव तथा सचित्त पानी, पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति, आदि को अजीव मानते हैं।

(7—8) साधु को असाधु एवं असाधु को साधु मानना। पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति से युक्त साधु एवं उससे विपरीत असाधु कहलाते हैं। वर्तमान में अनेक व्यक्ति नामधारी साधु को सच्चा साधु मानकर अपना भवभ्रमण बढ़ा रहे हैं।

(9—10) मुक्त को अमुक्त एवं अमुक्त को मुक्त मानना। अष्ट कर्मों से युक्त अमुक्त कहलाते हैं। कितने ही

अज्ञानी लोग कर्मयुक्त देव-देवियों को मुक्त मान रहे हैं और सिद्धों को अमुक्त समझ रहे हैं।

इन दस भेदों का विवेचन तीन में हो जाता है।

9-10 भेद देव सम्बन्धी मिथ्यात्व, 7-8 गुरु सम्बन्धी मिथ्यात्व एवं 1-6 भेद धर्म सम्बन्धी मिथ्यात्व है। इसलिये संक्षिप्त में कहा जाय तो सुदेव-सुगुरु-सुधर्म को कुदेव-कुगुरु-कुधर्म मानना एवं कुदेवादि को सुदेवादि मानना मिथ्यात्व है।

प्र.361. पाँच प्रकार के मिथ्यात्व कौनसे हैं?

उ. (1) **आभिग्रहिक**— सही बात को जाने बिना पक्षपातपूर्वक एक सिद्धान्त का आग्रह करना एवं अन्य पक्ष व सिद्धान्त का खण्डन करना आभिग्रहिक मिथ्यात्व है। अनेक लोग सम्यग् तत्त्व को जाने बिना कट्टरता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि हमारे भगवान्, गुरु एवं हमारा धर्म ही सच्चा है।

(2) **अनाभिग्रहिक**— तत्त्व-बुद्धि के द्वारा परीक्षण किये बिना सभी धर्मों, धर्मगुरुओं को समान मानना अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहलाता है। जैसे कई लोग कह देते हैं — सभी देव, गुरु, धर्म, मत,

सिद्धान्त समान है। हम तो सभी में श्रद्धा रखते हैं। वंदना और अर्चना करते हैं।

ऐसा कहने से मांस, मदिरा, यज्ञ, बलि आदि के समर्थक धर्मों की भी स्वीकृति का दोष लगता है।

(3) **आभिनिवेशिक**— अपने सिद्धान्त / मत को गलत जानते हुए भी हठ, अभिमान और आग्रहपूर्वक उसे पकड़े रखना आभिनिवेशिक मिथ्यात्व कहलाता है। अपनी गलती को जानते हुए भी न छोड़कर रोह गुप्त निहव बना।

(4) **सांशयिक**— सुदेव-गुरु-धर्म के संदर्भ में संदेह करना सांशयिक मिथ्यात्व कहलाता है। जमाली ने प्रभु वाणी में संशय करके कर्म बाधे।

(5) **अनाभोगिक**— ज्ञानावरणीय कर्म के प्रबलोदय से एकेन्द्रिय आदि असंज्ञी तथा विशेष बोध से रहित संज्ञी जीवों में तीव्र अज्ञान के कारण जो मिथ्यात्व होता है, वह अनाभोगिक मिथ्यात्व कहलाता है।

प्र.362. जो जैसा है, वैसा मानने पर मिथ्यात्व का दोष नहीं लगता है तो लौकिक देवी व देवताओं को उस रूप में मानने में भी कोई

हानि है?

उ. काँच और रत्न का अन्तर जान लेना, उन्हें यथार्थ रूप से समझ लेना सम्यक्त्व है। परन्तु जिसने रत्न को जान कर पा लिया, वह भला काँच को क्यों चाहेगा? अर्थात् वीतरागी देवों को जानने के बाद भला कौन राग-द्वेष युक्त देवों में श्रद्धान्वित होगा? अर्थात् कोई भी नहीं होगा।

यदि जानने पर भी विरुद्धाचरण करता है तो इसका अर्थ है कि उसने व्यवस्थित एवं सम्यक् रूप से जाना एवं माना नहीं है। क्योंकि मिथ्यात्वी देव-देवी की उपासना करने का अर्थ है कि बोध का अभाव है।

कोई किसी को कुछ नहीं दे सकता। निमित्त होना अलग बात है। दूसरी बात यह है कि सम्यक्त्वी कभी भी मिथ्यात्वी से द्वेष नहीं करता है, बल्कि वह भी सम्यक्त्व को प्राप्त करें, यह भावना रखता है। तीसरी बात यह है कि सम्यक्त्वी पुत्र, धन, सत्ता, यश प्राप्ति की नहीं, अपितु जो कुछ है, उनके भी त्याग की कामना करता है और जो स्वयं वीतराग नहीं हैं, मोहाधीन हैं, वे भला वीतरागता का वैभव कैसे दे सकते हैं?

प्र.363. तो फिर अपने यहाँ भैरुजी,

मणिमद्रजी, पद्मावती आदि देव-देवियों की आराधना क्यों ?

उ. हकीकत तो यह है कि ये सभी देव-देवी परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पित हैं, अतः उनकी आराधना नहीं अपितु बहुमान-सम्मान किया जाता है और शासन-विस्तार की प्रार्थना की जाती है।

यदि परमात्म स्वरूप एवं वीतरागता के लक्ष्य को विस्मृत कर संसार-साधनों की पूर्ति-वृद्धि हेतु आराधना की जाती है तो वह धर्म एवं सम्यक्त्वी का लक्षण हो नहीं सकती।

प्र.364. सम्यक्त्व के लक्षण बताइये।

उ. सुदेव, सुगुरु तथा सुधर्म को उस रूप में मानना सम्यक्त्व है। जो जैसा है, वैसा मानना सम्यक्त्व कहलाता है। 'तमेव सच्चं निसकं जं जिणेहिं पवेइयं।' जिनेश्वरों द्वारा प्ररूपित धर्म में निःशंक, सन्देह रहित होना सम्यक्त्व कहलाता है। सम्यक्त्व को श्रद्धा, समकित, रुचि भी कहा जाता है। शास्त्रों में इसके पाँच लक्षण कहे गये हैं, जिससे व्यवहार में सम्यक्त्वी को जाना जा सकता है।

(1) उपशम— मिथ्यात्व मोहनीय का उपशमन होना। जिसके साथ वैर विरोध हो, उससे क्षमा का आदान-प्रदान करना। तत्त्वत्रयी

में निःशंक एवं श्रद्धान्वित होना ।

(2) **संवेग**—मोक्ष—प्राप्ति की उत्कट—
तीव्र अभिलाषा होना ।

(3) **निर्वेद**— वैराग्यवासित बनना ।
संसार के भोगोपभोगों से उदासीन
होना । धायमाता की तरह संसार
का पालन—पोषण करना ।

(4) **अनुकंपा**— जीवों पर करुणा—
दया होना । संयम एवं यतना से
जीना ।

(5) **आस्था**— जिनवाणी पर दृढ़ श्रद्धा
का होना ।

प्र.365.सम्यक्त्व के भेद कौन—कौनसे हैं?

उ. (1) **दो भेद**— आत्मा में जिन भाषित धर्म
पर उत्कट प्रीति, श्रद्धा एवं विश्वास
निश्चय सम्यक्त्व कहलाता है ।
व्यवहार में जिनपूजा, सामायिक,
प्रतिक्रमण आदि क्रियाएँ करना
व्यवहार सम्यक्त्व कहलाता है ।

(2) **दो भेद**— श्रेणिक की तरह गुरु
उपदेश व आर्द्रकुमारवत् जिन—प्रतिमा
के आलम्बन से होने वाला **अधिगम**
सम्यक्त्व एवं माता मरुदेवी की तरह
स्वाभाविक रूप से प्राप्त होने वाला
नैसर्गिक सम्यक्त्व कहलाता है ।

(3) **तीन भेद**— (i) जिस सम्यक्त्व में जीव
जिनाज्ञानुसार क्रिया में श्रद्धा करता
है, स्वयं सम्यक् अनुष्ठान करता है

एवं करवाता है, उसे **कारक** सम्यक्त्व
कहते हैं ।

(ii) जिस सम्यक्त्व में जीव सदाचरण
में आस्था रखता है परन्तु श्रीकृष्ण,
श्रेणिक सम्राट् की भाँति स्वयं
सदाचरण कर नहीं पाता है, उसे
रोचक सम्यक्त्व कहते हैं ।

(iii) जिस सम्यक्त्व में जीव 'दीपक
तले **अन्धेरा**' की भाँति उपदेश
देकर दूसरों को सम्यक्त्व की
यात्रा से सिद्धपद तक पहुँचा देते
हैं परन्तु स्वयं उसमें रंचमात्र भी
श्रद्धान्वित नहीं होते हैं, उनका
दीपक सम्यक्त्व कहलाता है ।
ऐसे जीव अभव्य अथवा
मिथ्यादृष्टि ही होते हैं ।

**प्र.366.सम्यक् दर्शन को शुद्ध, निर्मल एवं
स्थिर बनाने के लिये क्या—क्या
करना चाहिये?**

उ. शास्त्रों में सम्यक्त्व के कथित पाँच
दूषणों का त्याग एवं पाँच भूषणों को
ग्रहण करना चाहिये ।

(i) **पाँच दूषण—**

(1) **शंका**— भगवत् प्ररूपित नव तत्त्वों
में एवं उनके स्वरूप में शंका
करना । जैसे पानी की एक बूंद में
असंख्य जीव एवं सुई के अग्रभाग
जितने छोटे से स्थान में निगोद



रूप-अनन्त जीव कैसे समा सकते हैं? बिना बनाये जगत का निर्माण कैसे संभव है? इस प्रकार जिनोक्त तत्त्वों में शंका नहीं करनी चाहिये।

कोई बात समझ में नहीं आये तो चिन्तन करें कि 'जिनश्रुत गहन एवं विशाल है, यदि मुझे कोई बात समझ में नहीं आती है तो दोष मेरी अल्पबुद्धि का ही है।' अतः प्रभु-प्रवचन में शंका न करके जिज्ञासु को गुरु भगवंतों से समाधान प्राप्त करना चाहिये।

(2) **कांक्षा**— अन्य मिथ्या धर्म-दर्शनों का आकर्षक बाह्य रूप-स्वरूप एवं प्रभाव देखकर उनकी अभिलाषा करना।

(3) **विचिकित्सा**— जिन प्ररूपित विधिमार्ग एवं क्रियानुष्ठान के फल में शंका करना। जैसे— मैं समस्त प्रत्यक्ष सांसारिक सुखों का त्याग कर तप-जप कर रहा हूँ परन्तु इसका फल मिलेगा अथवा नहीं? साधु-साध्वी की मलिन काया, वस्त्र को देखकर घृणा करना भी विचिकित्सा कहलाती है।

(4-5) **पर पाखंड प्रशंसा एवं संस्तव**— अन्य धर्मावलम्बियों की

प्रशंसा एवं विशेष परिचय-संवाद करना। जैसे—अज्ञानी व मिथ्यात्वी देवों के मेले में जाते श्रद्धालुओं की प्रशंसा करना।

(5) **पाँच भूषण**—

(1) धर्म से पतित होते जीवों को बुद्धि, तर्क-वितर्क अथवा प्रेम पूर्वक जिनधर्म में स्थिर करना।

(2) जिनशासन की महिमा, प्रभाव हेतु शोभाकारक त्याग, संयम, साधना आदि कार्य करना।

(3) चतुर्विध संघ की निरवद्य भक्ति, सेवा करना।

(4) अज्ञानीजनों को जैन धर्म की विशिष्टता समझाने में कुशल होना।

(5) अरिहन्त प्रभु साधु-साध्वी एवं गुणीजनों की निरवद्य सेवा करना।

प्र.367. लौकिक एवं लोकोत्तर मिथ्यात्व से क्या अभिप्राय है?

उ. (i) राग-द्वेष युक्त एवं मिथ्यात्वी देवी-देवताओं का पूजन-अर्चन करना तथा चारित्रहीन साधु अथवा संसारी को गुरु मानना **लौकिक मिथ्यात्व** है।

आज विभिन्न प्रसंगों पर इस मिथ्यात्व

का प्रचुर रूप से सेवन हो रहा है। जैनेतर की भाँति जैन भी नवरात्रि-व्रत रखते हैं, दशहरा मनाते हैं, शीतला माता की पूजा करके याचना करते हैं एवं बासी खाते हैं। गणगौर त्यौहार में कुंवारी बालाएँ अच्छे पति की याचना करती हैं, करवा चौथ का व्रत करके सुहाग का सुख मांगती हैं, दीपावली पर लक्ष्मी-गजानन की पूजा करते हैं, विवाहोत्सव में भवानी, काली, हनुमान आदि देवी-देवताओं की पूजा करते हैं, दाह संस्कार के बाद फूल (अस्थि) गंगा में बहाये जाते हैं। इसी प्रकार संतोषी माता, हनुमान, शिव आदि के व्रत भी रखते हैं, इस प्रकार का लौकिक क्रिया-प्रपंच व्यक्ति को धीरे-धीरे जिनधर्म से हटाता हुआ मिथ्यात्वी बनाकर भवभ्रमण में डाल देता है अतः जिनेश्वर देव एवं जिनप्ररूपित धर्म में ही विश्वास रखना चाहिये। वर्तमान में 31st दिसम्बर मनाने की नयी रीति चली है। लोग तीर्थ स्थानों पर जाकर नये वर्ष प्रवेश का उत्सव

मनाते हैं पर जैनों का नूतन वर्ष प्रवेश कार्तिक शुक्ला एकम से होता है। इसी एकम से नये वीर संवत् का प्रारंभ होता है।

नया वीर संवत् मनाना हो तब व्यक्ति के पास न समय का सद्भाव होता है, न श्रद्धा की पूंजी पर जैनेतर 31st दिसम्बर पर हम लोग Happy New Year कहते, सुनते और बधाई देते नजर आते हैं।

अपने अहिंसक धर्म को छोड़कर हिंसा आदि से परिपूर्ण अन्य पंथों का अनुकरण करना मिथ्यात्व का पोषण है। अतः Happy New Year कहना हो तो वीर संवत् पर कहिये, न कि इसवी सन् पर।

(ii) **लोकोत्तर मिथ्यात्व**—संसार के सुख-साधन, सत्ता-सम्पत्ति, संतान के लक्ष्य से सुदेव (अरिहन्त), सुगुरु एवं सुधर्म की आराधना करना। वीतराग परमात्मा के अनुयायी को मोक्ष के अतिरिक्त कोई भी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये।



संज्ञा का शमन

प्र.368. संज्ञा किसे कहते हैं?

उ. जीव में उत्पन्न इच्छा/आकांक्षा को संज्ञा कहा जाता है।

प्र.369. संज्ञा कितने प्रकार की होती हैं?

उ. चार प्रकार की—

(1)आहार संज्ञा— भोज्य-पदार्थों की इच्छा करना।

(2)भय संज्ञा— मृत्यु आदि से भयभीत होना।

(3)मैथुन संज्ञा— काम-भोग की कामना करना।

(4)परिग्रह संज्ञा—पदार्थ की आकांक्षा करना एवं उस पर ममत्व रखना।

प्र.370. इन चार प्रकार की संज्ञाओं का परिहार आवश्यक क्यों है?

उ. 'इच्छा हु आगास समा अणन्तिया' इच्छा आकाश के समान अनंत हैं।

कदाचित् स्वर्ण निर्मित असंख्य कैलाश पर्वत मिल जाये तो भी जीव का उसी प्रकार सन्तुष्ट होना असंभव है, जिस प्रकार नदियों से समुद्र का एवं काष्ठ से अग्नि का संतुष्ट होना अशक्य है।

(i) आहार संज्ञा का त्याग करके

दंडण अणगार अठारह हजार मुनियों में एवं धन्ना अणगार चौदह हजार मुनियों में प्रशंसा के पात्र बने। उनका क्रमशः श्री नेमिनाथ एवं महावीर स्वामी ने श्रीमुख से यशोगान गाया।

(ii) भय संज्ञा को छोड़कर सुदर्शन श्रावक प्रभु महावीर के दर्शनार्थ गया। उसकी प्रेरणा से अर्जुनमाली ने संयम स्वीकार किया।

(iii) मैथुन संज्ञा के त्याग-फलरूप स्थूलिभद्र चौरासी चौबीसी तक अमर हुए। उनके प्रभाव से कोशा वेश्या श्राविका बनी। जम्बू कुमार ने काम भोगों की असारता समझाकर आठों पत्नियों साधु-धर्म प्रदान किया व केवलज्ञान पाया।

(iv) परिग्रह संज्ञा को छोड़कर अनन्त तीर्थकर, जम्बूकुमार आदि मुनिवर अनन्त आत्म सुख के उपभोक्ता बने।

प्र.371. महाराजश्री! यह तो समझ आ गया कि इनका भोग भवरोग का तथा त्याग वीतराग पद का कारण है परन्तु छोड़ना भी तो कैसे? यह भी तो बताईये।

उ. (1)आहार संज्ञा पर विजय प्राप्त करने का उत्तम उपाय है— तपश्चर्या में प्रवृत्त होना। भोजन करते समय सोचे कि अनन्तकाल से भोजन करता आया पर तृप्ति नहीं हुई, हो भी नहीं सकती। आत्मा श्रुत—साधना से ही तृप्त हो सकती है। इस आहार संज्ञा रूपी डाकिनी ने गीतार्थ त्यागी मंगू आचार्य, कण्डरिक मुनि को भी दुर्गति के गर्त में धकेल दिया।

(2) 'मिती मे सब्ब भुएसू' सभी जीवों से मेरी मैत्री है। न किसी से भयभीत होना चाहिये, न किसी को भयभीत करना चाहिये। पूर्व भव में खरगोश को अभयदान देकर मेघकुमार राजकुमार ही नहीं बना अपितु साधनापूर्वक एकावतारी भी बना।

(3) कामभोग से तुष्टि—तृप्ति असंभव है। शास्त्रों में मैथुन सेवन की निंदा के लिये कहा गया कि नपुंसकता,

इन्द्रिय—छेद, कम्पन, मूर्च्छा, पाप बंध वाले इस किंपाक फल सदृश अब्रह्म का सेवन कौन करे !

जो ब्रह्मचर्य की साधना साधता है, वह तीनों लोकों में यशस्वी बनता है। विजय सेठ और विजया सेठानी के शील व्रत की प्रशंसा केवली भगवंत ने भी की।

(4) परिग्रह अनन्तः दुःख का कारण है। जब तन, धन, समृद्धि आदि सब छोड़कर जाना है तो फिर उन पर आसक्ति क्यों करूँ ? परिग्रह के कारण मम्मण सेठ नरक में गया। पुत्रों से सागर चक्रवर्ती को तृप्ति नहीं हुई, गोधन से कुचिकर्ण को तुष्टि नहीं मिली, धान्य के भण्डारों से तिलक सेठ को संतुष्टि नहीं हुई, राजा नंद को सोने के ढेर से तृप्ति नहीं हुई, यह जानकर पुद्गलों के प्रति अनासक्ति का भाव रखना चाहिये।



कषाय : जन्म-मरण की आय

प्र.372. कषाय किसे कहते हैं?

उ. कष् अर्थात् संसार, जन्म-मरण ।

आय— अर्थात् वृद्धि ।

जिसके कारण संसार की एवं जन्म-मरण की वृद्धि होती है, उसे कषाय कहते हैं ।

प्र.373. कषाय के प्रकार बताओ ।

उ. (1) क्रोध-गुस्सा (2) मान-अभिमान
(3) माया-कपट (4) लोभ-लालच ।

प्र.374. कषायों पर विजयी बनना आखिर क्यों आवश्यक है?

उ. शास्त्रों में कहा गया—क्रोध से जीव पतित होता है, मान से नीच गति पाता है, माया से सद्गति का विनाश होता है और लोभ दोनों लोकों में भय उत्पन्न करता है ।

जब तक जीव कषायाधीन है, तब तक चारों गतियों में भ्रमण करता रहता है । कषाय दुःखों की खान है । क्रोध के कारण चण्डरूद्र सर्प बने, मान के कारण रावण का विनाश हुआ, माया के कारण मल्लिनाथ स्त्री बने तथा लोभ के कारण सुभूम चक्रवर्ती मृत्यु को प्राप्त हुआ ।

कषाय स्वयं को ही नहीं, आस-पास, घर- परिवार-समाज में रहने वालों को भी अशान्त तथा दुःखी करते हैं । हृदयाघात (Heart Attack), रक्तचाप (B.P.), आत्महत्या, पागलपन, तनाव-मनमुटाव उत्पन्न करके इस भव को बरबाद करते हैं तथा परभव में नरकादि दुर्गतियों में ले जाते हैं । आतंकवाद, हिंसा तथा शोषण को प्रोत्साहित करते हैं ।

परमात्मा महावीर कहते हैं—क्रोधादि कषाय अग्निरूप है तथा उनका शमन करने में श्रुत, शील और तप जल का काम करते हैं । आज विश्व-अशांति, युद्ध एवं हिंसा का जो ताण्डव नृत्य हो रहा है, उसमें प्रमुख कारण कषाय ही है । प्रभु महावीर, श्रीराम, गांधी, समस्त महापुरुषों ने कषाय को त्याज्य कहा है । जीवन को शान्ति, प्रेम और क्षमा का नंदनवन बनाने के लिये खामेमि सव्व जीवे, वंसुधैव कुटुम्बकम्, सर्वे भवन्तु सुखिनः, शिवमस्तु सर्व जगतः आदि दिव्य सूत्र प्रदान किये ।

प्र.375. क्या गतियों की अपेक्षा से संज्ञा

एवं कषायों में विशिष्टता होती है?

उ. बिल्कुल! यद्यपि हर गति में चारों संज्ञा व कषाय तरतम भाव से पाये जाते हैं तथापि उनमें किसी एक की प्रधानता भी होती है—जैसे—

1. नरक गति में क्रोध कषाय एवं भय संज्ञा की प्रधानता होती है ।
2. तिर्यच गति में माया कषाय एवं आहार संज्ञा की प्रधानता होती है ।
3. मनुष्य गति में मान कषाय एवं मैथुन संज्ञा की प्रधानता होती है ।
4. देव गति में लोभ कषाय एवं परिग्रह संज्ञा की प्रधानता होती है ।

प्र.376. कषायों के त्याग में क्या कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है?

उ. वैज्ञानिक शोध से यह प्रमाणित हो चुका है कि जब क्रोध आता है, वह शारीरिक व मानसिक क्षमता पर तीव्र प्रहार करता है। हजारों लाखों उपयोगी कोशिकाएं कुछ समय में नष्ट हो जाती हैं। किसी ने बहुत अच्छा ही कहा है—चुल्हे की आग से जलकर बहुत कम जीव मरे हैं पर क्रोध के दावानल में सुलगकर अनन्त जीव मर चुके हैं। यह वह शैतान है, जो पहले विवेक और बुद्धि का घात करता है, उसके बाद मनुष्य का।

शास्त्रकार कहते हैं—विष जीवन में एक बार मारता है परन्तु कषाय अनन्त बार। दस मिनट के क्रोध से व्यक्ति का पाचन तंत्र इतना अस्त व्यस्त हो जाता है कि उसे ठीक होने में चौबीस घण्टे लग जाते हैं। क्रोध शरीर की ग्रन्थियों और स्रावों को विक्षिप्त कर देता है, ब्लड सर्क्यूलेशन बढ़ जाने से उच्च रक्तचाप की बीमारी हो जाती है, सांस की गति बढ़ने से फेफड़े कमजोर हो जाते हैं। एड्रीनल ग्रन्थियों का स्राव तीव्र गति से होने से पेट, नेत्र, हृदय के रोग हो जाते हैं। कभी क्रोध में व्यक्ति किसी को मार देता है या स्वयं आत्म हत्या कर बैठता है या Heart Attack आ जाता है। इसलिये जरूरी है कि दिल और दिमाग के उपवन को क्रोध की अग्नि से बचाये रखो। Let go करना सीखो। वैज्ञानिक संशोधन के प्रकाश में यह स्पष्ट हो चुका है कि गृहिणियाँ भोजन बनाते समय या बच्चे को दूध पिलाते समय यदि क्रोध में होती हैं तो वह भोजन और दूध भी विषयुक्त हो जाता है। याद रखो— क्रोध जहर है और समता अमृत।



(3) **भोजन कथा**— आहार को अच्छा-बुरा, प्रशंसनीय-निंद्य कहना। उसमें राग अथवा द्वेष करना।

प्र.379. जब ये चार कथाएँ त्याज्य हैं, तो कौनसी कथाएँ स्वीकार्य हैं?

उ. स्थानांग सूत्र में जिनाज्ञानुसारी के लिये करणीय चार कथाओं का निर्देश किया गया है—

(1) **विक्षेपणी कथा**— भोगादि में रहे हुए दोषों को बताने वाली एवं उन्मार्ग से सन्मार्ग पर लाने वाली कथा।

(2) **आक्षेपणी कथा**— मोह और अधर्म से हटाकर धर्म-स्थान की ओर ले जाने वाली कथा।

(3) **संवेगनी कथा**— भोग-सुखों से दूर करने वाली तथा वैराग्य-रस उत्पन्न करके मोक्ष की प्रबल इच्छा जगाने वाली कथा।

(4) **निर्वेदनी कथा**— इहलोक-परलोक में पुण्य-पाप के फल बताकर संसार से विरक्त बनाने वाली कथा।



लेश्या-विज्ञान

प्र.380. लेश्या किसे कहते हैं ?

उ. वस्तु अथवा शरीर की कान्ति व प्रभा को लेश्या कहा जाता है।

जिस प्रकार पदार्थ का वर्ण होता है, जिसे कान्ति/प्रभा के नाम से जाना जाता है, उसी प्रकार मनोगत विचारों की भी आभा/प्रभा होती है। विज्ञान जिसे 'ओरा' (आभामण्डल) कहता है, उसे जैन दर्शन में 'लेश्या' कहा गया है।

प्र.381. लेश्या का वैज्ञानिक स्वरूप समझाईये।

उ. लेश्या एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। जिस प्रकार रिमोट कंट्रोल के अलग-अलग बटन दबाने से चैनल, रंग, आवाज आदि बदल जाती है। इन सभी में कारण उस यंत्र से निकलने वाली अगोचर तरंगें हैं।

इसी प्रकार आभामण्डल का भी अपना प्रभाव है। वर्तमान में मानसिक रोगी की भिन्न-भिन्न वर्णों की किरणों एवं जल की बोटलों के द्वारा चिकित्सा की जाती है।

निमित्तों को प्राप्त कर जीव के अध्यवसाय बदलते हैं। तदनुरूप

अच्छा—बुरा, मोह—निर्मोह, द्वेष—प्रेम, त्याग—भोग का भावमण्डल तैयार होता है और वह अन्य को प्रभावित करता है।

यह देखा गया सत्य है कि किसी तमोगुणी व्यक्ति की नेत्रों से निकलने वाली तामसिक किरणों के प्रभाव से प्रौढ़, बालक रूग्ण हो जाते हैं, जिसे 'नजर लगना' कहा जाता है। कहा जाता है कि नजर (कुदृष्टि) से पत्थर में भी दरार आ जाती है।

सत्त्वशाली व्यक्ति के सानिध्य में सात्त्विक विचार तथा तामसिक—राजसिक — विलासी तथा क्रोधी व्यक्ति के पास बैठने से वैसे विचार बनेंगे।

प्र.382. व्यक्ति के विचार (आभामण्डल) मला एक दूसरे को किस प्रकार प्रभावित कर सकते हैं?

उ. विचारों के अनुरूप व्यक्ति के चारों तरफ एक वर्तुल बनता है, जिसका वर्ण, चमक, कान्ति, मलिनता अथवा निर्मलता विभिन्न यंत्रों के द्वारा देखी जा सकती है। शुद्ध विचार चमकदार/ निर्मल / शुभ्र / शुक्ल आभामण्डल

प्र.384. लेश्या—विज्ञान पर यदि शास्त्रों में कोई दृष्टान्त हो तो वह भी बताईये।

उ. उपदेश प्रसाद में एक उदाहरण प्राप्त होता है, वह भावधारा की भिन्नता को अभिव्यक्त करता है—

छह व्यक्ति हैं। उन्हें जंगल से गुजरते समय भूख लगी। उन्होंने जामुन का वृक्ष देखा तब—

(1) एक ने कहा— इस वृक्ष को काटकर जामुन खाये जाये।

(2) दूसरे ने कहा— इसकी एक विशाल शाखा को तोड़कर उदरपूर्ति की जाये।

(3) तीसरे ने कहा— छोटी शाखाओं से ही अपना काम बन जायेगा।

(4) चौथे ने कहा— पूरी शाखा क्यों तोड़े, गुच्छे ही तोड़े जाये।

(5) पाँचवां बोला— उसमें भी पक्व जामुन ही तोड़े जाये।

(6) छठे ने कहा— भैया! जामुन तोड़ने की क्या जरूरत, जो पके जामुन नीचे गिरे हुए हैं, उनसे ही काम चला लेते हैं।

यह दृष्टान्त भावधारा को अभिव्यक्त करता है। इन्हें क्रमशः कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या कहा जा सकता है। इनमें से

प्रथम तीन अशुभ, अधर्म लेश्या तथा शेष तीन को शुद्ध, धर्मलेश्या कहा गया है।

प्र.385. लेश्या—स्नान किसे कहते हैं?

उ. कई बार देखा जाता है कि किसी व्यक्ति के स्नान करने व इत्र, गंध आदि लगाने के कुछ पलों के बाद ही उसके शरीर से दुर्गंध आने लगती है, और कोई व्यक्ति स्नान, वस्त्र-प्रक्षालन आदि नहीं करता है, फिर भी उनके शरीर से दुर्गंध नहीं आती है।

कई बार योगियों के शरीर से चन्दन आदि की सुगंध भी आती है, इसमें मुख्य कारण लेश्या विशुद्धि है। यह जीव के निर्मल एवं स्वच्छ अन्तःकरण का द्योतक है। अतः अधिकतम आराधना, साधना, जप—तप, ज्ञान—ध्यान करो, मन को मैत्री, प्रेम, स्नेह, करुणा के सुगंधित पुष्पों से महकाते रहो। जैसे—जैसे वीतरागता, समता, संतोष की त्रिवेणी में नहाते जाओगे, वैसे—वैसे शरीर, मन, अंग—प्रत्यंग, दृष्टि, प्रवृत्ति, भाषा का निर्मलीकरण होता जाएगा। इससे अभूतपूर्व आनंद व सुगंध का सोता फूट पड़ेगा। इसे ही जैन दर्शन में लेश्या—स्नान कहा गया है।



संबोधि के सोपान

प्र.386. आत्मबोध का प्रथम सोपान कौनसा है?

उ. जिस प्रकार घर और उसका मालिक, लिफाफा और उसमें रखे रुपये, कपड़े और उसे धारण करने वाला अलग-अलग हैं, उसी प्रकार आत्मा और शरीर, दोनों भिन्न-भिन्न है। इस प्रकार का चिन्तन ही आत्मबोध का प्रथम सूत्र है।

प्र.387. आत्मा और शरीर को भिन्न किस प्रकार कहा जा सकता है जबकि आत्मा प्रत्यक्ष नहीं है ?

उ. 1. शरीर से जब आत्मा अलग हो जाती है तब यह शरीर काष्ठ की भांति निश्चेष्ट पड़ा रहता है। उसकी सारी क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं।

2. शरीर में यों तो दुर्गंध नहीं आती है परन्तु मृत्यु के कुछ समय बाद ही उसमें सड़ांध उत्पन्न हो जाती है, उसका विसर्जन अनिवार्य हो जाता है।

3. चेतना सहित शरीर में ही देखना, चलना, श्वासोच्छ्वास आदि प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं।

निर्जीव में ये सब असंभव है।

4. जीव को ही सुख-दुःख की अनुभूति होती है, अजीव को कभी नहीं।

5. व्यवहार में शरीर को 'मैं' कभी नहीं कहा जाता है, उसके लिये 'मेरा' शब्द ही चलता है, इससे स्पष्ट है कि 'मैं' का अर्थ आत्मा ही है। मेरा सिर दुखता है, ऐसा कहा जाता है, न कि 'मैं दुखता हूँ।'

6. शरीर में रक्त मुख्य धातु है जिसके बिना जीव जी नहीं सकता। विज्ञान ने चकित करने वाली प्रगति है तथापि वह ऐसी मशीन का निर्माण नहीं कर सका जो रक्तादि का निर्माण कर सके। इसका अर्थ यही है कि रक्त जीवित प्राणी में ही बनता है।

प्र.388. वैर को कैसे उपशांत किया जा सकता है?

उ. वैर को प्रेम से ही जीता जा सकता है। वैर हमेशा वैर का ही अनुबंध करवाता है। क्षमाभाव जितना प्रबल होगा, वैर



की ग्रंथियाँ उतनी ही गलती जायेगी। शास्त्रों में कहा भी गया है कि— 'खमावणयाएणं पल्हायण भावं जणयइ।' क्षमा से आत्मा में अपूर्व आनंद की अनुभूति होती है। इसलिये क्षमा धर्म ही आराध्य, साध्य और काम्य है। इसकी नित्य साधना करो।

प्र.389. परमात्मा ने मनुष्य भव को महत्त्वपूर्ण क्यों कहा?

उ. 'दुल्लहे खलु माणुसे भवे।' निश्चय ही मनुष्य देह की प्राप्ति दुर्लभ है। संसार में क्रमशः विकास करते हुए अनन्त पुण्य का संचय होने पर जीव मनुष्य भव को एवं अनन्त पुण्यानुबंधी पुण्योदय से जिनेश्वर देव के धर्म को प्राप्त करता है। यद्यपि पदार्थ, सौन्दर्य की अपेक्षा से देव भव उत्कृष्ट है तथापि संचित कर्मों का क्षय एवं मोक्ष फल की प्राप्ति मनुष्य देह के द्वारा ही संभव है।

प्र.390. कामभोग त्याज्य क्यों है?

उ. कामभोग अनर्थों की खान है। ये क्षण मात्र सुख देने वाले तथा बहुकाल तक दुःख देने वाले हैं। कामभोग शल्य है, विषरूप है, विषधर सर्प है तथा मधुलिप्त तलवार को चाटने के समान है। जिस प्रकार सुन्दर तथा स्वादिष्ट होने पर भी किंपाक फल

को खाने का परिणाम अच्छा नहीं होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी अच्छा नहीं होता।

काम—भोग में आसक्त होकर भी जीव कर्मों का बंधन करता है। कामभोग के प्यासे चक्रवर्ती भी अन्ततः अतृप्त दशा में मरकर दुर्गति में जाते हैं।

अकामी तथा अभोगी जीव संसार में कमल—पत्र की तरह निर्लिप्त रहता हुआ भव—समुद्र से तिर जाता है।

प्र.391. मानव—भव को कैसे सफल करें ?

उ. जीवन की सफलता धन, सत्ता और सम्पत्ति के विस्तार में नहीं अपितु विसर्जन में है। यद्यपि व्यक्ति सोचता है कि कल धर्म करूंगा, सामायिक, सुपात्र दान, आत्म चिन्तन, साधना, स्वाध्याय करूंगा परन्तु मृत्यु रूपी सिंह जीव रूप हरिण को मुँह में दबाये ले जाता है और स्वजन—परिजन देखते रह जाते हैं। इसलिये जीवन की सफलता धर्म—विस्तार एवं इच्छा नियंत्रण में है। परमात्मा महावीर उत्तराध्ययन सूत्र में फरमाते हैं—

जरा न जाव पीडेइ, वाही जाव न वड्ढई ।

जाविन्दिया न हायन्ति, ताव धम्मं समायरे ।।

जब तक बुढ़ापा नहीं आता, व्याधियाँ जोर नहीं पकड़ती, इन्द्रियाँ क्षीण नहीं होती, तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिये।

प्र.392. परमात्मा ने ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट क्यों बताया?

उ. ज्ञान से आत्म-तत्त्व का बोध होता है। ज्ञानी महात्मा हित-अहित को जानकर संवर के द्वारा कर्म-आगमन के द्वारों को बन्द कर देते हैं तथा निर्जरा के द्वारा कर्मों को धो डालते हैं, परन्तु अज्ञानी मनुष्य मानता है कि कुल, जाति, वंश, धन, ये सब मेरे हैं, वे मेरा रक्षण करेंगे परन्तु उन्हें अन्त में शरण और ज्ञान देने वाला कोई नहीं होता।

प्र.393. वीतराग भाव को कैसे उपलब्ध किया जा सकता है?

उ. स्नेह के बंधन अति भयंकर हैं। वास्तव में स्वजन-परिजन के स्नेह-पाश को तोड़ना अथाह समुद्र को भुजाओं के बल पर पार करने के समान व लोहे के चने चबाने जैसा दुष्कर कार्य है।

इसके लिये पुनः पुनः बारह भावनाओं का चिंतन करें, आत्म-समाधि का विकास करें। जीवन की अनित्यता की अनुप्रेक्षा करें। ये समस्त काम भोग अन्ततोगत्वा दुःख एवं दुर्गति-दायक है, ऐसा नित्य स्मरण करते रहे।



जैन आचार मीमांसा

1. प्रातः जागरण विधि
2. जिन मंदिर दर्शन एवं पूजन विधि
3. कैसे सुने प्रवचन ?
4. उपाश्रय में कैसा हो आचरण हमारा?
5. सुपात्रदान की विधि
6. श्रावक जीवन की साधना
7. धर्म के चार प्रकार
8. तप के बारह भेद
9. रात्रि शयन से पूर्व आत्म-चिन्तन



प्रातः जागरण विधि

प्र.394. प्रातः जागरण किस प्रकार लाभदायक है?

उ. सूर्योदय से एक घण्टा छत्तीस मिनट पूर्व निद्रा का त्याग करना चाहिये। यह ब्रह्ममुहूर्त कहलाता है।

(1) इससे तन स्वस्थ व मन प्रसन्न रहता है एवं आत्मा शुद्ध बनती है।

(2) जो व्यक्ति ब्रह्म मुहूर्त में निद्राधीन रहता है, उसका पुण्य भी सो जाता है।

शास्त्रों में कहा गया है— 'ब्राह्म—मुहूर्त या निद्रा सा पुण्यक्षय—कारिणी।'

अंग्रेजी में लिखा है—

Early to Bed and Early to Rise,

Is the way to be Healthy, wealthy and wise.

(3) वैज्ञानिकों ने शोध करने के उपरान्त निष्कर्ष निकाला है कि कम नींद लेने से हृदय रोग की संभावनाएँ कम हो जाती हैं।

(4) प्रातः जागरण से शक्ति, बुद्धि एवं समृद्धि में वृद्धि होती है। इस समय प्रकृति मेधा, स्फूर्ति एवं आनंद की वर्षा करती है। इससे प्राणों में नवस्फूर्ति एवं ताजगी का संचरण

होता है।

(5) यह अनुभवगम्य तथ्य है कि ब्रह्म मुहूर्त का जाप एवं धर्म—क्रिया दिवस पर्यन्त की अपेक्षा अधिक आनंददायक होती है।

ब्रह्ममुहूर्त का दो घण्टे का अध्ययन दिवस भर के छह घण्टे के अध्ययन से अधिक होता है एवं स्मृति में स्थिर रहता है।

प्र.395. प्रातः जागरण के साथ क्या करना चाहिये?

उ. आठ बार नवकार मंत्र का श्रद्धा एवं एकाग्रता के साथ स्मरण करना चाहिये। उसके बाद दोनों हथेलियों को मिलाकर मध्यवर्ती रेखा से जो अर्द्धचन्द्राकार बनता है, उसमें सिद्ध शिला की यथार्थ कल्पना करनी चाहिये। उसके ऊपर आठ अंगुलियों के कुल चौबीस पोरवों में चौबीस तीर्थकरों की पावन कल्पना करके आदिनाथ से महावीर स्वामी पर्यन्त चतुर्विंशति जिनस्तुति स्वरूप लोगस्स का पाठ करना चाहिये। यदि लोगस्स नहीं आता हो तो उन्हें नामपूर्वक वंदना करते हुए प्रार्थना करें

कि प्रभो! मैं कब सिद्धपद को प्राप्त करूंगा। तत्पश्चात् —

‘अंगूठे अमृत वसे, लब्धि तणा भण्डार।
श्री गुरु गौतम समरिये, वांछित फल दातार।।’

‘दासानुदासा इव सर्व देवा,
यदीय पादाब्जतले लुठन्ति।
मरुस्थली कल्पतरु स जीयाद्

युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः।।’

ये दोनों श्लोक बोलकर क्रमशः गौतम स्वामी तथा दादा गुरुदेव को भावपूर्वक वंदना करें।

हथेली दर्शन से ये भाव भी अभिव्यक्त होते हैं कि—

- इन हाथों से आज किसी को दुःखी नहीं करूँगा।
- सुपात्र दान आदि शुभ कार्य करूँगा।
- दीन—दुःखी के आँसू पोछूँगा।
- किसी जीव की हिंसा नहीं करूँगा।
- निर्बल को सताऊँगा नहीं। झूठा लेख आदि नहीं लिखूँगा।
- प्रभु एवं गुरु भगवंतों को हाथ जोड़कर वंदना एवं आदरणीय माता—पिता आदि को हाथ जोड़कर चरण—स्पर्श करूँगा।

प्र.396. चरण स्पर्श क्यों करना चाहिये?

उ. माता—पिता के उपकारों को लिखना असंभव है। शास्त्रों में कहा गया है कि कोई पुत्र —

(1) अपनी चमड़ी के जूते बनाकर पहनाएँ।

(2) देव बनकर जीवन भर कंधों पर उन्हें उठाकर फिरे।

(3) छप्पन पकवान बनाकर खिलाये तब भी माता—पिता के उपकारों का ऋण चुका पाना असम्भव है।

वे अनेक कष्ट उठाकर भी पुत्र की सुविधा एवं सुख का ख्याल रखते हैं। संस्कारी, योग्य, शिक्षित, व्यवहारिक, धार्मिक, स्वावलम्बी सन्तान के निर्माण में पूर्णतया माता—पिता के उपकार ही कारण हैं। ऐसे निःस्वार्थी, उपकारी माता — पिता के आशीर्वाद का अमृत पाने हेतु चरण स्पर्श किया जाता है।

प्र.397. चरण स्पर्श का वैज्ञानिक रहस्य बताइये।

उ. चरण स्पर्श को बुद्धिजीवी लोग केवल रूढ़िवाद के रूप में समझते हैं अतः जरूरी है कि इसके वैज्ञानिक पक्ष से अवगत कराया जावे।

प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक अंग एवं उपांग से ऊर्जा/विद्युत्—तरंगें प्रवाहित होती हैं। जैसे पॉवर हाउस में तार जोड़ने से लाईट हो जाती है, ठीक उसी प्रकार वंदनीय गुरुजनों एवं माता—पिता के चरणों का स्पर्श

करने से उनमें विद्यमान गुण तरंगों पर सवार होकर हमारे शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

धर्म-विज्ञान के अनुसार चरण-स्पर्श से व्यक्ति विनय युक्त हो जाता है और विनय-नमन एक ऐसा चुम्बकीय गुण है, जो महापुरुषों को भी आकृष्ट कर लेता है। इससे व्यक्ति महानता के शिखर का वरण कर लेता है। विनय से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं।

कर्म विज्ञान की दृष्टि से गुणवानों को वंदन करने से उच्च गोत्र का उपार्जन एवं नीच गोत्र का क्षय होता है।

आरोग्य विज्ञान की दृष्टि से भी 'प्रणाम' की प्रक्रिया अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। चरण-स्पर्श में मेरु-दण्ड को मोड़ने-सीधा करने की प्रक्रिया से वह लचीला, प्राणवान्, स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनता है, जिससे व्यक्ति में एकाग्रता, ध्यान, साधना का विकास होता है।

पवित्र चरित्र के धारक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के अंगुष्ठ-स्पर्श से श्रापिता कठोर पाषाणवत्

अहिल्या भी ऊर्जामयी बन गयी थी।

प्र.398. चरण स्पर्श किस प्रकार करना चाहिये?

उ. चरण-स्पर्श की प्रक्रिया समझने जैसी है। वर्तमान में व्यक्ति घुटनों का स्पर्श करता है, इसी से लगता है कि घुटनों की बीमारी बढ़ती जा रही है क्योंकि अंगों से निकलने वाली ऊर्जा हमें प्रभावित करती है।

(i) चरण-स्पर्श करते समय प्रणम्य पुरुष के चरण-अंगुष्ठ से ललाट का एवं अंगुलियों के पोरवों का संयोग होना चाहिये, ताकि उससे प्रवाहित होने वाली सात्त्विक, विधायक ऊर्जा ग्रहण की जा सके।

(ii) दांये हाथ का स्पर्श बांये चरण से एवं बांये हाथ का दांये चरण से स्पर्श करना चाहिये। धनात्मक एवं ऋणात्मक ऊर्जा का संयोग होने से तन, मन एवं चेतन में विद्युत् तरंगों का स्पन्दन होता है, जो अनेक रोगों का निदान कर देता है।



जिन-दर्शन एवं पूजन विधि

प्र.399. जिनपूजा हेतु स्नान किस प्रकार करनी चाहिए?

उ. श्रावक को परात में बैठकर सीमित जल से पश्चिम दिशामुखी स्नान करनी चाहिये और वह पानी निरवद्य (जीवरहित) भूमि पर परठना चाहिये।

प्र.400. जिनपूजा हेतु प्रारंभिक जानकारी दीजिये।

- उ. 1. जिनपूजा में बिना सिले एवं बिना कटे फटे तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये।
2. जिनपूजा हेतु नग्न पाँव जाना चाहिये।
3. घर से लगाकर मंदिर पर्यंत मौन रखना चाहिये एवं जयणा पूर्वक चलना चाहिये।
4. ध्वजा के दर्शन होने पर 'नमो जिणाणं' कहना चाहिये।
5. मंदिर में पुरुष वर्ग को परमात्मा के दायीं तरफ तथा स्त्री वर्ग को बायीं तरफ खड़ा रहना चाहिये।

प्र.401. जिनमंदिर में प्रवेश करते और बाहर निकलते घण्टनाद क्यों किया जाता है?

उ. 1. घण्टनाद व्यक्ति को जगाने में हेतु

है। जैसे ही घण्ट का घोष व्यक्ति के कानों से टकराता है, व्यक्ति को स्मरण हो आता है कि 'मैं मंदिर में आ गया हूँ। मुझे संसार से संबंधित विचार नहीं करने हैं।'

2. अन्तर का आनंद अभिव्यक्त करने के लिये बाहर निकलते समय घण्टनाद किया जाता है, पर घण्टनाद सामान्य ध्वनिपूर्वक करना चाहिये।

प्र.402. जिन मन्दिर में प्रविष्ट होते समय कौनसे माँच अभिगमों का पालन करना होता है?

उ. (1) सचित्त का त्याग — गले में स्थित पुष्पमाला एवं केश-वेणी का त्याग करके मंदिर जाना। खाने — पीने की वस्तु यथादवा, मुखवास आदि लेकर मंदिर में प्रवेश नहीं करना।

(2) अचित्त का अत्याग — यदि शरीर पर आभूषण हो तो उनका त्याग नहीं करना।

(3) उत्तरासन — पुरुषों को मंदिर में स्कंध को एवं स्त्रियों को सिर ढककर मंदिर में प्रवेश करना।

(4) अंजलिबद्ध प्रणाम — ध्वजा एवं प्रभु दर्शन होते ही झुककर नमो जिणाणं कहना ।

(5) प्राणिधान—एकाग्रता एवं विनय से पूजन—अर्चन—स्तवन करना ।

प्र.403. मंदिर से संबंधित दस त्रिक कौन कौनसी हैं?

उ. तीन—तीन की बातों के समूह को त्रिक कहा जाता है, ऐसी बातें दस होने से त्रिक दस प्रकार की कही गयी हैं—

1. निसीहि 2. प्रदक्षिणा 3. प्रणाम
4. पूजा 5 अवस्था 6. दिशा 7. प्रमार्जना
8. आलम्बन 9. मुद्रा 10. प्राणिधान ।

प्र.404. निसीहि त्रिक किसे कहते हैं?

उ. निसीहि अर्थात् निषेध करना, त्याग करना ।

1. जिनमंदिर में प्रवेश करते समय सांसारिक कार्यों के त्याग रूप प्रथम निसीहि बोलनी चाहिये ।
2. मंदिर संबंधी व्यवस्थाओं का अवलोकन करने के पश्चात् प्रभु पूजा हेतु मूल गंभारे में प्रवेश करते समय दूसरी निसीहि बोलनी चाहिये ।
3. प्रभुपूजा करने के बाद भावपूजा (चैत्यवंदन) करने से पूर्व तीसरी निसीहि बोलनी चाहिये ।

प्र.405. प्रदक्षिणा त्रिक किसे कहते हैं?

उ. सम्यक्ज्ञान — दर्शन — चारित्र रूप रत्नत्रयी की प्राप्ति के लिये परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा देना प्रदक्षिणा त्रिक कहलाता है ।

प्र.406. प्रणाम त्रिक से क्या अभिप्राय है?

उ. प्रणाम तीन प्रकार के होते हैं —

1. अंजलिबद्ध— दोनों हाथ जोडकर, सिर झुका कर नमो जिणाणं कहना ।
2. अर्धावनत— आधा शरीर झुकाकर प्रणाम करना ।
3. पंचाग प्रणिपात— खमासमणा देते समय दोनों हाथों, दोनों घुटनों और मस्तक को भूमि से स्पर्श कराते हुए प्रणाम करना ।

प्र.407. तीन प्रकार की पूजा कौनसी हैं?

उ. अंगपूजा, अग्रपूजा एवं भावपूजा ।

प्र.408. अंगपूजा और अग्रपूजा में क्या अन्तर है?

उ. अंगपूजा में प्रभु—प्रतिमा का स्पर्श किया जाता है परन्तु अग्रपूजा में प्रतिमा का स्पर्श न करके उनके सम्मुख पूजा की जाती है ।

प्र.409. परमात्मा के किन नव अंगों की पूजा की जाती है?

उ. 1. अंगूठा 2. घुटना 3. हाथ 4. कंधा 5. मस्तक 6. ललाट 7. कंठ 8. हृदय 9. नाभि ।

प्र.410. अंगुष्ठ पूजा क्यों की जाती है?

उ. आत्मकल्याण एवं केवलज्ञान की प्राप्ति हेतु परमात्मा ने चरणों से विहार किया था और मुझे भी ऐसा कायिक बल मिले ताकि मैं भी विहार कर सकूँ, इस शुभ लक्ष्य से अंगुष्ठ पूजा की जाती है।

प्र.411. घुटनों की पूजा का लक्ष्य क्या है?

उ. जिस प्रकार साधनाकाल में प्रभु ने घुटनों के बल खड़े रहकर साधना की थी, वैसी शक्ति की प्राप्ति के लिये घुटनों की पूजा की जाती है।

प्र.412. हाथों की पूजा क्यों की जाती है?

उ. जिस प्रकार प्रभु ने वर्षादान देकर बाह्य निर्धनता को एवं दीक्षा दान करके आन्तरिक दरिद्रता को दूर किया था, उसी प्रकार मैं भी संयम पथ अपनाकर भाव जगत की दरिद्रता दूर कर सकूँ, अतः हाथों की पूजा की जाती है।

प्र.413. स्कंध पूजा से क्या अभिप्राय है?

उ. स्कंध अभिमान के प्रतीक हैं परन्तु परमात्मा ने स्वयं की ज्ञान व ध्यान शक्ति का कभी भी अभिमान नहीं किया। उनकी तरह मैं भी निरभिमानी बनूँ, इस अभिप्राय से प्रभु की स्कंध पूजा की जाती है।

प्र.414. ललाट की पूजा किस लक्ष्य से की जाती है?

उ. ललाट जिस प्रकार समस्त अंगों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं श्रेष्ठ है, उसी प्रकार परमात्मा तीनों लोकों में विशिष्ट, पूज्य एवं सेव्य होने से प्रभु के ललाट की पूजा की जाती है।

प्र.415. मस्तक पूजा का क्या रहस्य है?

उ. मस्तक बुद्धि का निवास स्थल है। परमात्मा ने बुद्धिनिधान होने पर भी उसका दुरुपयोग अथवा अहंकार नहीं किया, उसी स्थिति की प्राप्ति के लिये मस्तक पूजा की जाती है।

प्र.416. कंठ पूजा का कारण क्या है?

उ. परमात्मा ने जन कल्याण के लिये देशना दी थी, उसी हेतु से प्रभु की कंठ पूजा की जाती है।

प्र.417. हृदय पूजा से क्या अभिप्राय है?

उ. परमात्मवत् उपकारी एवं अपकारी, समस्त जीवों पर समभाव जगाने हेतु हृदय की पूजा की जाती है।

प्र.418. नाभि पूजा क्यों की जाती है?

उ. नाभि में स्थित कर्मरहित आठ रूचक प्रदेशों की भौंति कर्म मुक्ति की मंगल भावना से नाभि की पूजा की जाती है।

प्र.419. अष्टप्रकारी पूजा के रहस्य को स्पष्ट करो।

उ. 1. जल पूजा— आत्मा पर लगा कर्मों का मल एवं मेल को मिटाकर निर्मल बनने के लिये।

2. **चंदन पूजा**— कषायों की दाहकता मिटाकर समभाव की शीतलता पाने के लिये।
3. **पुष्प पूजा**— आत्मा में गुणों की सुरभि फैलाने के लिये।
4. **धूप पूजा**— धूप-घटा की भाँति उर्ध्वगति को प्राप्त करने के लिये।
5. **अक्षत पूजा**— अक्षय पद प्राप्त करने के लिये।
6. **दीप पूजा**— बेवलज्ञान का आलोक प्रकट करने के लिये।
7. **नैवेद्य पूजा**— रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करने के लिये।
8. **फल पूजा** — मोक्षरूपी फल की प्राप्ति के लिये।

प्र.420. अष्टप्रकारी पूजा में क्या-क्या सावधानियाँ रखनी चाहिये।

- उ.
1. प्रक्षाल में जयणापूर्वक जल प्रयोग करना चाहिये। प्रक्षाल का जल पाँवों में न आवे एवं जीव उसमें गिरकर न मरे, इसका पूरा पूरा ध्यान रखना चाहिये। बाद में निरवद्य (जीवरहित) स्थान में उस प्रक्षाल जल को परठना चाहिये।
 2. चंदन ऐसा न हो कि प्रतिमा पर रेले उतरे अतः गाढ़े चंदन से पूजा करनी चाहिये परन्तु प्रतिमा के नाखून का स्पर्श कदापि नहीं होना

चाहिये। प्रतिमा के लिये हानिकारक होने से केसर का उपयोग कम से कम करना चाहिये।

3. पाँव में आये हुए, मुरझाये एवं सूँघे हुए पुष्पों से प्रभु-पूजा नहीं करनी चाहिये।
4. फूलों को पानी से धोना नहीं चाहिये, इस प्रकार की क्रिया से विराधना की पूर्ण संभावना है।
5. फूलों को सुई से कभी भी बिंधना नहीं चाहिये। उनकी पंखुडियाँ भी अलग-अलग नहीं करनी चाहिये।
6. यदि धूप पूर्व में प्रकट हो तो नया नहीं जलाना चाहिये।
7. धूपदानी को भगवान के बायीं तरफ स्थापित करना चाहिये।
8. दीपक खुला नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि उसमें विविध कीट-पतंग आदि जीव गिरकर मर जाते हैं।
9. सडे हुए नैवेद्य से पूजा नहीं करनी चाहिये। अभक्ष्य जैसे बासी पदार्थ, चॉकलेट, बाजार की बनी मिठाई नहीं चढानी चाहिये। मखाणा, मिठाई के टुकड़े आदि मधुर पदार्थों को पाउच में पैक करके चढाने चाहिये वरना उसके कारण चींटी आदि की अजयणा का पाप लग सकता है।

10. आर्द्रा नक्षत्र लगने के बाद आम, फाल्गुन चौमासी के बाद सूखा मेवा (बादाम के सिवाय) त्याज्य होने से प्रभु पूजा में उसका सर्वथा निषेध करना चाहिये।

11. आंगी आदि में हिंसाजन्य वरक का उपयोग कदापि नहीं करना चाहिये।

12. चंदन व केसर का आवश्यकता-अनुसार ही उपयोग करना चाहिये।

13. सबसे पहले प्रभु की, तत्पश्चात् दादा गुरु आदि गुरु भगवंतों की एवं अन्त में देव देवी की पूजा करनी चाहिये। सिद्धचक्र की पूजा प्रभु-पूजा से पूर्व भी की जा सकती है।

14. अष्टमंगल की पूजा नहीं करनी चाहिये। वह प्रभु के समक्ष स्थापित करने के लिये है।

15. प्रदक्षिणा देते समय इधर-उधर न देखकर जयंणा का पालन करना चाहिये व मधुर स्वर में दोहों का उच्चारण करना चाहिये।

16. भगवान की दृष्टि न पड़े, इस तरह खड़े होकर तिलक करना चाहिये।

प्र.421. पुष्प पूजा का शास्त्रीय विधान बताओ।

उ. शास्त्रों में कहा गया है कि पौधे के

नीचे रात्रि में स्वच्छ वस्त्र रख देना चाहिये। फिर उस पर जो पुष्प स्वतः खिर जाये, उस पुष्प से प्रभु की पूजा करनी चाहिये।

प्र.422. प्रभु के सम्मुख स्वस्तिक, सिद्धशिला का निर्माण क्यों किया जाता है?

उ. स्वस्तिक चार गतियों का प्रतीक है एवं उनसे मुक्त होने का उपाय है-सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य। अतः उसके उपर रत्नत्रयी स्वरूप तीन ढेरियों का निर्माण किया जाता है। इस रत्नत्रयी की आराधना के द्वारा सिद्धशिला की प्राप्ति संभव है। उसके प्रतीक स्वरूप अर्द्धचन्द्राकार में सिद्धशिला की रचना की जाती है।

प्र.423. स्वस्तिक आदि अक्षत के ही क्यों बनाये जाते हैं?

उ. छिलके रहित चावल को बोने पर वह अंकुरित नहीं होता है, उसी प्रकार राग-द्वेष के बीजों को नष्ट करके जन्म-मरण से मुक्त होने के लिये स्वस्तिक आदि अक्षत से बनाये जाते हैं।

प्र.424. मुखकोश बांधकर ही प्रभु पूजा क्यों की जाती है?

उ. हमारा शरीर मल, अशुचि और गंदगी से भरा हुआ है अतः हमारे श्वासोच्छ्वास की दुर्गंध को रोकने के लिये अष्टपड

वाला मुखकोश बांधा जाता है।

प्र.425. पूजा के वस्त्रों से सम्बन्धित जानकारी दीजिये।

- उ. 1. धोती पहनते समय गांठ नहीं लगानी चाहिये। उसकी विधि जानकार से सीख लेनी चाहिये।
2. धोती के खुल जाने का भय हो तो कटिबंध (कंदोरा) बांधना चाहिये।
3. दुपट्टा धारण करते समय दाहिना स्कंध खुला रखना चाहिये।
4. स्त्री-वर्ग को मर्यादा के अनुरूप वस्त्र धारण करने चाहिये।
5. पुरुषों को सिलाई रहित अखण्ड वस्त्र धारण करने चाहिये।
6. पूजा के वस्त्रों से पंसीना, मेल आदि साफ नहीं करने चाहिये।
7. पूजा के वस्त्रों में कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिये।
8. सर्दी के दिनों में स्वेटर आदि पहनने की बजाय पूजा के लिये अलग शॉल रखनी चाहिये।
9. पूजन वस्त्र धारण करने से पूर्व उन्हें अभिमंत्रित करने के लिये 'ओम् ह्रीं आँ क्रौं नमः' मंत्र बोलते हुए उनका स्पर्श करना चाहिये।
10. पूजा के वस्त्र उत्तर दिशामुखी होकर धारण करने चाहिये।

11. पूजा के वस्त्रों में सामायिक करने पर पुनः उनका पूजा में उपयोग नहीं हो सकता। सामायिक की जा सकती है।

प्र.426. मन्दिर प्रवेश से पूर्व पाँव प्रक्षालन की विधि बताईये।

- उ. 1. मंदिर प्रवेश से पूर्व पाँव धोने के स्थान का अच्छी तरह देखना चाहिये कि वह स्थान चींटी आदि जीवों से युक्त तो नहीं है। इससे जयणा का पालन होगा। पाँव धोने का पानी गटर, नाली में नहीं जाना चाहिये।
2. पैर धोते समय एक पाँव के पंजे से दूसरे पाँव को घिसने से अपयश होता है अतः ऐसी प्रवृत्ति से बचना चाहिये।

प्र.427. गर्भगृह (गंभारे) में प्रवेश करने की विधि समझाओ।

- उ. 1. अंगपूजा में उपयोगी पदार्थ ही साथ ले जाने चाहिये।
2. पर्स, थैला, मोबाईल आदि गंभारे में नहीं ले जाने चाहिये।
3. प्रवेश करते समय राग-द्वेष रूप सिंह के मस्तक पर दाहिना पाँव रखते हुए भीतर प्रवेश करना चाहिए।
4. मूल गंभारे में अंग पूजा के

अतिरिक्त धूप, दीप, आरती, चैत्यवन्दन आदि नहीं करने चाहिये।

5. प्रभु के लंछन, हथेली एवं श्रीवत्स की पूजा नहीं करनी चाहिये।
6. प्रभु पूजा करते समय तीन बातों का त्याग करना चाहिये— 1. शरीर को खुजलाना। 2. खंखारा करना। 3. स्तुति—स्तोत्र बोलना अथवा बातचीत करना।
7. प्रभु के सम्मुख पग पर पग चढ़ाकर नहीं बैठना चाहिये।

प्र.428. प्रभु एवं गुरु की पूजा अनामिका से ही क्यों की जाती है?

- उ. 1. अनामिका में पीयूष ग्रंथी होती है। उसका सम्बन्ध मूलाधार से है, जो शक्ति का केन्द्र है। इसके जागरण से चित्त वृत्ति निर्मल, स्थिर एवं दृढ बनती है एवं शरीर में शक्तियों का संचार होता है।
2. अनामिका में पृथ्वी तत्त्व प्रधान रूप से रहा हुआ है। पृथ्वी तत्त्व की जागृति से व्यक्ति शांत, सहिष्णु और गंभीर बनता है।
3. सामुद्रिक शास्त्र — विज्ञानानुसार अनामिका क्षत्रिय अंगुली है। क्षत्रिय यानि विजेता। स्वयं के कषायों, दोषों और दुर्गुणों को जीतकर व्यक्ति वीतरागी एवं

आत्मविजेता बनता है।

4. अनामिका का संबंध हृदय से है। इसे स्फुरायमान करके भक्त पूजन के द्वारा प्रभु को अर्पित—समर्पित होता है एवं भगवद् भक्ति में एकाकार बनता है।

प्र.429. महाराजश्री! पार्श्वनाथ प्रभु के फण की पूजा अनामिका से करनी चाहिये अथवा अंगूठे से?

- उ. पार्श्वप्रभु के उपर रहे हुए फण परमात्मा का अंग नहीं है, वह धरणेन्द्र देव का प्रतीक है, अतः उनकी पूजा अंगूठे से ही करनी चाहिये। पूजा, क्रम, केसर उपयोग आदि में भी विवेक रखना चाहिये।

प्र.430. महाराजश्री! मंदिर में प्रभु के आस—पास की देवकुलिकाओं में स्थित दादा गुरुदेव को वन्दन नहीं करना चाहिये। ऐसा हमने अन्यों से सुना है, तो क्या ऐसा करने से परमात्मा की आशातना होती है?

- उ. नहीं ! जिस प्रकार घर में माता—पिता के सम्मुख, चाचा—चाची, बड़े भाई—बहिन आदि को प्रणाम करने में कोई बाधा नहीं है। मंदिर में प्रभु के सम्मुख शासन भक्त देवों का अभिवादन किया जाता है, उसी प्रकार दादा गुरुदेव को वंदन व उनका गुणोत्कीर्तन



करने से प्रभु की आशातना नहीं होती। यदि कोई गुरु को प्रभु मानकर पूजा करें तो जरूर दोष उपस्थित होता है।

श्री हेमचन्द्राचार्य ने मंदिर में गुरु-वंदना की प्ररूपणा की है। जब प्रभु के सम्मुख निकटवर्ती गोखलों में स्थिति अधिष्ठायक देव-देवी की पूजा की सकती है, तो दादा गुरुदेव को वंदन क्यों नहीं हो सकता ?

प्र.431. देव-देवी के तिलक ही क्यों किया जाता है?

उ. सम्यक्त्वी देव-देवी हमारे साधर्मिक बंधु तुल्य हैं, अतः सम्मान तथा बहुमान का प्रतीक तिलक ललाट पर अंकित किया जाता है।

प्र.432. भावपूजा से क्या अभिप्राय है?

उ. चैत्यवंदन, स्तुति, स्तवन के द्वारा प्रभु के गुणगान करना भावपूजा कहलाती है।

प्र.433. भावपूजा किस प्रकार की जानी चाहिये?

- उ. 1. चैत्यवंदन स्थान पर तीन बार दुपट्टे से भूमि की प्रमार्जना करके इर्यापथिकी पूर्वक चैत्यवंदन करना चाहिये।
2. चैत्यवंदन करने से पूर्व तीसरी निसीहि का उच्चारण करना

चाहिये अर्थात् अब द्रव्य पूजा से भाव पूजा में प्रवेश करता हूँ।

3. स्वस्तिक (साथिया) बनाते हुए चैत्यवंदन नहीं करना चाहिये।
4. स्तवन मधुर, भावपूर्ण हो परन्तु दूसरों को भक्ति में परेशानी हो, इस प्रकार उच्च स्वर से नहीं गाना चाहिये।
5. सूत्रों का उच्चारण शुद्ध, स्पष्ट, भावार्थपूर्ण होना चाहिये।
6. प्रभु भक्ति करते समय प्रभु के सिवाय तीनों दिशाओं का त्याग करना चाहिये।

प्र.434. ललाट पर तिलक क्यों अंकित किया जाता है?

उ. दोनों भृकुटियों के मध्य में आज्ञाचक्र स्थित है। इस चक्र को शास्त्रों में तृतीय और दिव्य नेत्र कहा गया है। यहीं पर सुषुम्ना, इडा व पिंगला इन तीन विशिष्ट नाडियों का संगम होता है। नाडियों एवं आज्ञाचक्र की जागृति से मानव दृढ संकल्पी, आत्मनियंता, नेतृत्व कुशल, प्रसन्न-चित्त, दीर्घायुषी व हितैषी बनता है। जप, तप, ज्ञान, ध्यान आदि की एकात्मकता से अवधि ज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान तक की उच्च भूमिका तक भी पहुँच सकता है।

आचार्य देवेन्द्रसूरि विरचित चैत्यवंदन भाष्य में जयवीयराय सूत्र में 79 अक्षर संख्या का निर्देश किया है और आभवमखण्डा तक 79 अक्षर हो जाते हैं। इससे स्पष्ट ही है कि मूल में जयवीयराय दो गाथा वाला ही है और पूर्व में तपागच्छ मे भी इतना ही बोला जाता था। गणधर विरचित इस सूत्र में शेष गाथाएँ प्रक्षिप्त होने से हमारी परम्परा में नहीं बोली जाती हैं।

प्र.439. जिनमंदिर संबंधी आशातनाएँ बताओ।

उ. जिनमंदिर की उत्कृष्टतः चौरासी, मध्यम चालीस एवं जघन्यतः दस आशातनाएँ शास्त्रों में वर्णित हैं।

1. **उत्कृष्ट आशातना**— जिन प्रतिमा भंग करना, चोरी करना, उसके थूंक आदि अशुचि लगाना, ये उत्कृष्ट आशातनाएँ हैं।
2. **मध्यम आशातना**— अस्वच्छ वस्त्रों से जिनपूजा करना, जिनबिम्ब को भूमि पर रखना, ये मध्यम आशातनाएँ हैं।
3. **जघन्य आशातना**— निम्नोक्त जघन्यतः दस आशातनाओं को अवश्यमेव छोड़ना चाहिये।

दस आशातनाएँ — 1 मंदिर में पान सुपारी खाना 2. पानी पीना 3. भोजन करना 4. जूते पहनना 5. मैथुन

सेवन करना 6. थूंकना 7. श्लेष्म डालना 8. लघुनीति करना 9. बड़ी नीति करना 10. जुआ खेलना।

प्र.440. प्रभु पूजा से आठ कर्मों का नाश कैसे होता है?

- उ.
1. प्रभु—गुणगान से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।
 2. प्रभु दर्शन से दर्शनावरणीय कर्म का क्षय होता है।
 3. जयणायुक्त पूजा से अशाता वेदनीय कर्म का क्षय होता है।
 4. जीव—अजीव के ज्ञान से मोहनीय कर्म का क्षय होता है।
 5. अक्षय स्थिति युक्त अरिहंत के पूजन से आयुष्य कर्म का क्षय होता है।
 6. अनामी प्रभु के नाम स्मरण से नाम कर्म का क्षय होता है।
 7. प्रभु वंदन से नीच गोत्र कर्म का क्षय होता है।
 8. प्रभु भक्ति में शक्ति—प्रयोग से अन्तराय कर्म का क्षय होता है।

प्र.441. महाराजश्री! प्रभुपूजा में अप्काय आदि की विराधना/हिंसा होने से पाप लगता है या नहीं?

उ. प्रभु पूजा में यद्यपि हिंसा होने से पाप लगता है तथापि परमार्थ रूप सम्यक्त्व और सिद्धि की प्राप्ति होने से लाभ ज्यादा है। फिर भी प्रभु पूजा में विवेक

एवं शास्त्रीय विधि विधान का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये। अविधि एवं अशास्त्रीय पूजा पाप बंध का कारण बन जाती है। यथा—पुष्प पूजा स्वयं खिरे हुए पुष्पों से करनी चाहिये।

आचार्य हरिभद्रसूरि विरचित पंचाशक प्रकरण की वृत्ति में नवांगी वृत्तिकार अभयदेवसूरि कहते हैं कि स्नान करने वाले को पूजा अवश्यमेव करनी चाहिये परन्तु जिसने परमार्थ—प्रज्ञापूर्वक शरीर की शुद्धि का त्याग कर दिया है, उसे पूजा हेतु स्नान करने की अनिवार्यता नहीं है।

प्र.442. महाराजश्री! मूर्ति तो जड है फिर उससे परम पद की प्राप्ति किस प्रकार संभव है?

उ. यद्यपि चिन्तामणि रत्न एक जड (पाषाण) है तथापि उससे इच्छित—वांछित पदार्थ अवश्यमेव प्राप्त होते हैं। दूसरी बात जड होने से पदार्थ आत्म कल्याण में उपयोगी नहीं है, ऐसा कहना नासमझी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

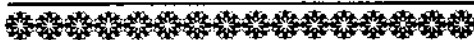
परमात्मा की देशना रूप शब्द भी जड ही हैं। फिर भी उनके द्वारा जीव मुक्ति को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार जड होने पर भी प्रभु प्रतिमा मुक्ति—पथ में सहायक है।

भगवती सूत्र के प्रारम्भ में 'नमो बंभीए लिवीए' कहकर ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया गया है अतः जड अपूज्य है, ऐसा कहना अप्रासंगिक है। एक अश्लील चित्र देखने से जब मन में विकारों की उत्पत्ति संभव है तो फिर प्रभु की वीतराग मुद्रा वीतरागी बनाने में समर्थ/सक्षम कैसे नहीं हो सकती? अर्थात् वीतरागी का स्वरूप अवश्य ही वीतराग पद की प्राप्ति करा सकता है।

प्र.443. महाराजश्री! यदि प्रभु पूजन से मुक्ति की साधना साधी जा सकती तो फिर आप पूजा क्यों नहीं करते हैं?

उ. साधु—साध्वी भाव पूजा ही करते हैं, द्रव्य पूजा नहीं। क्योंकि उसका फल संयम की प्राप्ति है। आर्द्रकुमार ने आदिनाथ की प्रतिमा से संयम साधा था अतः संयम फल की प्राप्ति हो जाने से द्रव्य पूजा नहीं करते हैं।

प्र.444. महाराजश्री! आप कहते हैं— प्रभु प्रतिमा परमात्म स्वरूप है। परमात्मा का जीव एक है और प्रतिमाएँ हजारों—लाखों—करोड़ों, तो फिर एक जीव की इतनी प्रतिमाओं में प्रतिष्ठा किस प्रकार संभव है?



उ. जब परमात्मा की प्रतिमा पर अंजन—शलाका का महाविधान होता है तो प्राणों की प्रतिष्ठा की जाती है, जीव की नहीं।

परमात्मा तो सिद्ध हो चुके हैं, उनका संसार में पुनः आना अशक्य है परन्तु तीर्थकर के भव में जो दस प्राण परमात्मा ने भोगे, वे जड़, पुद्गल प्राण इस वायुमण्डल में बिखरे पड़े हैं, उन्हें जब शुभ मुहूर्त में विविध मुद्रा, मंत्रोच्चारण एवं विधि—विधान के द्वारा आकर्षित करके प्रतिमा में आरोपित किया जाता है, तब शुभ, दिव्य पुद्गलों से वह प्रतिमा भी अतिशयपूर्ण बन जाती है और जीव को शिव की यात्रा करवाती है अतः ध्यान रखना—प्रतिमा में जीव की नहीं, प्राणों की प्रतिष्ठा की जाती है और उन प्राण पुद्गलों की हजायों, लाखों, करोड़ों प्रतिमाओं में प्रतिष्ठा असंभव नहीं है।

प्र.445. महाराजश्री! हमने सुना है कि जिन प्रतिमा काल्पनिक है। आप हमें बताएँ कि आगमों में भी कहीं जिन प्रतिमा का विधान उपलब्ध है अथवा आचार्यों के द्वारा

रचित सूत्रों में ही जिन प्रतिमा पूजा की बातें कही गयी हैं?

उ. भगवती, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना आदि आगमों में जिन-प्रतिमा पूजा का वर्णन उपलब्ध होता है। छठे ज्ञाताधर्मकथा सूत्र में द्रौपदी के द्वारा जिनपूजा एवं नमुत्थुणं के द्वारा स्तुति करने का पाठ उपलब्ध होता है। आगमों में अनेक स्थलों पर शाश्वत प्रतिमाओं का भी विवेचन प्राप्त होता है, अतः स्पष्ट है कि जिन प्रतिमा आगमानुसारी है, न कि आगम व सिद्धान्त विरुद्ध एवं काल्पनिक।

प्र.446. मंदिर में केसर वर्षा, अमी वर्षा, छत्र का डोलना आदि चमत्कार देखे जाते हैं पर महाराजश्री! भगवान तो मोक्ष में पहुँच गये, फिर वे चमत्कार कैसे कर सकते हैं?

उ. सही बात है। भगवान तो संसार एवं राग—द्वेष से मुक्त हो गये अतः वे चमत्कार नहीं करते हैं। भक्त की प्रभु भक्ति से प्रभावित होकर परमात्मा के भक्त अधिष्ठायक देव और देवी चमत्कार करते हैं।



कैसे सुने प्रवचन....?

प्र.447. प्रवचन श्रवण क्यों करें?

उ. उत्तराध्ययन सूत्र में परमात्मा फरमाते हैं कि तत्त्व-श्रवण से जड़-चेतन का भेद विज्ञान प्राप्त होता है, उससे आश्रव द्वारों को अवरुद्ध किया जाता है और क्रमशः संवर एवं निर्जरा के माध्यम से जीव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

एक बार प्रवचन सुनकर अतिमुक्तक वैरागी बना और वीतरागता तक पहुँचा। मात्र एक बार अश्रद्धापूर्वक सुने हुए श्लोक ने राहिण्य चोर को अभयकुमार के चंगुल में फँसने से बचा लिया।

जिनवाणी का माहात्म्य अपूर्व है। श्रद्धापूर्वक श्रवण कर जो आचरण में उतारता है, वह पुण्यानुबंधी पुण्य का संचय करके प्रत्येक भव में जिन-शासन को प्राप्त हुआ मोक्षगामी बनता है।

प्र.448. प्रवचन श्रवण किस प्रकार करना चाहिये?

उ. (1)जिनशासन के अनुशासन को आत्मसात् करते हुए गुरु महाराज के आने से पूर्व ही प्रवचन-

मण्डप में उपस्थित होना चाहिये।

(2)तत्पश्चात् गुरु महाराज को वन्दन करके वायणा (वाचना) के आदेश ग्रहण करें।

(3)सामायिकपूर्वक प्रवचन-श्रवण से अनेक लाभ प्राप्त होते हैं- जैसे जिनाज्ञा का पालन, संवर की साधना, एकाग्रता में वृद्धि, विरति धर्म की प्राप्ति इत्यादि।

(4)झुटे मुँह प्रवेश न करें। मोबाइल बन्द रखे, जिससे एकाग्रता में विघ्न उत्पन्न न हो।

(5)प्रवचन सुनते समय पंखे का उपयोग न करें। विरति धर्म-श्रवण करते हुए थोड़ी देर अवश्यमेव शरीर की सुविधा का त्याग करें ताकि पूरा लाभ प्राप्त हो।

(6)प्रवचन सभा के मध्य में न वार्तालाप करें, न बीच में से उठे। अत्यन्त आवश्यक कार्य हो तो बात अलग है।

(7)प्रवचन के मुख्य बिन्दु यदि डायरी में अंकित किये जाये तो पुनः पुनः स्वाध्याय का लाभ प्राप्त हो सकता है।

(8) यदि आप आगे के पंक्ति में बैठकर प्रवचन—श्रवण करना चाहते हैं तो समय पर प्रवचन—सभा में उपस्थित होना चाहिये। पीछे से आकर आगे बैठना प्रवचन सभा की मर्यादा व अनुशासना को भंग करना है।

(9) प्रवचन सुनते समय त्रिदिशि त्याग का पालन का करे यानि प्रवचन की पूर्णता पर्यन्त मुख, नयन और मन केवल और केवल गुरु भगवंत की ओर होने चाहिये।

(10) प्रवचन निद्रा की मुद्रा में न सुने। क्योंकि श्रोता की श्रवण मुद्रा प्रवचन मण्डप, वक्ता और अन्य श्रोताओं को प्रभावित करती है। जिस प्रकार संसार में कोई आश्चर्यजनक बात सुनकर हम तत्काल आश्चर्य से भर जाते हैं, वैसे ही अभुतपूर्व तत्त्व को सुनकर आश्चर्य होना ही चाहिये।

(11) प्रवचन में नींद न ले। सकारात्मक और जिज्ञासु मुख मुद्रा में प्रवचन श्रवण करें क्योंकि आपकी मनः स्थिति, चेहरे के हाव—भाव, आँखें, मुस्कान और बैठने की स्टाइल वक्ता को प्रोत्साहित एवं निरुत्साहित करती

है। वक्ता आनंद, उत्साह, चिन्तन से भर जाये, इस प्रकार सुने।

(12) प्रवचन को किसी फिल्मी गीत की तरह चंचलता से नहीं, अपितु गंभीरतापूर्वक रोम—रोम से मंत्र और सूत्र की तरह सुने।

(13) सुने हुए पर मनन अवश्य करें एवं आचरण में उतारने का पुरुषार्थ करें क्योंकि वक्ता से चिन्तक ज्यादा हैं, चिन्तक से श्रोता ज्यादा हैं पर आचारज्ञ तो अल्प ही होते हैं।

(14) प्रवचन का एक शब्द भी आपको बदलने की शक्ति रखता है जैसा कि रोहिणेय चोर ने एक बार अश्रद्धा से सुना पर जीवन बदल गया।

(15) प्रवचन के पूर्ण होने पर वंदन अवश्य करें।

प्र.449. शास्त्रों में कितने प्रकार के श्रोता कहे गये हैं ?

उ. चार प्रकार के —

(1) हँस की तरह अच्छी बातें ग्रहण करने वाले।

(2) सर्प की तरह जिसके लिये दूध भी जहर बन जाता है।

(3) छिद्रयुक्त घट की तरह जिसे सुनने पर भी कुछ भी याद नहीं रहता।

(4) छलनी जैसे श्रोता जो वक्ता व प्रवचन में दोषों को ही खोजते हैं। शास्त्रों में

चौदह प्रकार के भी श्रोता कहे गये हैं।

प्र.450. श्रोता के कितने गुण कहे गये हैं ?

उ. शास्त्रों में श्रोता के अपेक्षा भेद से इक्कीस व चौदह गुण वर्णित हैं, कुल मिलाकर सच्चा श्रोता उसे कह सकते हैं जो—

- (1) बुद्धिमान (2) चिन्तक (3) धारक
- (4) हेय, ज्ञेय व उपादेय का ज्ञाता (5) निश्चय व व्यवहार का ज्ञाता (6) विनयी (7) श्रद्धालु (8) जिज्ञासु (9) प्रवचन रसिक (10) सांसारिक सुखों की कामना से मुक्त (11) गुणग्राही (12) प्रियभाषी (13) गर्व रहित (14)

जैसा सुने, वैसा ही कहने वाला (15) धर्म में अप्रमत्त (16) निंदा, विकथा, वाद—विवाद, कदाग्रह से मुक्त हो।

प्र. 451. वक्ता के कितने गुण कहे गये हैं ?

उ. चौदह गुण— (1) आगम अनुसार कहना (2) अर्थ का सम्यग् विस्तार करना (3) वाणी में मधुरता (4) अवसर ज्ञाता (5) सत्यभाषी (6) संदेह निवारक (7) ज्ञानी (8) सरल भाषी (9) प्रवचन—प्रभावक (10) जिज्ञासा—समाधान करना (11) संतोषी (12) निरभिमानी (13) शास्त्र—उपयोगवान् (14) श्रोताओं को मुग्ध करना।



उपाश्रय में कैसा हो आचरण हमारा ?

प्र.452. उपाश्रय किसे कहते हैं एवं वहाँ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये?

उ. उप अर्थात् निकट! जो आत्मा के अत्यन्त निकट का आलम्बन है, उसे उपाश्रय कहा जाता है।

(1) जिनमंदिर की भौति उपाश्रय—गमन में भी ईर्यासमिति का परिपूर्ण पालन करना चाहिये।

(2) उपाश्रय में प्रवेश करते समय समस्त सांसारिक कार्य, वार्तालाप के त्याग रूप तीन बार 'निसीहि' का उच्चारण करना चाहिये।

(3) गुरु भगवंत को इच्छामि, इच्छकार अब्भुट्टियो से वंदन और सुखशाता—पृच्छा करने से पूर्व भूमि की तीन बार दुपट्टे या रुमाल से प्रमार्जना करें ! इससे ही जयणा का पालन होता है।

(4) गुरु भगवंत किसी से आवश्यक महत्त्वपूर्ण वार्तालाप कर रहे हो तब दूर से ही मंद स्वर से वंदना करें। अन्य मुनिवरों के दर्शन—वन्दन का लाभ अवश्य प्राप्त करें।

(5) उपाश्रय में न अखबार पढ़ें, न परस्पर सांसारिक, सामाजिक,

व्यापारिक वार्तालाप करें।

(6) गुरु भगवंत किसी कार्य में व्यस्त हो तो नवकार आदि का जाप करें अथवा अन्य मुनिवरों के मुख से धर्म श्रवण अथवा तत्त्व चर्चा करें।

(7) गुरु भगवंतों के सामने कुर्सी आदि पर न बैठे। शारीरिक समस्या के कारण कदाच उच्चासन पर बैठना पड़े तो मन में अनुताप का भाव लावे तथा कुर्सी के उपयोग की गुरु भगवंत से आज्ञा प्राप्त करें।

(8) जब कुर्सी छोड़कर घर की ओर प्रत्यावर्तित हो तब कुर्सी पुनः उचित स्थान पर रख दें।

(9) उपाश्रय में पंखा शुरु न करें। वस्त्रादि से हवा न करें।

(10) गुरु मुख से धर्मोपदेश श्रवण हेतु तत्पर—लालायित रहे तथा अवसर मिलने पर अचंचल भाव से एकाग्रतापूर्वक धर्म श्रवण करें। किसी प्रकार की जिज्ञासा होने पर 'मत्थएण वंदामि' पूर्वक पृच्छना करें।

(11) बोलते समय मुखवस्त्रिका या रुमाल का प्रयोग करें।

(12) गुरु अथवा मुनिवर पठन/ पाठन में व्यस्त हो तो बीच में सुखशाता—पृच्छा आदि से उनके स्वाध्याय एवं एकाग्रता में बाधा न पहुँचावे।

(13) उपाश्रय में यथासम्भव गुरु महाराज आदि से वार्तालाप करते समय मध्य में मोबाइल से बात करके उनकी आशातना कदापि न करें।

(14) उपाश्रय में झूठे मुँह प्रवेश न करें तथा उनके सम्मुख न खाये, न पीये।

(15) स्नान आदि के कारण बाल कच्चे पानी से भीगे हुए हो अथवा शरीर, वस्त्र आदि बरसात के पानी से भीगे हो तो गुरु भगवतों का स्पर्श न करें।

(16) उपाश्रय में कलह, कषाय आदि का सर्वथा त्याग करे।

(17) यथासंभव सामायिक के वस्त्र धारण करके सामायिक करें अथवा तत्त्व चर्चा पर्यन्त संवर की

साधना करें। इस हेतु धारणा के पच्चक्खाण करके पाप—मुक्त बने।

(18) उपाश्रय में पूर्ण विवेक एवं श्रद्धा का आचरण करने के उपरान्त बाहर निकलते समय गुरु वन्दन पूर्वक तीन बार 'आवस्सहि' कहे।

प्र.453. महाराज श्री ! आपके खरतरगच्छ संप्रदाय में श्रावकों के द्वारा साध्वीजी भगवत को भी इच्छकार, अब्मुटिठयो से वंदन किया जाता है, क्या वह शास्त्र सम्मत है?

उ. यद्यपि जैन संघ श्रमण प्रधान संघ है तथापि साध्वीजी भी साधु की भाँति वंदनीय है। यदि लिंग को वंदन होता तो हर पुरुष वंदनीय होता जबकि वंदना अहिंसा आदि पंच महाव्रतों को की जाती है और जिसने भी इन महाव्रतों को धारण किया है, वह पुरुष हो या स्त्री, निश्चित रूप से वंदनीय, पूजनीय है।



सुपात्रदान की विधि

प्र.454. भोजन करने से पूर्व क्या चिन्तन करना चाहिये?

उ. 'काश! मेरे पुण्योदय का प्रकाश फैले और कोई पंचमहाव्रतधारी, निःस्पृह, अनासक्त योगीराज/मुनिराज मेरे गृहौगण में पधारे और उन्हें वोहराकर मैं भोजन ग्रहण करूँ। इन भावनाओं से हृदय को ओत-प्रोत करके मुख्य द्वार पर खड़े होकर अथवा भोजन-घट्ट पर बैठे-बैठे ही त्यागी निर्ग्रन्थ के आगमन का दो-पाँच मिनट तक इन्तजार करना चाहिये।

प्र.455. गोचरी वोहराने की विधि समझाईए।

उ. (1) गुरुवर के दर्शन होने पर अथवा धर्मलाभ सुनाई देने पर अन्य सारे कार्य छोड़कर विनयादि आचरण हेतु सम्मुख जाये और करबद्ध होकर विनती करें-पधारिये! लाभ दीजिये। तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक गोचरी वोहरानी चाहिये।
(2) कदाचित् श्रावक घर में न हो तो 'धर्मलाभ' शब्द सुनकर महिलावर्ग मौनपूर्वक अथवा शिष्टाचार पूर्वक विनती करें और सुपात्र-दान का

महान् लाभ संप्राप्त करें।

(3) शास्त्रों में एक कर्तव्य यह भी है कि भोजन का समय होने पर श्रावक गृह-द्वार पर खड़े रहकर मुनिवर का इन्तजार करें। उनके दर्शन होने पर सादर-सश्रद्धा सुपात्र दान की भावना प्रकट करें। मुनिवर सकारण न आ पाये तो न अत्याग्रह करें, न उन पर रुष्ट होवे।

(4) गोचरी वोहराने के लिये सर्वप्रथम बाजोट-चोकी आदि रखें। उस पर जब गुरुवर पातरे रखे तब उनके पातरों को नमस्कार करके क्षणार्ध चिन्तन करें कि कब मैं साधु बनकर घर-घर जाकर शुद्ध, प्रासुक एवं कल्पनीय आहारपूर्वक संयम-यात्रा में आगे बढ़ूँगा।

(5) छोटे-बड़े, सभी को वोहराना चाहिये। उस समय जल का नल, टी.वी., लाईट, पंखा चालू अथवा बंद न करें।

(6) कच्चे पानी, सचित फलादि का संघट्टा (स्पर्श) न हो, वोहराते

समय चीज नीचे न गिरे, पात्र उससे लिप्त न हो, इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये।

(7) चप्पल, जूते पहनकर वोहराना अविधि एवं आशातना है

(8) ढक्कन हटाकर एक-एक वस्तु की विनती करें कि 'लीजिये, लाभ दीजिये।'

(9) घर का मुख्य द्वार ऑटोमेटिक बंद होने वाला नहीं होना चाहिये। यदि कुत्ते आदि के कारण जाली वाला द्वार लगाना अनिवार्य हो तो वह द्वार ऐसा हो कि बाहर से भी खुल सके। ऐसे द्वार को खोलकर मुनिवर कल्पनीय/प्रासुकआहार गवेषणार्थ आसानी से अन्दर प्रविष्ट हो सकते हैं।

यदि स्थिति अनुकूल हो तो गोचरी के समय घर के द्वार खुले रखे, इन्तजार करें क्योंकि साधु घंटी बजा नहीं सकते। कई बार द्वार से वापस लौट जाते हैं और आप सुपात्र दान के महान् लाभ से वंचित रह जाते हैं।

(10) यह ध्यान देने योग्य है कि गृह-द्वार बंद होने पर मुनि के साथ आया श्रावक घंटी न बजाये।

(11) सारी वस्तुएँ याद करके वोहरानी

चाहिये तथा दवारूप सोंट, अजवायन आदि, वस्त्र, लेखन-सामग्री आदि की भी विनती करनी चाहिये।

(12) छोटे, बड़े, पदस्थ, अपदस्थ एवं गच्छ-सम्प्रदाय का भेद किये बिना यथाशक्ति, हर्षोल्लास एवं श्रद्धा में क्रमशः वृद्धि करते हुए निःस्वार्थ भाव से वोहराना चाहिये।

(13) जब गुरुवर वोहरकर प्रत्यावर्तित हो, तब दरवाजे तक पहुँचाने जाना चाहिये तथा 'पुनः लाभ दीजियेगा।' यह प्रार्थना करनी चाहिये।

(14) कदाच गोचरी के लिये घर बताने के लिये जाना पड़े तो सेवक, नौकर को न भेजकर श्रावक को स्वयं जाना चाहिये।

प्र.456. मुनि भगवंत आयुष्यमान् भव, पुत्रवान् भव, धनवान् भव आदि न बोलकर 'धर्मलाभ' का ही आशीर्वाद क्यों देते हैं?

उ. आयु न घट सकती है, न बढ़ सकती है, अतः आयुष्यमान् भव नहीं कहते। पुत्र, परिवार, सत्ता, सौन्दर्य अन्ततः दुःख के कारण है, अतः मुनिवर भवसागर में नौका के समान तिराने

वाले धर्मलाभ का ही आशीष देते हैं।

प्र.457. गोचरी वोहराने में क्या-क्या सावधानियाँ रखनी चाहिये?

उ. पुण्योदय का योग होने पर मुनि भगवन्तों के चरणों से घर पवित्र होता है पर कहीं ऐसा न हो कि शुद्ध, प्रासुक आहार तैयार भी हो और वोहराने का लाभ भी न मिले, इस हेतु निम्नोक्त सावधानियाँ रखनी चाहिये—

(1) साधु के निमित्त आहार तैयार न करें, परन्तु घर में जो स्वयं के लिये बना है, उसे ही अर्पण करें।

(2) जिनाज्ञानुसार रात्रि भोजन का त्याग अवश्य करें ताकि राम को निःस्वार्थ श्रमणवर्ग के आने पर आहार—दान संभव हो सके।

(3) यदि गर्म (उबला) हुआ पानी पीना संभव हो तो पीना चाहिये। इससे एक तरफ जिनाज्ञा का पालन होगा, दूसरी तरफ साधु—संतों को शुद्ध जल प्राप्त होगा, तीसरा लाभ यह है कि स्वास्थ्य स्वस्थ रहेगा।

(4) फाल्गुन चौमासे के अलावा पत्ते की सब्जी, गोभी, धनिया एवं सूखे मेवे आदि का उपयोग करेंगे तो मुनियों के ये त्याज्य होने से आप सुपात्र दान के दिव्य लाभ से वंचित हो सकते हैं, अतः इसमें भी

विवेक रखने की आवश्यकता है।

(5) नित्य उपयोगी यथा खाखरा आदि के पात्र, जहाँ सचित्त का स्पर्श न हो, वहाँ रखने चाहिये।

(6) दूध, दही, आम रस, छाछ आदि सामग्री फ्रीज में न रखे, अन्यथा आप वोहराने का लाभ प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

(7) उल्लास और श्रद्धा से वोहरावे पर अत्यधिक आग्रह करके न वोहरावें।

(8) वोहराते समय हाथ चिकने हो जाये अथवा पदार्थ से लिप्त हो जाये तो कच्चे पानी से, बेसिन में न धोकर रसोईघर के कपडे से पौछ लेने चाहिये अन्यथा साधु एवं श्रावक, दोनों को दोष लगता है।

(9) मुनिराज के आने पर सचित्त वस्तु से संघट्टा वाले व्यक्ति अन्य से दूर रहे अन्यथा वे भी वोहराने के लाभ से वंचित हो जायेंगे।

(10) वोहराते समय अद्रव—ठोस (Solid) पदार्थ पहले एवं द्रवशील पदार्थ अन्त में वोहराये।

(11) संयमी साधुओं की यह समाचारी है कि वे एक गृहस्थ के घर से अतिमात्रा में आहार स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि बाद में पुनः आरम्भ—समारम्भ की संभावना

क्योंकि मैं ही तो कमाता हूँ।
कमाना अलग बात है और अपने
हाथों से उसका सदुपयोग करना
नितान्त दूसरी बात है।

(19) घर के महाराज, रसोइये एवं
नौकर—चाकर से कहना कि तुम
ही वोहरा दिया करो। यह उस
स्थिति में ठीक है, जब घर में
कोई भी सदस्य न हो। जब भी
मुनि आये तब आप यदि घर में हैं
तो स्वयं ही बढते—घढते परिणामों
के साथ वोहराने का लाभ प्राप्त
करना चाहिये। स्वयं के हाथों से
वोहराने में जो आनंद मिश्रित
बहुमान का भाव आसकता है,
वह भृत्यवर्ग के वोहराने में कहाँ?

(20) साधु के निमित्त कोई पदार्थ
निर्मित न करे। वह लाभ का
नहीं, अपितु स्व—पर अहित का
मार्ग है परन्तु ग्लान, वृद्ध आदि
के लिये बनाना जिनाज्ञापूर्वक
उभयहित का मार्ग है क्योंकि वह
संयमी को साधुता एवं समाधि में
स्थिर करता है।

(21) गैस के दो चुल्हों में से एक चुल्हा
जल रहा हो, तब भी मुनिवर बंद
चुल्हे पर रहा हुआ आहार ग्रहण
नहीं करते हैं अतः उसके विवेक

की आवश्यकता रहती है।

(22) जिस समय मुनिवर आहार
गवेषणार्थ पधार रहे हो अथवा
आते हुए देखा हो अथवा
'धर्मलाभ' शब्द सुनाई दिया हो,
तब श्रावक श्रद्धामिश्रितभावुकता
से घर की सफाई करने लगते हैं,
बिजली बंद अथवा चालू कर देते
हैं, बीच में पड़े सचित्त पदार्थ
युक्त बर्तन अथवा पानी की
बाल्टी, सब्जी, फल, अनाज
आदि एक तरफ करने लगते हैं,
ऐसे अनेक कार्य कर बैठते हैं, जो
अकरणीय हैं।

मुनिराज आ रहे हैं तो सहजता
से आने दे, अविधि से श्रद्धा को
मलिन न करें। वे अपनी
समाचारी और मर्यादा के कवच
में आयेंगे और जो कुछ शुद्ध,
प्रासुक, ऐषणीय, कल्पनीय होगा,
ग्रहण कर लेंगे।

उनके निमित्त किसी प्रकार का
स्वच्छता—सूचक संकेत न करें।

(23) गुरुवर के आने का किसी प्रकार
का संकेत मिलने पर उनके
निमित्त फल सुधारना, पापड
सेकना, रोटी उतारना, ताले में
पडी चीज निकालना आदि

उपक्रम न करें। अशुद्ध मूल्यवान् पदार्थ की बजाय निर्दोष-विशुद्ध सामान्य पदार्थ प्रदान करना श्रेयस्कर एवं सुखकर कहा गया है।

(24) कभी भी उनके साथ मृषावाद (असत्य) का प्रयोग न करें। सुपात्र दान के पावन लक्ष्य से यदि उनके निमित्त सामग्री बनाकर भी पूछने पर कहना—‘महाराज साहब! ये हमारे लिये बनाया है, हम भी खाते हैं’ ऐसे वाक्यों का प्रयोग करके मोक्ष-साधना रूप गोचरी को दोषपूर्ण न बनावें। यह प्रक्रिया कर्म-परम्परा में अभिवृद्धि करती है।

(25) कभी प्रशस्तरागवश यह कहना—गुरुदेव! गर्मी अत्यधिक है, अतः मैं उपाश्रय में ही टिफ़ीन में सामग्री ले आता हूँ, आप कष्ट मत उठाइये।’ ऐसे अनर्थकारी वाक्यों से श्रावक स्व-आचार से तो पतित होता ही है, श्रमण को भी उनके आचार से भ्रष्ट करता है, परिणामतः दोनों दुर्गति के भागी होते हैं।

(26) जिसके हाथ-पाँव प्रकम्पित होते हैं अथवा जिन्हें कम दिखाई देता

है, ऐसे बाल अथवा वृद्ध से या ज्वर पीड़ित, कुष्ठी, अपंग, अन्तिम मास वाली सगर्भा और स्तनपान कराती स्त्री के हाथ से आहार लेना निषिद्ध है।

(27) बर्तन मांजते, भोजन पकाते, कपडा धोते, अनाज बीनते, सब्जी संवारते आदि व्यक्ति (पुरुष अथवा महिला) के हाथ से आहार लेना निषिद्ध है। वे जिस वस्तु को स्पर्श करते हैं, वह भी अकल्प्य हो जाती है एवं उनका जिनको स्पर्श हो जाता है, वे व्यक्ति भी नहीं वोहरा सकते हैं।

(28) आहार वोहराते समय यथासम्भव उसी पात्र से लेकर वोहराना चाहिये। अन्य कटोरे आदि में लेकर यदि वोहराना पड़े तो साधु व श्रावक, दोनों को दोष न लगे अतः निजी उपयोग करने के पश्चात् ही श्रावक उसका प्रक्षालन करें।

(29) चम्मच अथवा बर्तन में रखी हुई वस्तु को पात्र के समीप ले जाकर वोहरावे ताकि पात्र लिप्त न हो।

(30) चॉकलेट, बाजार के नमकीन-मिष्ठान्न आदि अभक्ष्य पदार्थ

खीना एवं वोहराना, इन दोनों बातों का निषेध करें।

(31) भोजन आदि तैयार न हो तो ऐसा न कहे कि महाराजश्री! अभी योग नहीं है। अपितु बन्दना पूर्वक उनका सत्कार करें और घृत, शक्कर, खाखरा, नमकीन आदि जो कुछ प्रासुक सामग्री उपलब्ध हो, उसका निवेदन करें।

(32) कदाचित् गाँव में कम घर हो और विशाल श्रमण मण्डल पधार जाये तो कर्तव्यनिष्ठ श्रावक भिक्षार्थ पधारे मुनिराज के साथ पटेल, चौधरी, पुरोहित, माली आदि शाकाहारी अजैनों के घर जाकर आहार का निवेदन करें।

(33) सुपात्रदान के समय व्यक्ति को भाव जगत के प्रति सर्वथा सचेत रहना होता है। 'ये महाराज मेरे सम्बन्धी है अथवा गाँव के हैं अथवा मित्र है, इसलिये अच्छी तरह से इनको वोहराऊँ' ऐसे विचार जब कभी मानस-कक्ष में प्रविष्ट हो तो तुरन्त उनसे निवृत्त हो जाये। इसकी बजाय ऐसा सोचे कि त्यागी-विरागी मुनिवर ज्ञान-ध्यान की बुहारी से

राग-द्वेष के कचरे को बुहारने में प्रयत्नशील है अतः इनकी निरवद्य जीवन चर्या में अनुकूल आहार प्रदान करके अपना भाग्य जगाऊँ।

(34) मंत्र-तन्त्र, सांसारिक-मुहूर्त, व्यापार आदि भौतिक लाभ हेतु रास्ता दिखायेंगे, अतः इनकी अधिकाधिक सेवा-सुश्रुषा करूँ, इन भावों से मुक्ति/परमार्थ की यह प्रक्रिया स्वार्थ का पोषण, संसार का विस्तार और कर्मों का बंधन करवाती है।

प्र.458. शास्त्रों में कितने प्रकार के पात्र कहे गये हैं?

उ. तीन पात्र - (1) सुपात्र (2) पात्र (3) अनुकंपादि पात्र।

प्र.459. इन तीनों भेदों को स्पष्ट कीजिये।

उ. 1. तीर्थंकर, केवली, मुनिराज को सुपात्र कहा गया है।
2. श्रावक-श्राविका, स्वधर्मी और सद्गृहस्थ पात्र कहलाते हैं।
3. अपंग, गरीब आदि करुणापात्र अनुकंपादि पात्र कहलाते हैं।

प्र.460. क्या अपात्र को दान देने से लाभ होता है?

उ. सुपात्र, पात्र और अनुकम्पा पात्र को दान में उत्तरोत्तर अल्प पुण्य का बन्ध

होता है परन्तु जो अपात्र है, वह हमारे गृहोंगन में आ जाये तो उसे तिरस्कृत व अपमानित नहीं करना चाहिये। यदि दुत्कार, धिक्कार और अपमान—जनक शब्द बोलते हैं तो कर्म बन्धन होता है। निषेध करने पर धर्म की निन्दा होगी, इस हेतु दान दिया जाये तो पुण्य होता है परन्तु उसमें परमार्थ अथवा पात्र—सुपात्र दान की बुद्धि नहीं रखनी चाहिये।

प्र.461. महाराजश्री! दान की प्रक्रिया समान होने पर भी तीर्थकर, केवली, मुनि, श्रावक, अपंग और अपात्रादि में कम—ज्यादा पुण्य बंध के कथन से क्या पक्षपात की आपत्ति नहीं होगी?

उ. नहीं! यह स्पष्ट है कि पात्रता का धरातल बदलते ही परिणाम भी बदल जाता है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि स्वाति नक्षत्र के योग में वर्षा की बूंद यदि सीप के मुख में प्रविष्ट होती है तो मोती बन जाती है, सागर में गिरकर खारी, कीचड़ में गंदी ओर सर्प के मुख में जाकर विष रूप बन जाती है अतः काल सम्बन्धी साम्यता होने पर भी आधार बदलते ही परिणाम में दिन—रात का अन्तर देखा जाता है उसी प्रकार तीर्थकर आदि के दान—

परिणाम में परिवर्तन आने में पक्षपात की बुद्धि नहीं अपितु पात्रता के धरातल की पवित्रता एवं योग्यता का परिणाम है।

प्र.462. शास्त्राकारों ने योग्यता की न्यूनाधिकता के आधार पर किस प्रकार की उपमा दी है?

- उ. 1. अरिहन्त परमात्मा — रत्न पात्र के समान।
 2. मुनि भगवन्त — स्वर्ण पात्र के समान।
 3. व्रतधारी श्रावक — रजत पात्र के समान।
 4. सम्यक्दृष्टि — ताम्र पात्र के समान।
 5. अपात्र — लौह पात्र के समान।

प्र.463. दान के दूषण एवं भूषण कौनसे हैं?

- उ. 1. मुँह बिगाड़कर, अश्रद्धा, अनादर एवं विलम्ब से देना, देने के बाद पश्चात्ताप करना, ये दान को दूषित करते हैं।
 2. प्रिय वचन उच्चारण एवं बहुमानपूर्वक देना, देते समय रोम—रोम का उल्लास से भर जाना, आंखों में हर्ष के आँसू आना एवं देने के बाद पुनः पुनः सुपात्र दान की अनुमोदना करना, ये दान के भूषण हैं।

श्रावक जीवन की साधना

प्र. 464. श्रावक किसे कहते हैं?

- उ. (i) श्रा अर्थात् जिनोक्त तत्त्व का श्रवण कर श्रद्धा करना।
 (ii) व अर्थात् विवेक, हिताहित का ज्ञान प्राप्त करना।
 (iii) क अर्थात् जिनाज्ञानुसार क्रिया करना।

शास्त्रों में श्रावक को श्रमणोपासक कहा गया है श्रमणोपासक अर्थात् जो श्रमण की उपासना, सेवा करता है एवं आज्ञा को धारण करता है।

प्र. 465. श्रावक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

- उ. दो प्रकार के— (1) व्रती श्रावक— जो एक यावत् बारह व्रत ग्रहण करता है, जैसे—आनंद, कामदेवादि श्रावक।
 (2) दर्शनी श्रावक— जो व्रत धारण करने में असमर्थ होते हुए भी जिन—प्रवचन में परिपूर्ण श्रद्धा से युक्त होते हैं, जैसे—वासुदेव श्रीकृष्ण, सत्यकि विद्याधर, श्रेणिक सम्राट् आदि।

प्र. 466. बारह व्रतों की संक्षिप्त जानकारी दीजिये।

- उ. (1) स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत (अहिंसा)— निरपराधी जीव की एवं

द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा न करना।

(2) स्थूल मृषावाद विरमण व्रत (सत्य)— किसी के प्राण चले जाये, नुकसान हो जाये, ऐसा बड़ा झूठ नहीं बोलना।

(3) स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत (अचौर्य)— बड़ी चोरी नहीं करना।

(4) स्थूल मैथुन विरमण व्रत (ब्रह्मचर्य)— अपनी पत्नी (पति) में संतोष करना। परस्त्री—परपुरुषगमन का त्याग करना।

(5) स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत (अपरिग्रह)— सोना—चांदी, दुकान—मकान, हाथी—घोड़ा, दास—दासी आदि का परिमाण निर्धारित करना।

(6) दिक् परिमाण व्रत— उर्ध्व अधो, उत्तर आदि दिशाओं में आने—जाने की सीमा का निर्धारण करना।

(7) भोगोपभोग परिमाण व्रत— खाने—पीने की भोग तथा वस्त्र, गाड़ी आदि उपभोग की वस्तुओं की सीमा निश्चित करना। चौदह नियम धारण करना।

(8) अनर्थ दण्ड विरमण व्रत— जिस



क्रिया से कोई लाभ नहीं होता, पर आत्मा पाप—फल की सजा प्राप्त करती है जैसे—चलते—चलते पत्ता तोड़ दिया, पशु पर प्रहार कर दिया आदि। इनका त्याग करना। इसके लिये किसी पापकारी चीज की प्रशंसा — अनुमोदना नहीं करनी चाहिये।

व्यक्ति किसी मकान के आगे से गुजरता है और प्रशंसा कर बैठता है। इससे मकान तो नहीं मिलता, परन्तु नरक अथवा गाय—बैल—कुत्ते आदि तिर्यच का भव जरूर मिल जाता है।

(9) सामायिक व्रत— न्यूनतम अड़तालीस मिनट तक समस्त पाप क्रियाओं का त्याग करके समता की साधना करना।

(10) देशावगासिक व्रत— स्थानभर्यादा— पूर्वक तीन से पन्द्रह सामायिक लेना।

(11) पौषधोपवास व्रत— एक दिन, एक रात अथवा एक रात— दिन उपवास सहित साधुवत् जीवन जीना।

(12) अतिथिसंविभाग व्रत— उपवास के पारणे के दिन एकासना करके साधु को दोष रहित आहार देना।

इनमें प्रथम पाँच अणुव्रत, बाद के तीन गुणव्रत, शेष चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं।

प्र.467. बिना उपवास के पौषधव्रत करने की जिनाज्ञा है अथवा नहीं?

उ. सच तो यह है कि इस व्रत का नाम पौषधोपवास व्रत है। इस नाम से ही स्पष्ट है कि यह व्रत उपवास सहित ही होता है।

प्र. 468. परन्तु महाराजश्री! बाल, वृद्धादि उपवास नहीं कर पाते हैं तो उन्हें भी लाभ मिले, इस हेतु से एकासन, आयम्बिल करवाया जा सकता है?

उ. बिल्कुल नहीं! इसमें जिनाज्ञा विराधना का महान् पाप है। यदि कोई कहे कि मुझे प्रतिदिन एक कप चाय मिल जाये तो मैं मासक्षमण कर सकता हूँ तो क्या ऐसा करवाना उचित होगा? लाभ जिनाज्ञा पालन में है, अति की कल्पना में उल्लंघन है। बालकों की पुनः पुनः सामायिक व्रत के द्वारा भी आराधना संभव है।

प्र.469. तो फिर आपके गच्छ में उपधान तप की आराधना में पौषध में एकासना कैसे करवाया जाता है?

उ. यह समाचारी सभी गच्छों के आचार्यों ने मिलकर बनायी है अतः अपवाद मार्ग से आचरणीय है।

प्र.470. श्रावक के तीन मनोरथ कौनसे हैं?

उ. (1) आरंभ तथा परिग्रह का त्याग करना।

(2)साधु बनना ।

(3)पण्डित मरण प्राप्त करना ।

प्र.471. श्रावक के तीन अलंकार कौनसे हैं?

उ. अलंकार यानि जिससे शोभा होती है ।

(1)आवृत्तिमय— जिसे बार-बार किया जाये । इसके तीन प्रकार हैं—

(1) सुपात्र दान (2) श्रुतज्ञान
(3) तप ।

(2)निवृत्तिमय— जिससे पाप से निवृत्ति (दूरी) हो । इसके तीन प्रकार हैं—

(1) सामायिक (2) प्रतिक्रमण
(3) पौषध ।

(3)प्रवृत्तिमय— जिसमें क्रिया मुख्य हो ।

प्र.472. श्रावक के प्रतिदिन करने योग्य कर्तव्य कितने हैं?

उ. छह— (1) प्रभु-पूजा (2) गुरु-सेवा
(3) अनुकंपा (4) सुपात्र दान
(5) गुणानुराग (6) आगमश्रवण ।

प्र.473. श्रावक के नौ रात्रिक कर्तव्य कौनसे हैं?

उ. (1)धर्म जागरण (2) सुकृत की अनुमोदना (3) दुष्कृत की निंदा (4) प्रतिक्रमण (5) चार शरण का स्वीकार (6) अल्प निद्रा (7) आत्म-चिंतन (8) दीक्षा मनोरथ सेवन (9) सागारी अनशन ।

प्र.474. पर्व तिथि में श्रावक के कर्तव्य कौनसे हैं?

उ. (1) पौषध (2) उपवास (3) दान
(4) शील (5) तप (6) भाव (7) अहिंसा-पालन (8) जयणा (9) शासन प्रभावना ।

प्र.475. श्रावक को पर्युषण पर्व में क्या करना चाहिये?

उ. (1) अमारि प्रवर्तन (अहिंसा) ।
(2) साधार्मिक वात्सल्य ।
(3) परस्पर क्षमापना ।
(4) अट्ठम तप ।
(5) चैत्यपरिपाटी ।

प्र.476. चातुर्मासिक कर्तव्यों की जानकारी दीजिये ।

उ. (1) विविध नियम धारण करना ।
(2) देसावगासिक (3) अतिथि संविभाग
(4) सामायिक (5) विविध तप
(6) नूतन अध्ययन (7) स्वाध्याय
(8) जयणा ।

प्र.477. श्रावक कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. चार प्रकार के—

(1) माता-पिता के समान — साधु-साध्वी रूप सन्तान का हितबुद्धि से संरक्षण-संवर्द्धन करने वाले ।
(2) भाई के समान — विपत्ति आने पर सहायक बनने वाले ।
(3) मित्र के समान — श्रमणवर्ग को

उपकारी जानकर प्रत्युपकार करने वाले।

(4) सौतन के समान – मिथ्या दोषारोपण करने वाले।

प्र.478. जिनशासन में विशिष्ट श्रावक कौन-कौन हुए?

- उ. (1) उपासकदशांग सूत्र में परमात्मा के आनंद, कामदेव इत्यादि उन दस श्रावकों का वर्णन है, जिन्होंने जीवन में प्रभु के श्रीमुख से बारह व्रत स्वीकार कर ग्यारह प्रतिमाओं की उत्कृष्ट आराधना की एवं अन्तिम समय में एक मास की संलेखणा कर एकावतारी देव बने।
- (2) वासुदेव श्रीकृष्ण नेमिनाथ प्रभु के प्रमुख श्रावक थे। उनकी प्रेरणा से अनेक संयमी बने। वे अपनी हर पुत्री को कहते-रानी बनना हो तो संयम लो, दासी बनना हो तो शादी करो।
- (3) श्रेणिक सम्राट भी परमात्मा महावीर के अत्यन्त श्रद्धाशील श्रावक थे। अन्तिम संस्कार के समय उनकी चिता में वीर-वीर की ध्वनि निकली।
- (4) पूणिया श्रावक की सामायिक की प्रशंसा स्वयं वीर प्रभु ने की एवं

सुलसा सती को धर्मलाभ कहलवाया। विजय सेठ-विजया सेठानी की भीष्म प्रतिज्ञा सर्वत्र प्रसिद्ध है। जीरण सेठ चौमासे में प्रतिदिन प्रभु से आहार की विनंती करने जाते थे।

जयन्ती श्राविका की धर्म-चर्चा भगवती सूत्र में वर्णित है।

- (5) सम्प्रति सम्राट का जिनवाणी के प्रचार – प्रसार में महान् योगदान रहा। उन्होंने सवा लाख जिन मंदिरों का निर्माण करवाया। सवा करोड़ जिन प्रतिमाएँ भरवायी।
- (6) जीवदया प्रेमी कुमारपाल महाराजा जिन शासन के परमानुरागी श्रावक थे, उन्होंने अनेक ग्रंथों का लेखन करवाया।
- (7) धरणाशाह ने राणकपुर का मंदिर बनवाया।
- (8) महाकवि धनपाल, वस्तुपाल, तेजपाल, देदाशाह, जावड़शाह, जगड़शाह, पथडशाह, झांझणशाह, थाहरुशाह भणशाली, कर्मचन्द्र बच्छावत, मोतीशा नाहटा आदि अनेक श्रद्धानिष्ठ, क्रियावान् एवं दानी श्रावकों ने शासन की महती प्रभावना की।



धर्म के चार प्रकार

प्र.479. धर्म के चार प्रकार कौनसे हैं?

उ. (1) दान (2) शील (3) तप (4) भावना।

प्र.480. दान कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. (1) **अभयदान**—समस्त दानों में अभयदान श्रेष्ठ है। अभयदान से पाँचों दानों का लाभ मिल जाता है। विपत्ति—ग्रस्त व्यक्ति की सहायता करना, समस्त जीवों पर करुणा भाव रखना, किसी भी जीव को सताना अथवा मारना नहीं, यह अभयदान है। अभयदान से धर्म रुचि अणुगार एकावतारी देव बने, मेघरथ राजा अभयदान से भगवान् शान्तिनाथ बने।

(2) **सुपात्रदान**— गुणयुक्त साधु—साध्वी भगवन्तों को शुद्ध वस्त्र, पात्र, आहार आदि प्रदान करना। आदिनाथ व महावीर प्रभु सुपात्रदान से सम्यक्त्वी बने। संगम ग्वाला उलट भाव से आहार प्रदान करके शालिभद्र बना।

(3) **अनुकंपा दान**— गरीब, दीन—हीन, असहाय की यथाशक्ति सहायता करना। जैसे जगद्गुरु ने दुष्काल में भूखे लोगों के लिये

अन्न दान किया।

(4) **कीर्तिदान**— शासन के उत्कर्ष हेतु जनकल्याण में धनादि देना। जिनशासन की कीर्ति के लिये पूर्वजों की स्मृति में अथवा स्वयं की प्रतिष्ठा के लिए अस्पताल, विद्यालय आदि बनवाना।

यद्यपि दान में कीर्ति की भावना होती है तथापि समाज को लाभ होने के कारण इसे दान कहा गया है।

भूमिदान, रक्तदान, नेत्रदान आदि अनेक दान प्रचलित हैं। दान में यश की कामना न रखकर परोपकार एवं सहयोग की ही भावना रखनी चाहिये क्योंकि हर प्राणी मेरा बंधु और आत्मीय है। जो व्यक्ति इस तन—मन—धन को जनकल्याण, आत्मकल्याण एवं सम्यक् ज्ञान के प्रचार—प्रसार में लगाते हैं, वे इतिहास के पन्नों पर अमर हो जाते हैं।

(5) **उचित दान**— परिस्थिति के अनुसार दान देना। जैसे भूखे को रोटी देना, विद्यार्थी को पुस्तक

आदि देना, रोगी को दवाई देना। राष्ट्र एवं समाज के हित में समय के अनुरूप धन, शक्ति, बुद्धि आदि का नियोजन करना उचित दान कहलाता है।

प्र.481. शील से क्या अभिप्राय है?

उ. अब्रह्म का सर्वथा त्याग करना अथवा परनारी (पर पुरुष) का त्याग करना। पर्वों में संवत्सरी की भाँति व्रतों/महाव्रतों में शील की महिमा प्रभु महावीर ने फरमायी है। आगमों में ब्रह्मचर्य को भगवत्स्वरूप कहते हुए तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, विनय एवं सम्यक्त्व का मूल बताया गया है। अनिच्छा से ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला चक्रवर्ती का हाथी भी अष्टम देवलोक तक पहुँच जाता है शील के प्रभाव से सुभद्रा सती ने चंपानगरी के द्वार खोले, सीता का अग्निकुण्ड जलकुण्ड में परिवर्तित हुआ, विजयसेठ एवं विजया सेठानी के शील की महिमा विमल नामक केवलज्ञानी प्रभु ने गायी, सेठ सुदर्शन का त्रिलोक में यशोगान हुआ तथा पेथडशाह के कम्बल में रोग-विनाशक शक्ति उत्पन्न हुई। वर्तमान में सुप्रसिद्ध श्रावक प्राणी मित्र श्री कुमारपाल भाई वी. शाह (धोलका) के

आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा करते ही जीवन-लीला का अन्त करने वाला तूफान कुछ पलों में ही शांत हो गया।

बारह प्रकार के तप का विवेचन अलग से किया गया है।

प्र.482. भावना किसे कहते हैं?

उ. चित्त की स्थिरता के लिये किसी तत्त्व पर बार बार चिन्तन करना भावना है। भावना का सामान्य अर्थ तो शुभ-अशुभ विचार होते हैं परन्तु धर्म के सन्दर्भ में भावना का अर्थ मोक्षमार्ग का चिन्तन, धर्म में अभिवृद्धि एवं कषायों को निष्कासित करने वाले निर्मल आध्यात्मिक अध्यवसाय/परिणाम किया गया है। इसका दूसरा नाम अनुप्रेक्षा भी है।

प्र.483. भावना कितने प्रकार की कही गयी हैं?

उ. निम्नोक्त बारह निर्मल भावनाओं से चित्त को प्रभावित करने वाला परम-पद को प्राप्त करता है।

(1)अनित्य भावना— भरत चक्री की भाँति पदार्थ, शरीर आदि की अनित्यता का चिन्तन करना।

(2)अशरण भावना— अनाथी मुनि की भाँति संसार में अरिहंत, सिद्ध, साधु एवं केवली प्ररुपित धर्म के



सिवाय कोई भी शरणभूत नहीं है, इस प्रकार का चिन्तन करना।

(3) **संसार भावना**— मल्लिनाथ की भाँति संसार की असारता का चिन्तन करना।

(4) **एकत्व भावना**— नमि राजर्षि की भाँति 'मैं एकाकी ही जन्मा तथा एकाकी ही मरूंगा', यह चिन्तन करना।

(5) **अन्यत्व भावना**— सुकोशल मुनि की भाँति 'मैं शुद्ध परमात्म स्वरूप हूँ ज्ञानादि गुणों के अतिरिक्त पुत्र—मित्र—कलत्र, सभी पराये हैं, यह चिन्तन करना।

(6) **अशुचि भावना**— सनत्कुमार चक्रवर्ती की भाँति 'यह नश्वर शरीर रोगों का एवं मल, मूत्र आदि अशुद्ध पदार्थों का घर है।' ऐसा चिन्तन करना।

(7) **आश्रव भावना**— समुद्रपाल की भाँति 'हिंसा आदि आश्रव जन्म—मरण की परम्परा को बढ़ाने वाले हैं।' ऐसा चिन्तन करना।

(8) **संवर भावना**— मेतारज मुनि की भाँति आत्मा का संवरण करना एवं मिथ्यात्व, कषाय, अविरति, प्रमाद और योग को रोकने का प्रयास करना।

(9) **निर्जरा भावना**— अर्जुनमाली की भाँति 'कृतकर्मों का सर्वथा क्षय किये बिना दुःख से मुक्ति नहीं मिलती है', ऐसा चिन्तन करना।

(10) **धर्म भावना**— दान आदि धर्म का पुनः पुनः चिन्तन करना एवं धर्मरूचि अणगार की भाँति धर्म—रक्षा के लिये प्राणों का त्याग करना।

(11) **लोकभावना**— शिवराज ऋषि की भाँति लोक स्वरूप का चिन्तन करते हुए वैराग्यवासित बनना।

(12) **बोधि भावना**— ऋषभदेव के 98 पुत्रों की भाँति सम्यक्त्व की दुर्लभता का विचार करते हुए असार संसार का त्याग करके संयम धारण करना।

प्र.484. मैत्री आदि चार प्रकार की भावनाओं को समझाओ।

(1) **मैत्री भावना**— मैत्री भावना में विश्वबंधुत्व, शिवमस्तु सर्वजगतः एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की निःस्वार्थ भावनाओं का पावन संगीत है।

जीव मात्र के प्रति निर्मल मैत्री, स्नेह और आत्मीयता का भाव रखते हुए उसके कल्याण की

तप के बारह भेद

प्र.485. तप किसे कहते हैं?

उ. जिन उपायों से आत्म-शुद्धि एवं कर्म निर्जरा होती है, उसे तप कहते हैं। अग्नि का स्पर्श पाकर जिस प्रकार स्वर्ण पर लगा हुआ कचरा, मेल उतर जाता है और वह चमक उठता है, उसी प्रकार तपाग्नि से आत्मा पर विकार, विषय और वासना की जो गंदगी और अशुचि लगी हुई है, वह दूर हो जाती है और आत्मा स्वच्छ, निर्मल और बेदाग हो कुंदन की भाँति चमक उठती है।

आगम-सूत्र का फरमान है कि करोड़ों भवों के संचित कर्म तप से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, जिससे आत्मा के ज्ञानादि अमल-धवल गुणों का प्रकटीकरण होता है।

प्र.486. तप कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. दो प्रकार के— (1) बाह्य तप (2) आभ्यन्तर तप।

प्र.487. बाह्य तप कितने प्रकार का है?

उ. छह प्रकार का—

- (1) अनशन— उपवास आदि करना।
- (2) ऊणोदरी— भूख से कुछ कम खाना।

(3) वृत्ति संक्षेप— भोज्य पदार्थों का एवं उनके प्रति राग का संक्षेप करना।

(4) रस परित्याग— घी, तेल, दही, दूध का या उनसे निर्मित सरस वस्तुओं का यथासंभव त्याग करना।

(5) कायक्लेश— आतापना, लोच आदि का कष्ट सहन करना।

(6) संलीनता— मन, वचन, काया की प्रवृत्ति को संकुचित करना।

प्र.488. आभ्यन्तर तप कितने प्रकार का होता है?

उ. छह प्रकार का—(1) प्रायश्चित्त— जिस क्रिया से चित्त की शुद्धि हो।

(2) विनय— आचार्य, उपाध्याय आदि का विनय, सत्कार करना।

(3) वेयावच्च — आचार्य, उपाध्याय, शैक्षक, ग्लान, नवदीक्षित आदि की सेवा करना।

(4) स्वाध्याय— तत्त्व-ज्ञान आदि का स्मरण — पुनरावर्तन — चिन्तन एवं प्रवचन करना।

(5) ध्यान— आर्त्त-रौद्र ध्यान का त्याग करना। धर्म ध्यान एवं शुक्ल ध्यान ध्याना।

(6) कायोत्सर्ग— देहातीत होकर
आत्मा का ध्यान करना ।

प्र.489. स्वाध्याय कितने प्रकार का कहा
गया है?

उ. पांच प्रकार का —

- (1) वाचना— नया ज्ञान प्राप्त करना ।
- (2) पृच्छना— ज्ञान में शंका उपस्थित होने पर समाधान प्राप्त करना
- (3) परावर्तना— सीखे हुए सूत्र एवं अर्थ के ज्ञान को स्मृति में बनाये रखने के लिये पुनः पुनः दोहराना ।
- (4) अनुप्रेक्षा— ज्ञान का चिन्तन— मनन करना ।
- (5) धर्मकथा— जिनोक्त तत्त्व का उपदेश देना ।

प्र.490. तप में क्या-क्या सावधानी रखनी
चाहिये?

उ. तपश्चरण साधना का महत्वपूर्ण सोपान है। तप—साधना की उत्कृष्टता से ढंढण अणगार नेमिनाथ के अठारह हजार साधुओं में तथा धन्ना अणगार वर्धमान प्रभु के चौदह हजार साधुओं में प्रशंसा और अनुमोदना के पात्र बने तथा प्रभु ने स्वमुख से उनको सर्वोत्कृष्ट साधक बताया ।

तप में तीन को छोड़ना और चार की धारणा जरूरी है—

- (1) तीन त्याज्य— शयन करना, दूसरों की निंदा करना तथा जुआ, ताश,

टी.वी. आदि विकारवर्द्धक साधनों में समय का दुरुपयोग करना ।

(2) चार स्वीकार्य— स्वाध्याय, माला— जाप, जिनपूजा—भक्ति एवं सामायिक, प्रतिक्रमण, वैयावच्च इत्यादि ।

तप को समस्त धर्मों में मोक्ष प्राप्ति में प्रमुख साधन माना है। तप में न तो शक्ति का गोपन करना चाहिये, न उल्लंघन करना उचित है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि अपने बल, आरोग्य और श्रद्धा को देखकर एवं क्षेत्र व काल को पहचान कर यथाशक्ति अपनी आत्मा को तप आदि अनुत्तर अनुष्ठानों में संयोजित करना चाहिये ।

उत्तर तथा पश्चात् पारणे में गरीष्ठ, नमकीन, तले एवं अति—आहार से बचना चाहिये। रसना पर नियन्त्रण नहीं रखने से तप बिगड़ जाता है। पेट दर्द, वमन आदि होने पर तप की लोक में निंदा होती है और कदाच तपस्वी भी तप पर वह दोष मढ़ देता है, जो दोष पारणे में उसकी स्वयं की असावधानी से उत्पन्न हुआ है।

रात्रि शयन से पूर्व आत्म-चिंतन

प्र.491. शयन विधि को विस्तार से समझाईये।

- उ. 1. सूर्यास्त से एक प्रहर बाद सोना चाहिये।
2. वृद्ध के लिये चार घण्टे की, युवा के लिये छह घण्टे की एवं बालक के लिये आठ घण्टे नींद पर्याप्त होती है। नींद घटाने से घटती है एवं बढ़ाने से बढ़ती है इसलिये शास्त्रों में कहा गया है कि जिसकी नींद, कषाय, परिग्रह और आहार, ये चारों कम हैं, उसका भवभ्रमण कम ही रहा है, ऐसा जानना चाहिये।
3. मस्तक और पाँव की तरफ दीपक नहीं होना चाहिये एवं बिस्तर दीवार से एक या दो हाथ दूर होना चाहिये।
4. संध्या काल में और शय्या पर बैठे-बैठे नींद लेना अशुभ होता है।
5. हृदय पर हाथ रखकर, छत के पाट (बीम) के नीचे एवं पाँव पर पाँव घड़ाकर नहीं सोना चाहिये।
6. पाँव की ओर की शय्या ऊँची नहीं होनी चाहिये। इससे रक्त प्रवाह विपरीत दिशा में होने से बीमारियों

का कारण बनता है।

7. सोते-सोते तांबूल चबाना, पढ़ना अशुभ होता है।
8. ललाट पर तिलक रखकर नहीं सोना चाहिये।
9. सप्त-भय के निवारण के लिये सोते समय सात नवकार गिने।

प्र.492. शयन किस मुद्रा में करना चाहिये?

- उ. कहा जाता है—उल्टा सोये भोगी, सीधा सोये योगी, डाबा सोये निरोगी और जीमणा सोये रोगी। अतः स्वास्थ्य विज्ञान के अनुसार बायीं करवट सोना चाहिये। उल्टा सोने से नेत्र रोग होता है।

प्र.493. शयन करते समय किस दिशा में पाँव एवं मस्तक होना चाहिये?

- उ. शास्त्रकार कहते हैं— पूर्व दिशा में मस्तक रखकर सोने से विद्या—लाभ होता है, बुद्धि बढ़ती है। दक्षिण दिशा में मस्तक रखकर सोने से धन और स्वास्थ्य का लाभ होता है। पश्चिम दिशा में मस्तक रखकर सोने से चिंता बढ़ती है तथा उत्तर दिशा में मस्तक रखकर सोने से ज्ञान, बुद्धि, धन आदि की हानि एवं मृत्यु होती है। दक्षिण दिशा में दुष्ट देवों का वास कहा गया

है। रक्त संचार में अनियमितता, स्मृतिभ्रंश, असाध्य बीमारियों का कारण होने से दक्षिण दिशा की तरफ पाँव करके नहीं सोना चाहिये।

प्र.494. रात्रि शयन से पूर्व आत्म-चिन्तन किस प्रकार करें?

उ. शयन से पूर्व अरिहंत, सिद्ध, जिन धर्म एवं मुनि, इन चारों की शरण शुद्ध निष्ठा से स्वीकार करें।

**आहार शरीर उपधि, पचखूं पाप अठार।
मरण पामु तो वोसिरे, जीवू तो आगार।।**

अर्थात्— संसार वृद्धि के साधनों और अठारह प्रकार के पाप स्थानों का जागरण पर्यन्त त्याग करता हूँ चाहे मध्य में मृत्यु भी क्यों न आ जाये।

**खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मिक्खी मे सव्वभुएसू, वेरं मज्झ न केणइ।।**

मैंने मन-वचन-काया से जिन जीवों के प्रति अपराध, पाप किया है, उन्हें खमाता हूँ, वे सभी मुझे क्षमा करें। सभी जीवों से मेरी मैत्री है, किसी से भी मुझे वैर-विरोध नहीं है।

तत्पश्चात् चिन्तन करें कि आज मैंने करणीय क्या-क्या नहीं किया और अकरणीय क्या-क्या किया। करणीय (सामायिक, प्रतिक्रमण, सुपात्र दानादि) की बार-बार अनुमोदना करें तथा अकरणीय (हिंसा, झूठ, चोरी, अनीति, राग-द्वेष आदि) की पुनः पुनः निंदा-गर्हा करते हुए मिच्छामि

दुक्कडं देवें एवं गलती के अपुनरावर्तन का संकल्प करें।

इसी कडी में यह भी सोचे कि मैं उत्तम कुल-जाति एवं धर्म को प्राप्त हुआ हूँ अतः इस मनुष्य जीवन के स्वर्णिम अवसर का पूरा-पूरा उपयोग करना है।

शास्त्रकारों ने कहा है— 'दुल्लहे खलु माणुसे भवे।' निश्चय ही मनुष्य जन्म दुर्लभ है। अतः अधिकाधिक धर्म की आराधना करके मुझे एक/दो भवों में इस दुःखमय असार संसार से मुक्ति पा लेनी है।

मैं पुण्योदय से पंचेन्द्रिय बना हूँ। शक्ति और बुद्धि मुझे प्राप्त हुई है, तब भी ऐसा कौनसा धर्म-अनुष्ठान है, जो मैं कर सकता हूँ परन्तु प्रमादवश, अज्ञान और मोह के अधीन होकर नहीं कर रहा हूँ।

ऐसे कौनसे दोष हैं, जिनका सेवन करके मैं महान् कर्मों का उपार्जन कर रहा हूँ। अब मुझे अपने दोषों को देशनिकाला दे देना है।

प्र.495. सोते समय किस भगवान का जाप करें?

उ. दुष्ट-गंदे स्वप्नों के निवारण हेतु नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ का, सुख निद्रा हेतु चन्द्रप्रभु का, चोर आदि से अभय हेतु शान्तिनाथ का स्मरण/ जाप करें।

जैन आहार मीमांसा

1. कैसे करे भोजन ?
2. अभक्ष्य का भक्षण : बड़े जन्म-मरण
3. सप्त व्यसन : नरक का द्वार
4. द्विदल अर्थात् पापों का दल दल
5. रात्रि भोजन : दुर्गति का कारण
6. चलित रस का करें निषेध
7. अनन्तकाय का भोजन : अशाता का सर्जन
8. मजेदार (?) पदार्थों का परिहार
9. जितनी जयणा, उतनी शाता



कैसे करे भोजन ?

प्र.496. भोजन कैसे करें ?

उ. यद्यपि मैं एक त्यागी श्रमण हूँ अतः भोजन करने की विधि का कथन मेरे लिए जिनाज्ञा का उल्लंघन है, तथापि उसमें कम से कम दोष लगे, इस हेतु से विवेक एवं जयणायोग्य बिंदु पूर्वाचार्यों की आज्ञानुरूप कहता हूँ—

- (1) भोजन करने से पहले सोचे कि भव—भव से मैं खा रहा, पी रहा पर न कभी तृप्ति हुई, न हो सकती है। भोजन करने से नहीं, छोड़ने से तृप्ति व संतोष मिलता है। कितना अच्छा होता कि मैं आज तपश्चर्या करके आत्मा को ध्यान एवं ज्ञान की खुराक प्रदान करता।
- (2) हे प्रभो! मुझ पर इतनी कृपा करना कि मैं शीघ्रातिशीघ्र अणाहारी पद को प्राप्त करूँ।
- (3) भोजन करने से पूर्व तीन बार नवकार मंत्र का स्मरण करें।
- (4) पृथ्वीकाय यावत् वनस्पतिकाय के जीव हमारे जीवन—निर्वाह में उपयोगी बनते हैं। कृतज्ञ दृष्टि से उनके प्रति उपकृत भावों से हृदय को भावित करें कि तुमसे ही हमारा जीवन गतिमान है।

(5) भोजन के प्रति शुभ भावना से हृदय को भावित करें कि हे अन्न देवता! तुम मेरे लिये ज्ञान, ध्यान एवं स्वाध्यायवर्द्धक बनना। ऐसा रस एवं ग्रन्थियाँ स्रावित करना, जिससे राग—द्वेष का अंधकार दूर हो तथा मेरे जीवन में समता और संयम का प्रकाश फैले।

(6) भोजन करते समय क्रोध, राग व द्वेष के भाव न लाकर अममत्व भाव से भोजन करें। उससे वैराग्य, आरोग्य एवं सौभाग्यवर्द्धक रस स्रावित होते हैं।

(7) दक्षिण दिशा एवं विदिशा में मुख करके भोजन हेतु न बैठे।

(8) जीभ को वश में रखकर, अस्वादभाव से शारीरिक अनुकूलता—अनुसार भोजन करें। चटपटे, तीखे, मसालेदार, खट्टे व्यंजनों का त्याग करना स्वास्थ्य एवं साधना के लिये हितकारी होता है।

(9) शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष की दस पर्व तिथियों को फल, हरी सब्जी आदि का त्याग रखना चाहिये।

(10) भूख से कुछ कम भोजन करने से

ऊणोदरी तप का लाभ मिलता है।

- (11) समस्त भोज्य पदार्थों में कुछ पदार्थों का त्याग करने से वृत्ति संक्षेप तप का लाभ मिलता है।
- (12) वमन करके भोजन न करें।
- (13) जब किसी चिन्ता से ग्रस्त हो, तब भोजन ग्रहण न करें।
- (14) खड़े-खड़े, अस्थिर आसन में, रात्रि अथवा अंधेरे में भोजन करने से बचें।
- (15) अजीर्ण दशा में भोजन न करें। कभी भी अज्ञात फल न खाये।
- (16) अन्तराय वाली स्त्री के स्पर्श वाला भोजन न करें।
- (17) अति उष्ण अथवा शीत आहार न करें। अति उष्ण आहार से वायु प्रकोप तथा अति शीत आहार से दांत व आंत सम्बंधी रोग हो जाते हैं।
- (18) अति खट्टे, खारे, तीखे आहार से बचने की कोशिश करें।
- (19) बड़े-बुजुर्गों को भोजन करवाकर प्रसन्नतापूर्वक भोजन ग्रहण करें। प्रसन्नता से आहार समाधि, सन्तोष और स्वास्थ्यवर्द्धक बनता है।
- (20) भोजन के तुरन्त बाद नहाना,

नींद लेना सर्वथा अनुचित है।

- (21) स्थिर होकर, बिना नीचे गिराये एवं समिति से युक्त होकर भोजन करना चाहिये।
- (22) भोजन करने के बाद थाली धोकर पीये तथा उसे पोंछकर रखे, इससे आयंबिल का लाभ मिलता है। झूठे बर्तनों में अड़तालीस मिनट में अवश्यमेव जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। मक्खी, मच्छर आदि गिरने से विराधना भी होती हैं। अतः झूठे बर्तन अड़तालीस मिनट से अधिक न रखें।
- (23) भोजन झूठा नहीं छोड़ना चाहिये एवं झूठे मुँह बोलना नहीं चाहिये। आवश्यक होने पर पानी पीकर बोला जा सकता है।
- (24) भोजन करते समय चबाने की आवाज नहीं करनी चाहिये।

प्र.497 भोजन कब एवं कहाँ नहीं करना चाहिये?

उ. विवेक विलास नामक ग्रन्थ में लिखा है—सूर्योदय के पूर्व एवं सूर्यास्त होने पर भोजन नहीं करना चाहिये। अन्न की निंदा करते हुए, चलते, सोते, खुले स्थान में, धूप में, अन्धकार में, वृक्ष के नीचे बैठकर तथा तर्जनी अंगुली उपर

रखकर भोजन नहीं करना चाहिये। एक थाली में साथ मिलकर एवं दीवार का सहारा लेकर आहार न करें।

प्र.498. पर्व तिथि को हरी सब्जी, फलादि का ही त्याग क्यों किया जाता है जबकि सूखी सब्जी में भी जीव तो होते ही हैं?

उ. यद्यपि हरी और सूखी, दोनों ही सब्जी सचित्त है, तथापि मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य की अपेक्षा से जैन जीवन पद्धति में पर्व तिथियों में हरी वनस्पति के त्याग का उपदेश दिया गया है। इन पर्व तिथियों में चन्द्र, सूर्य और पृथ्वी एक सीधी रेखा में होने से जिस प्रकार समुद्र में तीव्र आड़ोलन होने से भारी ज्वार-भाटा आता है, उसी प्रकार मानव मन एवं भावनाएँ भी अत्यधिक आंदोलित होती हैं। मस्तिष्क एवं स्नायुतन्त्र भी प्रभावित होते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण कहता है कि मानव शरीर में 70 प्रतिशत जलीय तत्त्व है और इन दिनों में मानसिक स्थिति में असंतुलन होने से व्यक्ति शीघ्र ही क्रोध, तनाव, चिन्ता, बेचैनी, उद्वेग से भर जाता है। यह तो प्रमाणित हो ही चुका है कि रोगी इन दिनों में विशेष रूप से परेशानी झेलता

है। बाह्य भूत, प्रेत, पिशाच आदि का असर भी इन दिनों में अधिक एवं तीव्र गति से होता है।

इन पर्व तिथियों में हरी वनस्पति के निषेध का कारण यही है कि शरीर में जलीय तत्त्व का संतुलन नहीं बिगड़े एवं मानव-मन स्वस्थ तथा उत्तेजना-मुक्त रह सके।

जैन भोजन शैली में हरी वनस्पति-त्याग के अतिरिक्त इन दिनों में पौषध, उपवास, जप, तप, ध्यान आदि धर्मानुष्ठान विशेष रूप से किये जाते हैं ताकि समुद्री तूफान के कारण आने वाले मानसिक तूफान, आवेश एवं विकृतिता से अप्रभावित रहा जा सके।

प्र.499. स्वास्थ्य के संदर्भ में भी जानकारी दीजिये?

उ. संयमित व संतुलित भोजन स्वास्थ्य का कारण है। यदि स्वास्थ्य ठीक होगा तो प्रभु भक्ति, स्वाध्याय आदि मोक्षानुष्ठान भी सध सकेंगे।

स्वास्थ्य के संदर्भ में कहा गया है—

पेट नरम पाँव गरम, सिर को राखो ठंडा ।

फिर आवे वैद्यराज तो, उसको मारो डण्डा ॥

इसका अर्थ है कि जिसका पेट नरम, पाँव गरम और दिमाग ठण्डा, संतुलित रहता है, उसको चिकित्सक की आवश्यकता नहीं

होती है। अन्यथा अभक्ष्य, मछली का रस, अण्डे आदि पदार्थों वाली दवाईयाँ लेनी पड़ती हैं।

अधिक मात्रा में भोजन करने वालों के लिये किसी ने बहुत खूब कहा है—तुम एक तिहाई स्वयं के लिये और दो तिहाई डॉक्टर के लिये खाते हो।

स्वास्थ्य लाभ हेतु चिन्तनीय- करणीय बिंदु—

- (1) पन्द्रह दिनों में एक उपवास अथवा दो आयंबिल करें। इससे मन निर्मल रहता है, विकार शान्त हो जाते हैं तथा काया निरोगी रहती है।
- (2) तप के पूर्व एवं पश्चात् दिनों में गरिष्ठ, नमकीन आहार न ले एवं अत्यधिक मात्रा में आहार न करें। जिस प्रकार मशीन को बीच-बीच में आराम दिया जाता है, वैसे ही पाचन तन्त्र को भी आराम देना चाहिये।
- (3) हर समय पशु की भाँति मुँह नहीं चलाना चाहिये अन्यथा काया पर रोग, मोटापा, डाइबीटिज आदि की काली छाया मण्डराने लगती है। शारीरिक दीप्ति, तेजस्विता और सौन्दर्य अल्पकाल में समाप्तप्रायः हो जाते हैं।
- (4) भूख लगने पर खाने से भोजन अमृत रूप बनता है, बिना भूख वह विष समान कहा गया है, इस बात का

ध्यान रखे।

- (5) भोजन को पचाने की मशीन जठराग्नि को अल्प श्रम करना पड़े अतः स्वास्थ्य विज्ञान का सिद्धान्त है कि चबा-चबा कर एवं भूख से थोड़ा कम खाना चाहिये।
- (6) शोक, भय, तनाव, थकान, क्रोध की स्थिति में आहार करना स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है।
- (7) स्वाद के कारण अति भोजन करना अनुचित है। पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन भी उपयुक्त मात्रा में ही लेने का स्वास्थ्य मनीषियों का सिद्धान्त है।
- (8) अन्नन्तकाय, अभक्ष्य, बासी, बाजार के पदार्थों का त्याग करें।
- (9) मांस, मदिरा, शहद, मक्खन, अंडा आदि पदार्थ इन्सान को शैतान बना देते हैं, अतः इनका वर्जन धर्म एवं स्वास्थ्य, दोनों अपेक्षाओं से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
- (10) जल-पान अजीर्ण होने पर औषधि का, पच जाने पर स्वस्थता का, भोजन के मध्य अमृत का, भोजन के तुरन्त प्रारम्भ में बलहीनता का एवं भोजन के तुरन्त बाद बीमारी का कारण बनता है।



अभक्ष्य का भक्षण : बड़े जन्म-मरण

प्र.500. अभक्ष्य किसे कहते हैं?

उ. जो खाने/भक्षण करने योग्य न हो, उसे अभक्ष्य कहते हैं। इसके बाईस प्रकार कहे गये हैं—

1. मांस, 2. शहद, 3. मक्खन, 4. मदिरा, 5. उंबर का फल, 6. कटुंबर का फल, 7. पीपल

- का फल, 8. गूलर का फल, 9. बड का फल, 10. बर्फ, 11. जहर, 12. ओले, 13. कच्ची मिट्टी, 14. बैंगन, 15. बहुबीज, 16. आचार, 17. द्विदल, 18. तुच्छफल, 19. अज्ञात फल, 20. रात्रि भोजन, 21. चलित रस, 22. अनन्तकाय ।



सप्त व्यसन : नरक का द्वार

प्र.501. सप्त व्यसन कौनसे हैं?

- उ. 1. मांस, 2. मदिरा, 3. जुआं 4. चोरी, 5. वेश्यागमन, 6. परस्त्रीगमन, 7. शिकार। इसके अतिरिक्त गुटखा, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू भी व्यसनों का ही रूप है।

प्र.502. मांस त्याज्य क्यों है?

- उ. मरे हुए जीव के मांस में तत्काल उसी रंग के अनंत जीव एवं दृष्टिगोचर न होने वाले त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं अतः मांस सर्वथा त्याज्य है।

मनुस्मृति में लिखा है कि जीवों को मारने की अनुमति देने वाला, काटने वाला, खरीदने वाला, पकाने—

परोसने एवं खाने वाला, ये सभी पापी और घातक हैं। जो मांस भक्षण करता है, वह नरकगामी होता है। इस भव में एवं परभव में द्ररिद्र, रोगी, अपाहिज, कुष्ठ रोगी, दुर्भागी एवं दुःखी होता है।

स्वास्थ्य की अपेक्षा से भी मांस अत्यन्त हानिकारक है। मनुष्य के शरीर की प्रकृति शाहाकार के अनुकूल है। मांसाहार से व्यक्ति हिंसक, क्रोधी, कलही बनता है। कैंसर, टी.बी., ब्लडप्रेसर, हृदयाघात, पथरी रोग हो जाते हैं। इस प्रकार आत्मा, मन, वातावरण और परभव, इन सभी दृष्टियों से मांसाहार सर्वथा त्याज्य है। मांसाहार के कारण

महाशतक श्रावक की पत्नी रेवती सातवीं नरक में गयी। केवल कौएँ के मांस का त्याग करके भी वंकचूल देवलोकगामी बना।

प्र.503. मदिरा नुकसानदायक क्यों है?

उ. मदिरा पान से व्यक्ति की मति बिगड़ जाती है। उसे अच्छे-बुरे का भान नहीं रहता है। मदिरा में असंख्य त्रस व स्थावर जीवों की उत्पत्ति होने से जीव हिंसा का महापाप लगता है एवं व्यक्ति का अपयश होता है।

द्वारिका नगरी का विनाश मदिरा पान के कारण ही हुआ था। यह दुर्गति में ले जाने वाला आत्मा का परमशत्रु है। प्रारंभ में यह भले ही अच्छा लगे, अंततः व्यक्ति को दुःख और पतन के गर्त में गिरा देता है।

किसी ने बहुत ठीक कहा है – आज तक जितने लोग पानी में डूबकर नहीं मरे हैं, उससे अनेक गुणा लोग शराब की प्याली में डूबकर मरे हैं। प्रारम्भ में व्यक्ति शराब को पीता है, बाद में शराब आदमी को पी जाती है।

प्र.504. जुआ त्याज्य क्यों कहा गया ?

उ. एक अपेक्षा से जुआ मदिरापान से अधिक खतरनाक है। जैसे-जैसे व्यक्ति मदिरापान करता है, वैसे-

वैसे अल्पकालिक तृप्ति होती जाती है परन्तु जुए की निंद्य, त्याज्य प्रवृत्ति में जीतने से लगातार लोभ बढ़ता जाता है और पराजित होने पर 'अगले दांव में जीतूंगा।' ऐसी आशा में व्यक्ति सब कुछ हार कर फूटपाथ पर आ जाता है।

जुआ तो एक ऐसी दुष्प्रवृत्ति है जिसके कारण पाण्डवों जैसे बुद्धिमंत एवं प्रज्ञाशील महापुरुषों ने दुर्मतिवश द्रौपदी तक को दांव पर लगाया और अन्त में सब कुछ हारकर बारह वर्षों तक भिखारी की भांति घर-घर एवं नगर-नगर भटकते रहे। अतः इहलोक में निंद्य, अपयशदायक एवं सुख-साधनों को नष्ट करने वाले तथा परलोक में नरकादि दुर्गतियों में गिराने वाले त्रिकाल निंद्य द्यूतक्रीडा (जुआ) रूपी महाव्यसन का अवश्य त्याग करना चाहिये।

दादा जिनदत्तसूरि, जिनकुशलसूरि, आदि के सदुपदेश से लाखों परिवारों ने सप्त व्यसनों का सर्वथा त्याग कर सुन्दर जीवन अपनाया और सुख-शान्ति के साधन प्राप्त किये।

प्र.505. चोरी का त्याग क्यों करें?

उ. 1. चोरी करने से जिनाजा की अवज्ञा होती है।

2. कदाच-चोरी करते पकड़े जाने पर स्वामी/ राजा का दण्ड भुगतना पड़ता है और काराग्रह, देशनिकाला/फांसी पर्यन्त सजा मिलती है।

3. कुल का अपयश, समाज में अविश्वसनीयता और स्वयं की निंदा होने से क्रोधादि कषायों को खुला आमन्त्रण मिलता है, और जीव क्रमशः दुर्गतिगामी होता है।

4. चौर्य कर्म से जीव इस भव में दरिद्रता, अंगोपांग छेदन, दौर्भाग्य, दासत्व जैसे भयंकर दोषों का स्थान बनता है और परलोक में अंधा, बहरा, लूला, मच्छीमार बनता है और लाखों - करोड़ों भवों तक दुःखों को भोगता है।

इस व्रत की प्रशंसा करते हुए महर्षि कहते हैं - अचौर्यव्रत धारक का न्यायोपार्जित धन घर- बाहर, खेत-खलिहान, जंगल- पर्वत आदि में चोर, शस्त्रादि किसी भी प्रकार से नष्ट नहीं होता है तथा वह व्रती क्रमशः सर्वत्र विश्वास, प्रशंसा, यश, सुख, निर्भयता, स्वर्गीय ऐश्वर्य प्राप्त करता हुआ

अल्पभवों में मोक्ष सुख का उपभोक्ता बनता है।

ध्यान रहे, चोरी करने व करवाने वाला, चोर के साथ मंत्रणा करने वाला, चोरी का भेद जानने वाला, चोरी की वस्तु लेने वाला, चोर को भोजन एवं आश्रय देने वाला भी चोर ही कहलाता है। सुज्ञजनों को जरूरी है कि प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप चोर बनकर अधोगति के शिकार न बने। कपिल केवली व आर्द्र-कुमार के सदुपदेश से पांच-पांच सौ चोर दीक्षित हुए। इसी प्रकार जम्बू कुमार का उपदेश सुनकर प्रभव एवं उनके पांच सौ चोर दीक्षित हुए और मोक्षधाम के सन्निकट पहुंचे।

प्र.506. वेश्यागमन, परस्त्रीगमन एवं शिकार को घृणित क्यों बताया गया है?

उ. 1. वेश्यागमन - यह दोषों का सरदार है। इसकी छाया तो दृष्टि विष सर्प से भी करोड़ों गुणा भयंकर है। इस महादोष का त्यागकर नदीषेण मुनि, स्थूलिभद्र आदि मोक्ष मार्ग के यात्री बने।

यह तो सर्वदिशाओं से ईंधन को खाने वाली महाग्नि के समान है,

शुभ विचारों को नष्ट करने वाले इस प्रकार के मनोरंजन के साधनों से भी बचना चाहिये।

प्र.507. आजकल शाकाहारी अण्डे का जोरशोर से प्रचार हो रहा है तो उसका प्रयोग करना उचित है अथवा अनुचित?

उ. अंडा किसी पेड़ पर तो लगता नहीं कि उसे शाकाहारी कहा जाये। यह तो भारत की आर्य संस्कृति को खोखली बनाने का षडयंत्र है। अण्डा जन्म से पूर्व जीव की दशा है और उसका भक्षण स्पष्ट रूप से मांसाहार ही है। यह दुर्गति, अधर्म का कारण होने के साथ स्वास्थ्य का भी परम शत्रु है। इसके कारण टी.बी., कैंसर आदि रोग हो जाते हैं अतः समझदारी इसी में है कि मरते दम तक किसी भी रूप में इसका उपयोग नहीं किया जाये।

प्र.508. आजकल युवावर्ग में बीडी, सिगरेट, गुटखे को स्टेण्डर्ड का प्रतीक माना जा रहा है तो क्या उसका प्रयोग हानिकारक नहीं हैं?

उ. दिल से दिमाग तक, सिर से पाँव तक और आंत से दांत तक की विकृति और बीमारी के बीज रूप ये व्यसन शुरु में अच्छे लगते हैं पर बाद में

जीवन की सबसे बड़ी समस्या बन जाते हैं। ये व्यसन तन, मन और धन की बरबादी के प्रमुखतम कारण हैं। कैंसर, हृदयरोग, सिरदर्द, बी.पी. के जिम्मेदार इन व्यसनों के कारण प्रतिवर्ष हजारों व्यक्ति मृत्यु के मुँह में चले जाते हैं। तंबाकू के कारण विश्व में प्रतिदिन ग्यारह हजार व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

बीडी, सिगरेट में निकोटिन जैसे विषैले पदार्थों से धमनियों, आंतों, श्वसन नली में सूजन आ जाती है। मिराज, पानपराग, माणिकचंद आदि गुटखों के कारण मुँह, आंतों की कोमल त्वचा जलकर नष्ट हो जाती है। दांतों का पीलापन, गुर्दे और गले में गांठें, यकृत व हृदय की बीमारी, ये सब गुटखा चबाने के ही घातक परिणाम हैं।

400 प्रकार के केमिकल्स से युक्त गुटखों से शरीर में विटामिन डी की कमी होने से लौह तत्त्व कम हो जाता है। यह जानकर जागरूक युवा को फैशन के मायाजाल में न फंसकर व्यसनों का त्याग करना चाहिए।



द्विदल अर्थात् पापों का दलदल

प्र.509. द्विदल किसे कहते हैं?

उ. जिसे पीलने पर तेल न निकले, जिसके दो समान भाग हो, ऐसे मूंग, मोठ, चना, उड़द, मैथी, मटर, मसूर, चौला, तुअर, चवला आदि कठोल के साथ कच्चा दही, छाछ खाने से जिन जीवों की उत्पत्ति होती है, उसे द्विदल कहते हैं। कठोल धान्य अखण्ड हो, उसकी दाल हो अथवा आटा हो, वह भी कठोल कहलाता है। खरतरगच्छ की परम्परा में सांगरी को भी द्विदल माना गया है।

प्र.510. मूंगफली, काजू, बादाम, पिस्ता आदि के भी दो टुकड़े होते हैं तो क्या वे द्विदल नहीं कहे जायेंगे?

उ. नहीं, वे द्विदल नहीं हैं क्योंकि तीर्थंकर परमात्मा ने कहा है कि जिसे पीलने पर तेल न निकले, वह द्विदल है। काजू, बादाम, मूंगफली का तेल निकलता है, जिसकी आप सभी को जानकारी है ही।

प्र.511. द्विदल खाने में कितना पाप लगता है?

उ. द्विदल में असंख्य (Uncountable) द्वीन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती है। संबोध प्रकरण में कहा गया है कि द्विदल युक्त कच्चे गोरस (दूध, दही, छाछ) में पंचेन्द्रिय और निगोद के

जीवों की उत्पत्ति होती है। इसके भक्षण से जीव निश्चय ही दुर्गति में जाता है।

महाभारत में तो यहाँ तक कहा गया है—हे युधिष्ठिर! कच्चे गोरस के साथ उड़द, मूंग, चने आदि का भक्षण करना मांस-भक्षण के समान है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह अनुचित है। आयुर्वेद आदि स्वास्थ्य शास्त्रों में इसे बीमारी एवं अपाचन का कारण कहा गया है।

प्र.512. भोज्य पदार्थों में द्विदल का ध्यान किस प्रकार रखा जाये?

उ. अहिंसक एवं दयालु व्यक्ति को भोजन बनाते समय ध्यान रखना चाहिये कि कच्ची छाछ/दही में बेसन आदि न मिलाये अपितु तीन बार उबाल आने के उपरान्त ही मिलाये। श्रीखण्ड, कच्ची छाछ, दही, आदि के साथ भुजिया, मूंग-मोगर की दाल, दही बड़ा, खमण आदि नहीं खाना चाहिये। स्वामीवात्सल्य आदि में इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये।

विशेष रूप से याद रखे— द्विदल भले ही गरम किया हुआ हो परन्तु उसके साथ कच्चा गोरस (दही,

छाछ) त्याज्य है। यदि गोरस गर्म किया हुआ हो तो द्विदल कच्चा हो या पक्का, उसमें चलता है। भोजन की थाली में भी ध्यान रखे कि दाल, कड़ी आदि की कटोरी में छाछ आदि कच्चा गोरस नहीं लेना चाहिये।

प्र.513. परन्तु महाराजश्री! कच्चे दही, छाछ को उबाला जाये तो वह फट जाता है, अतः क्या करें?

उ. दही, छाछ में चावल का आटा (एक किलो में 50 ग्राम) डाल देने पर अथवा कूकर में छाछ/दही का पात्र रखकर एक सीटी ली जाये तो नहीं फटता है।

प्र.514. जैन शास्त्रों में बैंगन, फूलगोभी, तुच्छ फल, अज्ञात फल आदि त्याज्य क्यों कहे गये हैं?

उ. 1. बैंगन— यह बहुजीव, त्रस जीवों से युक्त है तथा उत्तेजक, विकारवर्द्धक तथा मन को तामसिक बनाता है। शास्त्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि बैंगन खाने के उपरान्त व्यक्ति इतना बुद्धिभ्रष्ट हो जाता है कि माँ और पत्नी का भेद भी विस्मृत कर जाता है।

2. तुच्छ फल— जिसे खाने से तृप्ति या शक्ति नहीं मिलती है, जिस्में खाने का कम और फैंकने का अधिक हो, उसे तुच्छ फल कहते हैं। जैसे—चणीबोर, पीलू,

सीताफल आदि। ये रस की लालसा को बढ़ाते हैं।

3. अज्ञातफल— जिस फल के गुण, रूप—स्वरूप एवं नाम का परिचय न हो, उसे अज्ञात फल कहते हैं। अज्ञात फल के कारण कभी—कभी प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। जैसा कि वंकचूल के पांच सौ चोरों के साथ हुआ था।

4. फूलगोभी— इसके गुच्छों में उसी वर्ण के जीव होते हैं, उनकी जयणा न हो पाने से फूलगोभी त्याज्य है।

5. बहुबीज फल — जिस फल में बहुत बीज हो, ऐसे खसखस, बैंगन आदि नहीं खाने चाहिये।

6. अचार — आम, केर आदि के अचार में तीन दिन के बाद निश्चय ही जीवोत्पत्ति होने से वे अभक्ष्य हैं। केरी को धूप में अच्छी तरह सूखाकर बनाया जाये तो वह खाने योग्य होता है।

प्र.515. अनार, टिण्डोरा भी तो बहुबीज वाले फल हैं फिर उनका उपयोग कैसे किया जा सकता है?

उ. अनार, टिण्डोरा में बहुत बीज होने पर भी उसमें आन्तरे—आन्तरे में पड (पटल) होते हैं। इस कारण वे एक दूसरे के घात—नाश में कारण नहीं होते हैं जबकि खसखस,

अंजीर आदि में बीजों के मध्य पड नहीं होने से एक दूसरे के घात के कारण बनते हैं।

प्र.516. महाराजश्री ! आप कहते हैं कि जिसमें फेकने का अंश अधिक व खाने का कम होता है, वह फल त्याज्य है परन्तु हम देखते हैं कि इक्षु खण्ड में फेकने योग्य अधिक व उपयोगी पदार्थ कम होता है पर उसका त्याग नहीं किया जाता है एवं पूजन — महापूजन एवं फल पूजा में सीताफल का प्रयोग होता है, यह सब उचित है या अनुचित ?

उ. जिसमें खाने का कम हो व फेकने का अधिक हो, वह तुच्छ फल है तो जिसे खाने से तृप्ति—शक्ति न मिले एवं स्वाद—लोलुपता को बढ़ावा मिले, वह भी तुच्छ फल ही है।

यह सर्वविदित है कि परमात्मा

आदिनाथ के चार सौ दिन के तप का पारणा इक्षु रस से हुआ था। यद्यपि इक्षु खण्ड में फेकने का अंश अधिक होता है तथापि अत्यन्त गुणकारी, उपकारी, शक्तिवर्धक एवं तृप्तिदायक होने से इक्षु रस को त्याज्य नहीं कहा गया।

आपने दूसरा प्रश्न उठाया कि प्रभु की फल—पूजा एवं महापूजनों में सीताफल का प्रयोग किया जाता है फिर वह अभक्ष्य कैसे हो सकता है ?

वास्तविकता तो यह है कि पूजा में सीताफल, चैत्र से आषाढ माह तक काजू आदि सूखा मेवा चढ़ाना शास्त्र—विरुद्ध है।

अति की कल्पना में व्यक्ति अविधि का आचरण कर बैठता है। ध्यान रखना, धर्म पदार्थों को चढ़ाने में कम और विधि एवं विवेक में ज्यादा है।



रात्रि भोजन : दुर्गति का कारण

प्र.517. रात्रि भोजन क्यों नहीं करना चाहिये?

- उ. (i) रात्रि भोजन करने से जिनाजा की अवहेलना होती है।
- (ii) सूर्यास्त होने के बाद असंख्य सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होने से जीव-हिंसा का महापाप लगता है।
- (iii) रात्रि भोजन करने वाले परभव में रात्रिभोजी पशु बनते हैं जैसे-सर्प, बिल्ली, उल्लू, कौआ, सुअर आदि।
- (iv) इससे नरक एवं तिर्यच गति में जाना पडता है।
- (v) रात्रि भोजन करने वाला प्रतिक्रमण आदि आवश्यक धर्म-प्रवृत्तियों से वंचित एवं विमुख हो जाता है।
- (vi) बर्तनों में भी जीवोत्पत्ति होती है। कदाच बर्तन बासी रखे जाने से उनका भी पाप लगता है।

प्र.518. रात्रि भोजन के त्याग में क्या कोई वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी है ?

उ. हाँ! सूर्य की किरणों का अर्पना अलग महत्त्व है। ये हमें अनेकानेक रोगों से

बचाती हैं। वर्तमान में सूर्य स्नान (Sun-bath) की पद्धति भी प्रचलित है। इसी प्रकार भोजन में भी इनका अपना उपयोग है।

(i) हमारे शरीर में दो कमल हैं—हृदय एवं नाभि। सूर्य के अस्त होने पर ये संकुचित हो जाते हैं अतः रात्रि भोजन निषिद्ध है। पाचन क्रिया में प्राण वायु (Oxygen) का अत्यन्त महत्त्व है। रात्रि में सूर्य-प्रकाश का अभाव होने से पाचन-प्रक्रिया गड़बड़ा जाती है, फलतः व्यक्ति बीमार हो जाता है।

(ii) भोजन करने के दो-तीन घंटे के बाद शयन किया जाना चाहिये। यह स्वास्थ्यवेत्ताओं का कथन है। रात्रिभोजी यदि जल्दी सोयेंगे तो जल की कमी से स्वास्थ्य खतरे में पड़ जायेगा और देरी से सोयेंगे तो उठना देरी से होगा। परिणामतः बुद्धि, मन और स्वास्थ्य विकृत होंगे और दैनिक चर्या में अनियमितता आएगी।

(iii) सूर्य किरणों की कीटाणु प्रति-रोधक क्षमता भोजन को शुद्ध एवं

उपयोगी बनाती है।

(IV) रात्रि में असंख्य जीवों की वर्षा होने से एवं विषाक्त जंतु की लार आदि मिलने से भोजन विषाक्त हो जाता है, जिससे मृत्यु तक हो सकती है।

योग शास्त्र में लिखा है कि खाने में यदि

(1) चींटी आ जाये तो बुद्धि नष्ट हो जाती है

(2) जूं से जलोदर हो जाता है

(3) मक्खी से उल्टी एवं मकड़ी से कुष्ठ रोग हो जाता है।

(4) बाल से स्वर भंग, बिच्छु से तालु भेदन, कांटे से वेदना होती है। कदाच विषैला जंतु आ जाये तो मृत्यु भी हो जाती है।

प्र.519. भगवान महावीर के समय लाईट नहीं थी, इसलिये रात्रि भोजन का मना किया गया है। आज तो लाईट के पर्याप्त प्रकाश में जीव-ज्ञान हो जाने से रात्रि भोजन करना भला निषिद्ध क्यों?

उ. सूर्य प्रकाश और बिजली के प्रकाश को समान नहीं कहा जा सकता है क्योंकि -

(I) यदि सूर्य-प्रकाश के तुल्य बिजली

का प्रकाश होता तो उससे मन्द जठराग्नि भी प्रदीप्त हो सकती।

(ii) X-Ray भी सूर्य के प्रकाश में ही होता है।

(iii) दिन के प्रकाश में लाईट चालू हो तब जीव नहीं आते हैं जबकि रात्रि को लाईट में प्रत्यक्षतः हम जीव देखते हैं। अब बताइये कि बिजली के प्रकाश ने जीवों को बुलाया कि भगाया?

(IV) वीतरागी राग-द्वेष से मुक्त होने से असत्य भाषण नहीं करते हैं।

(V) सुबह के नाश्ते को Breakfast कहते हैं। Break - यानि तोड़ना। fast यानि उपवास। रात्रि में नहीं खाया, उस त्याग (उपवास) का पारणा करना।

प्र.520. क्या जैनैतर शास्त्रों में भी रात्रि भोजन का निषेध का किया गया है?

उ. श्री हेमचन्द्राचार्य ने योगशास्त्र में रात्रिभोजी को सिंग एवं पूँछ विहीन पशु की उपमा दी है। अनेक पशु-पक्षी भी रात्रि भोजन नहीं करते हैं। इसलिये कहा गया -

चिडी कमेडी कागला, रात चुगन न जाय।
हे नरदेही मानवा, रात पड्या क्यों खाय? ।।

महाभारत में कहा गया है कि रात में खाना मांस खाने के समान एवं पानी पीना खून पीने के समान है। रात्रि भोजी के जप-तप, तीर्थयात्रा, सब निष्फल जाते हैं। रात्रि भोजन त्यागी स्वर्ग एवं मोक्ष फल पाते हैं। पद्मपुराण में रात्रि भोजन को नरक का द्वार कहा गया है। रात्रि भोजन त्यागी को एक महीने में पंद्रह उपवास का लाभ मिलता है।

प्र.521. रात्रि भोजन सम्बन्धी चतुर्भंगी बताओ।

- उ. (1) रात में बना भोजन रात में खाना अशुद्ध / निषिद्ध।
(2) रात में बना भोजन दिन में खाना अशुद्ध / निषिद्ध।
(3) दिन में बना भोजन रात में खाना अशुद्ध / निषिद्ध।
(4) दिन में बना भोजन दिन में खाना शुद्ध / स्वीकार्य।



चलित रस का करें निषेध

प्र.522. चलित रस किसे कहते हैं?

उ. जिन पदार्थों का वर्ण, गंध, रस बदल गया हो, उन्हें चलित रस कहा जाता है।

इसके तीन प्रकार हैं— 1. रातबासी पदार्थ, 2. कुछ दिनों के बाद अभक्ष्य बनने वाले, 3. कुछ महिनों के बाद अभक्ष्य बनने वाले।

प्र.523. रात बासी पदार्थ क्यों छोड़ने चाहिये?

उ. वे पदार्थ, जिनमें पानी का अंश रह जाता है, वे बासी पदार्थ कहलाते हैं। उनमें उसी रंग के लालयक आदि असंख्य त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाने से त्याज्य हैं।

रोटी, पूड़ी, डोसा, पराठा, दाल—चावल, सब प्रकार की सब्जियाँ, सुधारे हुए फल, रस, दूध की मिठाईयाँ, गुलाब जामुन, श्रीखण्ड, लापसी, इमरती, मालपुआ आदि नरम मिठाइयाँ, बड़े, समोसे, कोफते इत्यादि नरम नमकीन, ये सब बासी होते हैं। होटल—बाजार का खाना तो लगभग बासी ही होता है।

आजकल जैन घरों में गूथा हुआ आटा, इडली—खमण आदि के घोल

आदि को लोग फ्रीज में रखकर दूसरे दिन उपयोग में लेते हैं, जो अत्यन्त लज्जास्पद बात है। यदि पानी में हाथ भिगोकर लड्डू बांधे जाते हैं, तो वे भी एक रात के बाद बासी हो जाते हैं। बासी पदार्थों में जीव हिंसा के साथ बीमारी के भी कारण है, जिसके समाचार आए दिन अखबारों में छपते हैं। धर्म, दया, स्वास्थ्य आदि दृष्टिकोणों से बासी पदार्थ सर्वथा त्याज्य है।

विवेकी को बासी भोजन न तो रखना चाहिये, न खाना चाहिये, न गाय आदि को खिलाना चाहिये।

प्र.524. महाराजश्री! इडली आदि का घोल कितने बजे भिगोया जा सकता है?

उ. शुद्ध शास्त्रीय परम्परानुसार सूर्योदय के उपरान्त तथा अपवाद मार्ग से प्रकाश हो जाने के पश्चात्। अर्द्धरात्रि में 12 बजे के बाद भिगोया गया घोल और चना, मोठ आदि सूखी सब्जियाँ बासी ही होती हैं।

प्र.525. कुछ दिनों के बाद अभक्ष्य बनने वाले पदार्थ कौन—कौन से हैं?

उ. सभी प्रकार की सूखी नमकीन,

अनन्तकाय का भोजन : अशाता का सर्जन

प्र.527. अनन्तकाय किसे कहते हैं?

उ. जिस एक शरीर में अनन्त जीव रहते हैं, उसे अनन्तकाय कहते हैं। इसे साधारण वनस्पतिकाय एवं निगोद भी कहा जाता है। जैसे—औषधिरूप छोटी—सी गोली में जिस प्रकार सैकड़ों दवाईयाँ समा जाती हैं, लक्षपाक तेल की प्रत्येक बूंद में लाखों जड़ी—बूटियाँ मिश्रित होती हैं, उसी प्रकार एक शरीर में अनन्त जीव समा जाते हैं।

प्र.528. अनन्तकाय कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. यद्यपि संसार में अगणित प्रकार के अनन्तकाय हैं तथापि जीवन में विशेष रूप से काम में आने वाले बत्तीस प्रकार के अनन्तकाय शास्त्रज्ञों ने कहे हैं—आलू, प्याज, लहसुन, गाजर, शकरकंद, मूली, हरी हल्दी, अदरक से सभी परिचित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष रूप से जानने चाहिये जैसे—

(1) पालक (2) अंकुरित धान (चना, मूंग आदि भिगोने पर जो अंकुरित हो जाता है, वह भी अनन्तकाय है।) (3) कुंवारपाठा (4) कोमल पत्ते— नीम

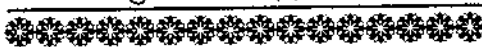
आदि की सामान्य रक्तवर्णीय कोंपले, जिसे सामान्य तौर पर लोग स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से खाते हैं।

प्र.529. जिनेश्वर परमात्मा ने कंदमूल आदि अनन्तकाय के त्याग का उपदेश क्यों दिया जबकि जीव युक्त भिंडी आदि शाक एवं फल खा सकते हैं?

उ. जिनेश्वर परमात्मा स्व—ज्ञान से सब कुछ जानते हैं। उन्होंने केवलज्ञान में आलू, प्याज आदि में सुई के नोक जितने भाग में जो अनन्त जीव देखे हैं, उन्हें भी कोई नहीं गिन सकता तो पूरे आलू में कितने जीव होंगे जबकि भिण्डी आदि के जीव गिने जा सकते हैं अतः क्षुधापूर्ति और जीवन—निर्वाह यदि अल्प हिंसा से हो सकता है तो फिर उदरपूर्ति के लिये अनन्त जीवों की हिंसा करके भला दुःख रूप जन्म एवं मरण का बंधन क्यों करें !

प्र.530. अनन्तकाय भक्षण से क्या—क्या हानियाँ होती हैं?

उ. जैन शास्त्रों में ही नहीं, जैनेतर शास्त्रों में भी कंदमूल त्याज्य कहा गया है। कहा गया है—जो मूला खाता है, वह



मांस खमता है और वह घर श्मशान के समान है।

मनुस्मृति में पांचवें अध्याय के पांचवें श्लोक में मोक्षकामी एवं सदगति—इच्छुक के लिये लहसुन, प्याज, गाजर आदि के भक्षण का निषेध किया गया है।

(1) आलू आदि भक्षण से जीव की स्वाद लोलुपता बढ़ती है, तदनन्तर वह रागवशात् आलू, प्याज, लहसुन आदि में उत्पन्न होता है और असंख्य—अनन्तभवों तक उसी में जन्म—मरण करके असह्य दुःख प्राप्त करता है।

(2) अनन्तकाय के भक्षण से जीव को अनन्त जीवों की हिंसा का पाप लगता है, परिणामतः वह दुर्गति में जाता है।

(3) जीवदया, करुणा, अनुकम्पा जैसे शुभ विचार नष्ट होते जाते हैं और जीव मोक्ष से दूर होता जाता है।

(4) बुद्धि, मन आदि तामसिक—हिंसक बनते जाते हैं। सन्मति नष्ट हो जाती है।

(5) अशाता वेदनीय कर्म का भयंकर बंध होता है। इस प्रकार परमात्मा की आज्ञानुसार कंदमूलादि का सर्वथा वर्जन करके स्वादवृत्ति एवं

इन्द्रिय—विषयों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये।

प्र.531. सोंठ की तरह आलू को सूखाने पर भी उसके खाने का भला निषेध क्यों?

उ. सूखी सोंठ का उपयोग स्वाद—पोषण के लिये नहीं बल्कि दवा के रूप में किया जाता है।

(1) आप ही बताये। एक व्यक्ति, जो एक दिन में एक किलो आलू खा सकता है, वह क्या एक किलो सोंठ खा सकता है? नहीं खा सकेगा। आलू की तरह यदि सोंठ की सब्जी बनती तो अवश्य ही परमात्मा ने निषेध किया होता।

(2) आलू की चिप्स बनाने से पहले उसका समारंभ करना पडता है परन्तु सोंठ, हल्दी आदि स्वयं ही सूख जाती है।

(3) आलू, गाजर आदि को सूखाया जाये तो वे सड जाते हैं परन्तु सोंठ, हल्दी में इस प्रकार की विकृति नहीं आती।

(4) दवा रूप खाने की अपेक्षा स्वाद—आसक्ति का पाप हजारों—लाखों गुणा अधिक होता है। अतः विवेक—बुद्धि को जगाकर आलू आदि कंदमूलों का निषेध करना चाहिये।

मजेदार (?) पदार्थों का परिहार

प्र.534. आईसक्रीम क्यों नहीं खानी चाहिये?

उ. सुई जितने बर्फ के अंश पर असंख्य जीव होते हैं अतः उनकी विराधना का पाप लगता है। बाजार की आईसक्रीम में गाय, भैंस की हड्डियों का चूर्ण एवं चर्बी मिलायी जाती है। बासी, बिना छने दूध का प्रयोग होने से त्रस जीवों के भक्षण का महापाप लगता है।

प्र.535. क्या आईसक्रीम शरीर पर भी बुरा प्रभाव डालती है?

उ. हाँ! बाजार की वेनिला, चोकोबार, वाडीलाल, सॉफ्टी, मंगो बार, किंग कोन, कारनेटो आदि में स्ट्राबेरी, केला, मेवा, खजूर, पायनेपल आदि का स्वाद लाने के लिये डीथिल, एल्डीहाइड्सी, आर्टिफिशियल स्वीटनर्स आदि रासायनिक पदार्थ मिलाये जाते हैं जो कि स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक एवं कैंसर उत्पादक तत्त्व कहे गये हैं। ये पदार्थ आंतों को हानि पहुँचाते हैं। पाचन क्रिया को असंतुलित करते हैं। इससे अजीर्ण, टॉन्सिल्स, अन्ननली—

स्वर नली में सूजन, खांसी, कफ आदि रोग हो जाते हैं। इसलिये आरोग्य लाभार्थ चिकित्सक भी बर्फ, आईसक्रीम के त्याग की सलाह देते हैं। बर्फ अभक्ष्य होने के साथ-साथ स्वास्थ्य को भी नुकसान पहुँचाता है। यह पाचन शक्ति को मंद करता है। अनेक रोगों की उत्पत्ति में बर्फ बीज का काम करता है।

धर्म की दृष्टि से भी यह सर्वथा त्याज्य है। यह जिसमें गिरता है, उसमें रहे हुए त्रस—स्थावर जीवों को नष्ट कर डालता है।

प्र.536. क्या घर की बनी आईसक्रीम खा सकते हैं?

उ. बाजार की आईसक्रीम तो सर्वथा त्याज्य है। घर की आईसक्रीम फ्रीज में बनती है इसलिये अभक्ष्य एवं त्याज्य है।

प्र.537. महाराजश्री! जब बर्फ और पानी, दोनों में असंख्य जीव कहे गये हैं, तो फिर एक भक्ष्य और दूसरा अभक्ष्य क्यों?

उ. 1. पानी का उपयोग जीवन की मजबूरी है जबकि बर्फ के बिना भी जीवन निर्वाह



शक्य है। फिर भी पानी के उपयोग में विवेक की जरूरत तो रहती ही है।

2. बर्फ स्वाद—पोषण में प्रबल निमित्त है अतः जीव दुर्गति का पात्र बनता है।
3. स्वास्थ्य की अपेक्षा से भी बर्फ नुकसानकारक है।
4. बर्फ अन्य जीवों का भी घात करता है।

प्र.538. चॉकलेट खाने का भी आप निषेध करते हैं, पर क्यों?

उ. चॉकलेट एवं च्युइंगम में अंडे का रस, चर्बी, हड्डियों का पाउडर, शहद, मक्खन आता है।

इनमें निकेल नामक धातु होने से कैंसर हो सकता है। चर्म, दंत एवं यकृत सम्बन्धी रोग होते हैं। यह दिमाग पर विपरीत प्रभाव डालता है, विशेष—सिंह, हाथी, घोड़े आकार वाली गोलियाँ खाने से बच्चों में हिंसा के संस्कार पड़ते हैं। फिर वे 'मैंने हाथी खाया, शेर खाया' इस प्रकार की गलत भाषा का उच्चारण करते हैं।

बाजार में बिकने वाले बिस्कुट में अंडों का रस, गाय की चर्बी, जीव युक्त मैदा आदि का प्रयोग होने से बिल्कुल त्याग करने योग्य हैं।

एक्लेयर्स, डेरी मिल्क, फाईव स्टार,

बार—वन, मिल्की—बार, किटकेट, पर्क, मंच आदि चोकलेटों में एवं बोनविटा में स्वाद बढ़ाने के लिए चोको पाउडर (Choco powder) मिलाया जाता है। इस पदार्थ में सूक्ष्म अण्डाणु रहते हैं, जो उच्च तापमान पर भी जीवित रहते हैं और समय आने पर निषेधित होकर इल्ली आदि में परिवर्तित हो जाते हैं, अतः चोकलेट का त्याग अवश्य ही करना चाहिये।

प्र.539. परन्तु महाराजश्री! हमने तो कभी भी चोकलेट में इल्ली नहीं देखी ?

उ. यदि उस डेरी मिल्क आदि चोकलेट जिन्में Choco powder मिलाया जाता है, उन्हें यदि धूप में खुला रख दिया जाये तो अनुकूल वातावरण मिलते ही उसमें रहे हुए सूक्ष्म अण्डाणु इल्लियों में परिवर्तित हो जाते हैं। कई बार आपने देखा होगा कि चोकलेट का चूरा—चूरा हो जाता है, उसमें भी जीवोत्पत्ति ही कारण है। वहाँ जीव इसलिये दृष्टिगत नहीं होते क्योंकि वे अन्दर ही अन्दर मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं।

प्र.540. क्या शीत पेय (Cold Drinks) भी छोड़ने योग्य हैं?

उ. पेप्सी, कोका कोला, थम्स अप, लिम्का, फ्रूटी, स्लाइस आदि में

एसिड, केमिकल्स, वेनिला फ्लेवर आता है, जिससे शरीर में कैल्शियम की कमी होने से हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं और घुटने आदि संधि - स्थानों में दर्द शुरू हो जाता है।

शीत पेय से लीवर के रोग, आंत सम्बन्धी कैंसर आदि शारीरिक रोग एवं चिड़चिड़ापन, आवेश आदि मानसिक रोग हो जाते हैं। इसमें अनछना, गंदा पानी होने से शीत पेय पदार्थों को जीभ से दूर रखना चाहिये।

प्र.541. महाराजश्री! आप हमें होटल जाने के लिये मना करते हैं पर आजकल होटल में जैन भोजन भी मिलता है फिर क्यों नहीं जाये?

उ. लॉरी, होटल में अनछने पानी एवं अनदेखे पदार्थों से बने विविध व्यंजन अभक्ष्य होने के साथ-साथ बासी व जीवयुक्त ही होते हैं। केवल आपको आकर्षित करके पैसा कमाने के लिये ये लोग वस्तु के आगे 'जैन' शब्द जोड़ देते हैं। जैसे जैन कचोरी, जैन पावभाजी, जैन डोसा आदि।

तलने का तेल, कडाही, तवा आदि बर्तनों में कोई भी अनन्तकाय एवं अभक्ष्य का विवेक नहीं रखता है।

ब्रेड, पाव आदि में त्रस जीवों की उत्पत्ति होने से त्याज्य है।

होटल का खाने से शरीर बीमार होता है, बुद्धि विकृत होती है, धर्म बदनाम होता है, स्वाद लोलुपता में वृद्धि होती है, इसलिए संतपुरुष हमेशा कहते हैं कि Hotel अर्थात् हो सके तो टल वरना Home to Hotel, Hotel to Hospital. होटल में निम्न जाति के लोगों के द्वारा झूठे बर्तनों में जैन एवं संस्कारी व्यक्ति कदापि भोजन नहीं कर सकते।

प्र.542. ब्रेड आदि क्यों नहीं खाने चाहिये?

- उ. 1. ब्रेड मेंदे से और मेंदा गेहूं से बनता है। फ्लोर मिल में महिनों से स्टोक किए हुए बिना देखे, बीने एवं कीडों से युक्त गेहूं को पीसकर मेंदा बनता है।
2. मेंदा बनाने की तारीख, पैकिंग थेली पर नहीं लिखी जाती है। महिनों पुराने मेंदे में अनगिनत लट, इल्ली, कीडे पड जाते हैं अतः वह खाने योग्य नहीं होता।
3. बेकरी वाले खमीर लाने के लिये इसमें खट्टा पदार्थ मिलाते हैं जिससे इल्ली आदि जीव मर जाते हैं। उसकी चमक बढ़ाने के लिये

प्राणीज चर्बी का भी उपयोग किया जाता है।

4. खट्टा पदार्थ मिलाने पर वह मिश्रण फूलता है, जिससे उसमें फंगस की तथा नये त्रस जीवों की उत्पत्ति होती है। चलित रस बने हुए उस मिश्रण (घोल) को जब ओवन में सेकने के लिये रखते हैं, तब असंख्य सूक्ष्म एवं त्रस जीवों की हिंसा होती है।

5. सेकने पर ब्रेड, पाव में थोड़ा जलीय अंश (भीगापन) रहने पर ओवन से बाहर निकालते हैं। रात्रि व्यतीत होने पर वह बासी हो जाता है और अनगिनत बैक्टेरिया, त्रस जीव पैदा होते हैं। उनका उपयोग करना यानि दातों तले जीवों का घात करना।

इस प्रकार ब्रेड व पाव बनाने से खाने तक की हर प्रक्रिया में जीवों की हिंसा होती है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वह पाचन क्रिया को अवरूद्ध करता है। पथरी, आंत का कैंसर आदि अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण है।

भलाऐसा कौन जीव दया प्रेमी होगा जो केवल स्वाद पोषण के लिये मन, आत्मा एवं स्वास्थ्य

की पवित्रता को दाँव पर लगाएगा।

प्र.543. इसके अतिरिक्त कौन-कौनसे अखाद्य हैं? इस बारे में भी जानकारी दीजिये।

उ. 1. **साबुदाना वेफर्स**— रतालु नामक जमीकंद कई दिनों तक नालियों में सडता रहता है। उसमें कीड़े, इल्ली आदि जीव उत्पन्न होते हैं, उन्हें पांकों से मसला जाता है जिससे अनन्तकाय और असंख्य त्रस जीव महावेदना को प्राप्त करते हुए मरते हैं। उनकी आह और वेदना से भरा अभक्ष्य साबुदाना सर्वथा वर्ज्य है।

2. **इन्स्युलिन के इंजेक्शन**— भेंसे के पेन्क्रीयाज़-नामक ग्लैण्ड से बनते हैं। अतः त्याज्य है।

3. **कस्टर्ड पाउडर**— फ्रुट सलाद, आईसक्रीम में प्रयुक्त होने वाले इस पाउडर में अण्डे व उसका रस मिलाया जाता है।

4. **फ्रुटेला च्युइंग-गम**— इसमें बीटफेलो (मांस और चर्बी) और हड्डी का पाउडर आता है।

5. **नूडल्स (सेव पेकेट)** — इसमें अंडे व मूर्गी का रस मिलाया जाता है।

6. **आईसक्रीम पाउडर**— स्वाद बढ़ाने वाला, पर आरोग्य नाशक व

रोगवर्द्धक इस पाउडर में जिलेटिन, केमिकल्स आदि मिलाये जाते हैं।

7. **मेन्टोस**— इसमें हड्डी का चूर्ण मिलाया जाता है।
8. **जैली** — रंग बिरंगी रबबर जैसी नरम, गीली और उपर शक्कर से युक्त पीपर जिसमें जिलेटिन का प्रयोग होता है।
9. **वाइन बिस्किट**— इसमें अण्डे का रस मिलाया जाता है।

प्र.544. आप वरक (वरख) का भी निषेध करते हैं वह भला क्यों?

- उ. वरक की निर्माण विधि हिंसा से परिपूर्ण है। पूना की एक संस्था (Beauty without Cruelty) ने वरक बनाने की विधि का अध्ययन करते हुए बताया है कि वरक निर्माण में पशु के ताजा चमड़े का ही प्रयोग किया जाता है क्योंकि एक दिन का भी पुराना चमड़ा इसके निर्माण में अयोग्य होता है। जिन पशुओं की चमड़ी मुलायम, नरम है, उनके चमड़े का इस हिंसाकारी प्रक्रिया में उपयोग किया जाता है। पशुओं की आंतों से झिल्ली अलग

करके रसायन के घोल में भिगोकर सूखायी जाती है फिर सूखी झिल्ली के पौच बनाकर उनमें चांदी के पतले टुकड़े रखे जाते हैं और लकड़ी के हथोड़े से लगभग 5-6 घण्टे तक कूटने से चांदी फैलकर वरक बन जाती है। बैल की आंत का वर्क में विशेष प्रयोग होता है क्योंकि कूटने से भी वह फटती नहीं है।

वरक निर्माण में प्रतिवर्ष लगभग 37 लाख 50 हजार पशुओं का वध किया जाता है। वर्क में मांस, अस्थि, लार, मल, बाल आदि हानिकारक तत्व भी पाये जाते हैं जोकि वैज्ञानिक प्रयोग के द्वारा सिद्ध हो चुका है। आजकल नकली वरक भी बनने लगे हैं जिसमें निकल, शीशा, मेंगनीज एल्युमीनियम आदि विषेले पदार्थ पाए गये हैं। स्वास्थ्य विज्ञानानुसार इससे कैंसर आदि घातक बीमारियां होती है। एल्युमिनियम प्रत्यक्षतः स्वास्थ्य के लिये जहर है। मिठाई, फल एवं प्रतिमा की आंगी में वरक का उपयोग करना जिन धर्म एवं दया धर्म के सर्वथा विरुद्ध है।



जितनी जयणा, उतनी शाता

प्र.545. महाराजश्री! आजकल देख रहे हैं कि अल्पवय में ही व्यक्ति कैंसर, बी.पी., कॉलेस्ट्रॉल, हृदयघात आदि रोगों से ग्रस्त हो जाता है। अच्छी, गरिष्ठ, महंगी स्वास्थ्योपयोगी सामग्री यथोचित मात्रा में लेने पर भी जीवन में शाता, समाधि और स्वास्थ्य का नितान्त अभाव दृष्टिगत हो रहा है, आखिर इसका कारण क्या है?

उ. इसका मूल कारण है—जयणा का अभाव। शास्त्रों में 'जयणाए धम्मो' जयणा (यतना) को धर्म कहा गया है। यदि जीवन में जयणा, विवेक एवं उपयोग दृष्टि है तो व्यक्ति पाप कर्म करता हुआ भी अल्पकर्म का बंध करता है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है—

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयं आसे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पाव कम्मं न बन्धई ॥

जयणा और विवेक पूर्वक चलने, बोलने, उठने, बैठने, खाने से पाप कर्म का बंध नहीं होता है। आज जीवन में जयणा का सर्वथा अभाव दृष्टिगत हो रहा है, इस कारण व्यक्ति अल्पकाल

में ही अनेक महारोगों एवं अशाता से ग्रस्त हो रहा है और भोगोपभोग के बीच भी दुःख और बैचेनी से जी रहा है।

जैसे जैसे जीवन में यतना आती है, पाप कार्यों में मन पीड़ित होता है, वैसे वैसे अशाता का बंध कम और शाता का बंध अधिक होता जाता है। अतः 'आया तुले पयासु' प्राणियों के प्रति आत्मा तुल्य भावना का मंत्र रटते रहो और 'समया सब्ब भुएसु' समस्त जीवों के प्रति समभाव बनाते हुए अप्रमत्त होकर विचरण करो।

प्र.546. भोजन सम्बन्धी जयणा बताईएँ।

उ. (1) यथासम्भव बाजार की मिठाई, समोसे आदि तले हुए पदार्थ, चाट-पकोड़ी, पानी-पतासे आदि का त्याग करना चाहिये क्योंकि उसमें डाली गयी वस्तुएँ शुद्ध नहीं होती, उसमें इल्ली, लट आदि जीवों का समारंभ होता है। इस कारण उनका भक्षण शरीर, धर्म एवं आत्मा, तीनों के लिये हानिकारक बनता है।

(2) संस्कारों को विकृत बनाने वाली

- एवं जिनमें मांस, अस्थि, रूधिर आदि का उपयोग हुआ हो, ऐसी औषधि का त्याग करना चाहिये।
- (3) शहद का सर्वथा त्याग करना चाहिये क्योंकि इससे जीव भारी पापकर्मा बनता है।
- (4) कालातिक्रम के उपरान्त आचार, मुरब्बा, शर्बत आदि का उपयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि इनमें त्रस जीवों की उत्पत्ति हो जाती हैं।
- (5) दूध की भाँति मलाई भी बासी होती है, अतः दो-तीन दिन तक मलाई का संचय नहीं करना चाहिये।
- (6) जिनके आलू का सर्वथा त्याग है, उन्हें आलू की पपड़ी का भी त्याग करना चाहिये।
- (7) आमरस आदि में बर्फ नहीं डालना चाहिये, अन्यथा वह अभक्ष्य कहलाता है।
- (8) अदरक त्यागी को बाजार की चाय पीने से पहले इस बात की पुष्टि करनी चाहिये कि कहीं वह अदरक मिश्रित तो नहीं है।
- (9) बंद काजू, मूंगफली आदि का उपयोग नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनमें लट, इल्ली आदि जीवों की संभावना रहती है।

- (10) आम चूसकर नहीं खाना चाहिये। टमाटर, ककड़ी, सेब आदि फल भी बिना सुधारे नहीं खाने चाहिये क्योंकि उनमें द्वीन्द्रिय आदि जीवों की संभावना रहती हैं।
- (11) बाजार का बना आंवला, नींबू, मिर्ची का अचार अभक्ष्य होने से सुश्रावक के लिये त्याज्य कहा गया है।
- (12) लीलोतरी के त्यागी को ध्यान रखना चाहिये कि अमरुद, आम, केला भी लीलोतरी ही है।
- (13) नियमधारी के लिये फाल्गुन शुक्ला पूर्णिमा से आषाढ शुक्ला चतुर्दशी तक केवल बादाम ही काम आती है। चातुर्मास में पहले दिन की फोडी हुई बादाम दूसरे दिन त्याज्य है और सिक जाने पर वह सात दिन तक ग्राह्य है।
- (14) साबुदाने का निर्माण हिंसापूर्वक होने से उसका जिनाज्ञा पालक को त्याग करना चाहिये।
- (15) रात्रि बीतने के साथ मावा बासी हो जाता है। घी में अच्छी तरह सेक लेने पर बासी नहीं माना गया है।
- (16) नींबू के सत का उपयोग श्रावक को नहीं करना चाहिये क्योंकि

इसके निर्माण में अत्यन्त हिंसा होती है।

- (17) छाछ में रहा हुआ मक्खन ही भक्ष्य होता है। छाछ से अलग करते ही उसमें जीवोत्पत्ति शुरू हो जाती है और छाछ से अलग हुए मक्खन को पुनः छाछ में डालने पर भी वह अभक्ष्य ही कहलाता है।
- (18) प्रातःकाल में जमाया दही सतरह प्रहर तक और शाम को जमाया दही बारह प्रहर तक भक्ष्य होता है।
- (19) सब्जी और फल सुधारते समय

टी.वी., गपशप आदि का त्याग करना चाहिये ताकि जयणा धर्म का पालन हो।

- (20) कच्ची अनार, सलाद आदि सचित्त पदार्थों का एकासन, बियासन की तपस्या में त्याग करना चाहिये।
- (21) जयणा का अभाव होने से रात्रि या अंधेरे में भोजन नहीं बनाना चाहिये।
- (22) साथ मिल-बैठकर एक थाली में नहीं खाना चाहिये।
- (23) पापड़ के लोए दूसरे दिन बासी होते हैं।



जैन जीवन मीमांसा

1. बने हमारा जीवन...श्रुशियों का मधुवन
2. समझ का उपयोग : शान्ति के प्रयोग
3. नीति-न्याय से करे व्यवसाय
4. कैसा हो घर-गाँव हमारा ?
5. कैसे बने मृत्यु महोत्सव ?



बने हमारा जीवन... खुशियों का मधुवन

प्र.547. महाराजश्री! जीवन को ऊँचा उठाने के लिये मुख्य रूप से किस बात पर ध्यान देना चाहिये?

उ. इसके लिये दो बातें जरूरी हैं—एक—समय का सदुपयोग, दूसरा— मित्र—परिवार।

कोई भी व्यक्ति जनप्रिय एवं महान् बना है तो उसका मुख्य कारण समय का सदुपयोग ही है।

परमात्मा महावीर ने समय की महत्ता बताते हुए कहा—

(i) काले कालं समायरे—समय पर हर कार्य को संपादित करो।

(ii) समयं गोयम! मा पमायए—गौतम (जीव) ! पल मात्र भी प्रमाद मत कर।

समय नहीं बल्कि समय को बीताने का ढंग महत्वपूर्ण है। यदि कोई व्यक्ति समय को पॉकेट—मनी की भाँति जैसे तैसे खर्च करता है तो वह व्यक्ति कभी भी समय का मालिक नहीं बन सकता है। हर महापुरुष ने समय को गंगा का प्रवाह माना है जो निरन्तर अविराम बह रहा है।

चार्ल्स फास्ट मोची था पर प्रतिदिन

एक घण्टा निकालकर एक दिन अमेरिका का प्रसिद्ध गणितज्ञ बना। जितनी देर में कॉफी बनती है, उतने समय में दार्शनिक लांगफेलो ने 'इनफरनो' ग्रन्थ का अनुवाद कर दिया।

देरी से रेल्वे स्टेशन पहुँचने वाला Train चुक जाता है, देरी से पॉस्ट ऑफिस पहुँचने वाला Mail खो देता है, विलम्ब से स्कूल पहुँचने वाला Lesson चुक जाता है अतः समय के साथ चलो, व्यर्थ की बातों में समय न गवाओं। Time Management करने वाला ही Life Management कर सकता है।

प्र.548. परन्तु महाराजश्री! यह भी तो बताईये कि समय का सदुपयोग कैसे करें?

उ. कॉमिक्स, दूरदर्शन, गपशप, उपन्यास, अखबार आदि में समय गंवाने की अपेक्षा अधिकतम समय धर्म, अध्यात्म और संस्कारों से समृद्ध पुस्तकों के स्वाध्याय में देना चाहिये। इसके लिये तीर्थंकर एवं पूर्वाचार्यों के जीवन—चरित्र, तत्त्वज्ञान एवं अच्छे रूपकों से युक्त, आत्मविश्वास व

साहस बढ़ाने वाली, मुसीबत में माँ की भाँति प्रेम—वात्सल्य एवं धैर्य की शिक्षा देने वाली पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिये। इसके साथ अनाथ, गरीब, साधर्मिक, दुःखी एवं वृद्ध लोगों की सेवा व सहयोग में समय का सदुपयोग किया जा सकता है। आस—पास रहने वाले बालकों को सुन्दर कथाएँ, प्रेरणास्पद प्रसंग सुनाकर उन्हें जीवन की शिक्षा भी दी जा सकती है। कलाई पर बंधी घड़ी समय ही नहीं बताती, समय के साथ चलने की प्रेरणा भी देती है। जो व्यक्ति अचेत रहता हुआ समय पर उसका सदुपयोग नहीं करता है, वह उस कृषक की भाँति पश्चात्ताप करता है जो चिड़िया के खेत चुग जाने के बाद सजग होता है।

प्र.549. संगति का महत्त्व क्यों कहा गया है?

उ. बताईये! एक टोकरी में रखे हुए पाँच आमों में से सड़ा हुआ एक आम क्या सारे आमों को खराब नहीं करता है? अवश्य करता है। इसी प्रकार दुर्जन की संगति कदापि नहीं करनी चाहिये। शास्त्रों में कहा गया है—

दुर्जनः परिहर्तव्यः, विद्याऽलंकृतोऽपि सन् ।

मणिना भूषितः सर्पः, किं सः नास्ति मयंकरः ।।

मणि से विभूषित सर्प की तरह विद्या

युक्त दुर्जन का संग त्याज्य है। चोरों के साथ रहने वाला चोरी नहीं करने पर भी पकड़ा जाता है और सजा प्राप्त करता है। मित्र ऐसे नहीं हो कि पंछी की भाँति दाना चुगे और पानी पीकर उड़ जाये। मित्र तो मछली के जैसे हो, जो जल के अभाव में नहीं जी सकती है। अतः सच्चा मित्र वही है, जो प्रतिकूल एवं दुःखद स्थिति में भी साथ नहीं छोड़ता है एवं साहस, संकल्प, विश्वास एवं धैर्य को बढ़ाता है।

जिनधर्म के प्रति श्रद्धावान्, शीलवान्, तत्त्वज्ञ, दुःख में भी धर्म को नहीं छोड़ने वालों एवं कल्याण मित्र की भाँति निष्काम—निःस्वार्थ सहायता करने वालों का हमेशा सत्संग करना चाहिये। अभयकुमार ने आर्द्रकुमार को धर्म की राह दिखाकर दोस्ती निभाई। श्रीकृष्ण ने सुदामा को गले लगाकर संदेश दिया कि गरीब दोस्त का भी साथ निभाओ।

महापुरुषों ने सत्संग को पारसमणि की उपमा दी है।

जिस प्रकार पारसमणि का स्पर्श पाकर लोहा स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार सत्संग पाकर आत्मा परमात्मा बन जाती है। उसके जीवन में स्वर्ग

उतर आता है। धर्मग्रन्थ, सद्गुरु और अच्छी पुस्तकों से अच्छा मित्र दिन में दीपक लेकर खोजोगे तो भी मिलना असम्भव ही है।

प्र.550 आप जैन-तत्त्व-बोध की बात करते हैं पर यह वर्तमान में कितना प्रासंगिक है?

उ. जब तक व्यक्ति को आत्म-दर्शन एवं तत्त्व बोध नहीं होता है, तब तक वह परिस्थितियों से प्रभावित, बेचैन एवं तनावग्रस्त रहता है, यहाँ तक कि आत्म-हत्या कर बैठता है परन्तु जिसने महाश्रमण महावीर के दर्शन को गहराई से समझा है, वह न तो अनुकूलता में फूलता है, न प्रतिकूलता में फटता है। वह हर स्थिति में अप्रभावित रहता है। कदाच तनाव व दुःख उसके पास आ जाये पर वह तुरन्त तात्त्विक समझ से पूर्वकृत कर्मों का फल एवं संसार की भयावहता का चिंतन करके उनसे पीछा छुड़ा लेता है एवं आत्मविश्वास, धैर्य एवं विवेक का उजाला साथ लेकर अविराम गन्तव्य के प्रति बढ़ता रहता है।

प्र.551. विश्व शान्ति की स्थापना में जैन दर्शन की क्या भूमिका हो सकती है?

उ. जैन दर्शन का 'अहिंसा परमो धर्म' एवं जीओ और जीने दो (Live and Let Live)का सिद्धान्त टूटते घर-परिवार, अशांत राष्ट्र एवं विश्व युद्ध की स्थिति में एक मजबूत नींव एवं पुल का काम कर सकता है।

महावीर कहते हैं- शत्रुता से शत्रुता कभी भी समाप्त नहीं हो सकती। यदि कोई पेट्रोल से आग बुझाना चाहे तो यह असम्भव ही है। वैर को प्रेम से, एवं क्रोध को क्षमा से ही जीता जा सकता है।

वर्तमान में बढ़ते आतंकवाद, फरेब, हत्या, लूटपाट जैसी समस्याओं का कारण शोषण, अनधिकार, एकाधिकार एवं न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का अभाव है।

जैन दर्शन का अपरिग्रह तत्त्व इच्छाओं के सीमाकरण एवं परिग्रह के अल्पीकरण का उद्घोष करता है। यदि यह तत्त्व जीवन में उतर जाये तो न घर-परिवार में तनाव हो सकता है, न विभिन्न देशों में परस्पर किसी प्रकार का आतंक पनप सकता है।



समझ का उपयोग... शांति के प्रयोग

प्र.552. जीवन में जाने-अनजाने अनेक पाप हो जाते हैं, तो बताइये कि उन अनर्थ पापों से कैसे बचा जा सकता है?

उ. (1)सौंदर्य प्रसाधन सामग्री यथा लिपस्टिक, नेल पॉलिश, क्रीम, इत्र इत्यादि के उपयोग से बचना चाहिये। हिंसा से उत्पन्न होने से तथा साढ़े तीन करोड़ रोमों से ली जाने वाली प्राणवायु को अवरूद्ध करने से ये पदार्थ निश्चय ही छोड़ने योग्य हैं।

यदि व्यक्ति चेहरे के रंग की बजाय जीवन जीने के ढंग पर एवं आकृति की अपेक्षा प्रकृति (स्व भाव) को सुन्दर बनाने का पुरुषार्थ करे तो प्रेरक, श्रेष्ठ एवं मधुर जिन्दगी जी सकता है।

(2)दुकान, मकान में जाले न जम जाये, इस बात का खास ध्यान रखना चाहिये।

मकान को सजाने के साथ-साथ मन और चिन्तन को प्रेम, मैत्री और सहृदयता के फूलों से सजाया जाना चाहिये।

(3)गुलाब, चम्पा, चमेली, मोगरा आदि फूलों को नहीं सूँघना चाहिये क्योंकि उसमें रहने वाले जीव नाक द्वारा मस्तिष्क में प्रवेश करके सिरदर्द आदि के कारण बनते हैं।

(4)आने-जाने के मार्ग में गंदगी नहीं करनी चाहिये।

(5) गर्म पानी नहीं परठना (गिराना) चाहिये।

(6)फलों के छिलके आदि कचरा यथायोग्य स्थान पर डालना चाहिये।

(7)तामसिक, राजसिक एवं गरिष्ठ पदार्थों का अधिकतम परिहार करना चाहिये।

(8)दरवाजा, खिडकी आदि खोलने व बंद करने से पूर्व संधि द्वारों की प्रतिलेखना अवश्य करनी चाहिये ताकि जीव हिंसा से बचाव किया जा सके।

(9)बर्तन, गैस-बर्नर आदि का प्रयोग करने से पूर्व उनकी दृष्टि से या पूंजणी से पडिलेहण अवश्य करनी चाहिये।

(10)खाली बर्तन, बाल्टी आदि

टेढ़े-मेढ़े या उल्टे रखने चाहिये ताकि जीव-जंतु उसमें गिरकर मृत्यु और भय को प्राप्त न हो।

- (11) जिन वस्तुओं के निर्माण में पंचेन्द्रिय की हिंसा होती है, ऐसी पंख वाली पोशाकों, हाथी दांत वगैरह की वस्तुओं को काम में नहीं लेना चाहिये, क्योंकि इससे हिंसा को प्रेरणा मिलती है।
- (12) सूर्यास्त के बाद विपुल जीवोत्पत्ति होने से अनावश्यक रात्रि भ्रमण से बचना चाहिये।
- (13) हिंसक जाति को बछड़ा, भैंसा आदि पशु नहीं बेचने चाहिए।
- (14) मृतक की राख आदि को नदी, तालाब आदि में नहीं डालने चाहिये क्योंकि इससे जल में स्थित अनेक जीव मर जाते हैं।
- (15) मच्छर, मक्खी आदि को मारने वाली दवा, लक्ष्मणरेखा आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए।
- (16) नाली, गट्टर आदि में लघुनीति-बड़ीनीति नहीं करनी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से उसमें रहे हुए अनेक त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा होती है, असंख्य सम्मूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति

होती हैं एवं पर्यावरण प्रदूषण से अनेक आपदाओं को खुला आमंत्रण मिलता है।

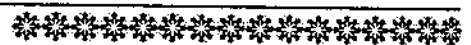
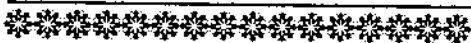
- (17) ईंधन, लकड़ी, गोबर के कंडे देखकर और ठपका देकर जलाने चाहिये ताकि बिच्छु, कंसासी आदि जीवों की हिंसा न हो।
- (18) तालाब, नदी, कुएँ आदि में कूदकर या अन्दर घुसकर स्नान नहीं करना चाहिये क्योंकि शरीर की गर्मी और पसीने से तथा शरीर के आघात से बहुत से जीव मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं।
- (19) दीपक को खुला नहीं रखना चाहिए। उसे जीवों की रक्षा के लिए ढककर रखना चाहिए।
- (20) धान्य का इतना संग्रह नहीं करना चाहिये कि उपयोग करने से पूर्व उसमें जीवोत्पत्ति हो जाये।
- (21) बुहारी (झाड़ू) कोमल रखनी चाहिये क्योंकि कठोर झाड़ू का प्रयोग करने से कोमल जीवों को पीड़ा होती है, कभी-कभी वे जीव मर भी जाते हैं।
- (22) चूल्हा, चक्की, उखल, रसोईघर में चंदरवा अवश्य बांधना चाहिये ताकि अनावश्यक हिंसा से बच

सके।

- (23) तालाब, नल, वर्षा आदि के बिना माप के पानी में स्नान नहीं करनी चाहिये।
- (24) एक बार रात्रि—स्नान करने से नगर को जलाने के समान पाप लगता है, अतः रात्रि स्नान का त्याग करना चाहिये।
- (25) वर्षाभाव में तथा गर्मी—सर्दी का आधिक्य होने पर आकुल—व्याकुल नहीं होना चाहिये क्योंकि यह सब प्रकृति के अधीन हैं और जो व्यवस्था स्वाधीन नहीं हैं, उसके लिये राग—द्वेष करना निरर्थक कर्मबंधन का प्रमुख कारण है।
- (26) घर, तीर्थस्थान, सराय आदि से निकलते समय अनावश्यक हिंसा से बचने के लिये पंखा, लाईट, नल आदि का जरूर ध्यान रखना चाहिये।
- (27) गिजर का पानी अनछना होने से उसका उपयोग नहीं करना चाहिये। कूलर का पानी दूसरे दिन बासी होने से उसका वर्जन करना चाहिये।
- (28) बासी पानी वाले घड़े को छाने हुए पानी से धोने पर भी वह बासी ही कहलाता है अतः

प्रतिदिन सूखा हुआ घड़ा ही उपयोग में लेना चाहिये।

- (29) पानी आदि का घड़ा नित्य बदलना चाहिये अन्यथा उसमें हरीतवर्णी निगोद के जीव उत्पन्न हो सकते हैं।
- (30) किसी पदार्थ में जीव पड़ जाने पर उसे धूप में नहीं रखना चाहिये। जयणापूर्वक निरवद्य स्थान पर रखना चाहिये।
- (31) फर्नीचर, पलंग, बिस्तर आदि में खटमल उत्पन्न होने पर उसे डंडे से नहीं झटकना चाहिये तथा धूप में भी नहीं रखना चाहिये क्योंकि इससे जीव हिंसा का पाप लगता है।
- (32) वाहन चलाते—चलाते मोबाईल से या व्यक्ति से बात नहीं करनी चाहिये क्योंकि ध्यान चलित हो जाने पर स्व—पर के प्राण संकट में पड़ जाते हैं।
- (33) किसी भी सावद्य—पापकारी दुकान, मकान, वस्त्र, स्थान, वाहन आदि सांसारिक पदार्थों की अनुमोदना, प्रशंसा एवं प्रेरणा नहीं करनी चाहिये। पाप बंध का यह विशेष कारण है।



(34) जो चीज जहाँ से उठायी है, पुनः वहीं पर रखनी चाहिये।

(35) गुटखा आदि नहीं चबाना चाहिये। यदि आप गुटखा, पान आदि चबाते हैं तो पीक पीकदानी में थूकना चाहिये। लोग स्वयं ही अपनी बिल्डिंग आदि की दीवारों पर, सीढ़ियों पर पीक थूक-थूक कर गंदा करते हैं, यह पढ़े-लिखे मूर्ख की सबसे बड़ी पहचान है।

प्र.553. महाराजश्री! आप सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री को भी हिंसक बताते हैं, इसे भी जरा स्पष्ट कीजिए।

उ. सौन्दर्य प्रसाधन सामग्री यथा — लिपिस्टिक, शेम्पू, नेलपॉलिस, सेन्ट, इत्र, क्रीम, साबुन आदि में बेजुबान, निर्दोष, मूक जानवरों की चर्बी, खून, हड्डी का चूर्ण एवं अनेक अवयवों-रसों को मिलाया जाता है। बाजार में आने से पहले उन पदार्थों के भयंकर एवं प्राणलेवा प्रयोग खरगोश, चूहे, बन्दर, चिड़ियाँ, कोयल आदि प्राणियों पर किये जाते हैं, और कई बार प्रयोगों के दौरान वे जीव मर

भी जाते हैं या फिर आंखों की रोशनी खो देते हैं। घण्टों तक तडफते रहते हैं।

साबुन में चर्बी मिलायी जाती है। टूथपेस्ट में अण्डे का रस, हड्डी का पाउडर आदि मिलाते हैं।

इन सबके उपयोग से जैन श्रावक, जिसका जीव दया एवं करुणा पहला कर्तव्य है, वह भी जाने-अनजाने उनकी अनुमोदना एवं उपयोग कर बैठता है। माना कि दांतों को साफ करना है तो अनेक अहिंसक आयुर्वेदिक दंतमंजन आज बाजार में उपलब्ध है। सौन्दर्य प्रसाधन से रोम — रोम से हमारे द्वारा ली जाने वाली प्राणवायु के द्वार बंद हो जाते हैं। फलतः व्यक्ति रुग्ण हो जाता है। रोग प्रतिरोधक कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं।

जरूरी है कि हम अपना निखार गुणों से करें। पदार्थ की खुशबू कुछ पलों तक पर गुणों की खुशबू जीवन भर व्यक्ति को सुगंधित, सुरक्षित और सुन्दर बनाये रखती है।



कोयला, ईट, भट्टी, आदि वस्तुएँ बनाना/बेचना इंगाल कर्म कहलाता है।

2. **वन कर्म**— पेड़-पौधे, वन आदि लगाने/कटवाने का व्यापार वनकर्म कहलाता है।

3. **शकट कर्म**— स्कूटर, कार, मोटर, रेल, जहाज, वायुयान आदि अथवा उसके पार्ट्स बनाना/बेचना शकट कर्म कहलाता है।

4. **भाटक कर्म**— जमीन, मकान, वाहन आदि किराये पर देना भाटक कर्म कहलाता है।

5. **स्फोटक कर्म**— पत्थर, कोयले आदि की खान, कुआँ, बावड़ी, तालाब आदि खुदवाने अथवा खोदने का कार्य करना, बोरिंग कार्य, जमीन तोड़ने/फोड़ने का कार्य स्फोटक कर्म कहलाता है।

6. **दंत वाणिज्य**— हाथी दांत, रेशम, कस्तूरी, सीप, शंख, सींग, कोडी, बाघ के नाखून, हरिण-बाघादिक के चर्म का व्यापार दंत वाणिज्य कहलाता है।

त्रस जीव और उन जीवों के अंगों का व्यापार करना दंत वाणिज्य कहलाता है।

7. **लक्ष वाणिज्य**— लाख, साबुन,

नील, गोंद, खार, रंग, नमक, मेनसिल आदि का व्यापार करना लक्ष वाणिज्य कहलाता है।

8. **रस वाणिज्य**— शहद, मक्खन, चर्बी, मांस, मदिरा, दूध, दही, घी, गुड़, तेल, शक्कर आदि का व्यापार करना रस वाणिज्य कहलाता है।

9. **केश वाणिज्य**— पशु/मनुष्य के बालों का, पशुओं के पंख, चमड़े आदि का व्यापार करना केश वाणिज्य कहलाता है।

10. **विष वाणिज्य**— अफीम, चरस, गांजा, जहर आदि विषेले पदार्थों का, घातक अस्त्र-शस्त्र (छुरी, तलवार, बंदूक आदि) का व्यापार करना विष वाणिज्य कहलाता है।

11. **यंत्रपीलन कर्म**— चरखा, मिल, प्रेस, कोल्हू, चक्की, घाणी आदि बनाना, लगाना अथवा औद्योगिक प्लान्ट्स की स्थापना करना यंत्रपीलन कर्म कहलाता है।

12. **निर्लाछन कर्म**— बैल, घोड़े आदि पशुओं को नपुंसक बनाना, डाम देना, पूँछ काटना, नाक-कान छेदने/छिदवाने का कार्य करना निर्लाछन कर्म कहलाता है।

13. **दवदान कर्म**— जंगल, गाँव, घर,



गोदाम, खेत में आग लगाना, पॉवर हाऊस चलाना दवदान कर्म कहलाता है।

14. **जलशोषण कर्म**— कुआँ, बावड़ी, बांध, तालाब आदि का जल सूखाना, नहर का निर्माण करना जलशोषण कर्म कहलाता है।

15. **असती पोषण कर्म**— शिकार निमित्त कुत्ते, बिल्ली, मुर्गी, तीतर आदि का पालन करना, कसाई, चमार के साथ व्यापार करना, आजीविका हेतु से/शौक के लिये वेश्या, कुलटा, जुआरी, चोर का पोषण करना असतीपोषण कर्म कहलाता है।

उपरोक्त पन्द्रह प्रकार के व्यापार करने की भगवान महावीर की आज्ञा नहीं है।

प्र.557. महाराजश्री! यदि न्याय-नीति मार्ग से व्यापार करें तो जीवन चलाना दुमर हो जाता है तो फिर हमें क्या करना चाहिये?

उ. वस्तुएँ तीन प्रकार की होती हैं—

(1) **आवश्यक**— जिनके बिना जीवन चलाना ही दुष्कर हो जैसे— घर, भोजन, कपड़ा आदि।

(2) **अनुकूल**— वे चीजें, जो जरूरी तो नहीं हैं परन्तु जीवन यात्रा को

सुगम बनाती हैं।

(3) **विलासी** (Luxurious)— वे वस्तुएँ जो जीवन में प्रमाद, विलास, अधर्म एवं अनीति को आमंत्रित करती हैं। पहली बात तो यह कि पूर्वकाल में पूणिया आदि श्रावक न्याय मार्ग से जीवन चलाते ही थे। दूसरी बात कि यदि आप सच्चाई से जीवन को टटोलेंगे तो पायेंगे कि जीवन में अधिकतर खर्चे विलासिता से सम्बन्धित हैं। यदि उन्हें जीवन से निष्कासित किया जाये तो रोटी-कपड़ा-मकान जैसी न्यूनतम आवश्यकताएँ नीति मार्ग से अवश्य ही पूर्ण की जा सकती हैं। 'सादा जीवन उच्च विचार' (Simple Living High Thinking) को यदि जीवन में स्थान दिया जाये तो व्यक्ति के पास विलासिता एवं ऐशोआराम के साधनों की कमी हो सकती है पर शान्ति और सुख का अभाव कभी नहीं हो सकता।

प्र.558. व्यवसाय में मुख्य रूप से किन गुणों की अपेक्षा होती है ?

उ. अप्रामाणिकता, मिलावट, धोखा, चोरी, महारम्भ वाले व्यापार, अन्याय, अनीति, अधर्म, इन सभी पापों के सेवन में मुख्य कारण दो हैं—

(1) अभिमान (2) लोभ ।

(i) समाज के मध्य अपना स्तर (Standard) ऊँचा उठाने के लिये, मान-सम्मान की आकांक्षा के महाचक्रवात में चक्कर लगाता हुआ व्यक्ति अधिकतम पूंजी, वाहन, महल, व्यवसाय का विस्तार करता है। यह सनातन सत्य है कि व्यक्ति धन-साधन की सुगंध से लोगों को आकर्षित कर सकता है पर कुछ समय के लिये। बिना गुणों का पूंजीपति ऐसा पुष्प है जिसका रूप सुन्दर है पर जिसमें सुरभि नाममात्र भी नहीं है। यदि जीवन में संस्कार, गुण और धर्म को स्थान दिया जाये तो लक्ष्मीहीन होने पर भी महागुणी पूणिया की तरह यशस्वी, आदरणीय और अनुकरणीय जीवन का रचनाकार बन सकता है।

(ii) गाड़ी में यदि Break न हो अथवा होशियार चालक न हो तो गाड़ी

गन्तव्य स्थल तक नहीं पहुँच सकती, उसी प्रकार धन-साधन पर सन्तोष का Break न हो एवं प्राप्त धन का समुचित सदुपयोग न हो तो वह अनर्थ के कूप में गिरा देता है।

हमारे पूर्वज कहा करते थे—

गोधन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान ।

जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूलि समान ॥

जब व्यक्ति सन्तोष रूपी अलौकिक धन को प्राप्त कर लेता है, तब हजारों स्वर्णमय मेरुपर्वत भी मिट्टी के समान प्रतीत होते हैं। असन्तोष और अभिमान आदमी को इच्छा के कांटों से लहुलुहान करके जीवन को कंटकवन बना देते हैं। यदि जीवन की चारों दिशाओं में गुण-आकर्षण, विनम्रता, सरलता एवं सन्तोष के चार महाद्वार खुल जाये तो जीवन नन्दनवन और वृन्दावन बन जाये।



कैसा हो घर-गाँव हमारा

प्र.559. जैन श्रावक को कैसे गाँव/नगर में निवास करना चाहिये?

उ. भारत की अहिंसक संस्कृति और मर्यादापूर्ण जीवन व्यवस्था पर जैसे-जैसे पाश्चात्य संस्कारों एवं आधुनिकता की काली परछायी पड़ने लगी है, वैसे-वैसे विनय, नियम, लोक-लाज, अनुशासन जैसे गुणों का खुले आम कत्ल हो रहा है।

फैशन के रंग में रंगी आज की पीढी के लिये आदर्श महावीर, राम और महात्मा गांधी न होकर नेता-अभिनेता बन गये हैं, जिनमें न सभ्यता है, न संस्कार एवं चरित्र।

पिछले एक दशक में ग्रामीण सभ्यता का जिस गति से ह्रास हुआ है, वह खतरे की लालबत्ती है।

पैसा, सत्ता, सम्पत्ति, सुविधाओं के जाल में फंसा व्यक्ति शहर की ओर भागा जा रहा है और संस्कारों की गरिमा को गंवाता जा रहा है।

आजीविका आदि कारणों से एक श्रावक को यदि परम्परा से चले आ रहे घर-गाँव को छोड़ना पड़े तो वह

भी कहाँ, किस नगर में रहना? इस प्रश्न पर पचास बार सोचता है।

श्राद्ध विधि प्रकरण में कहा गया है कि श्रावक ऐसे नगर में निवास करें, जहाँ जिनमंदिर और पौषधशाला हो, मुनि भगवंतों के चातुर्मास होते हो, विद्वान् एवं सज्जन व्यक्ति बसते हो, जैनी, गुणी एवं संस्कार सम्पन्न लोगों का सानिध्य, मार्गदर्शन प्राप्त होता हो।

जीवन निर्वाह के साथ-साथ जीवन निर्माण की भी भरपूर सम्भावनाएँ हो, शील को कोई खतरा न हो, आतंकवादी, चोर एवं फरेबी लोग जहाँ न हो, वहाँ जैन श्रावक को रहना चाहिये।

इसी प्रकार गृह स्थिति के सन्दर्भ में बताते हुए मुनीश्वर कहते हैं कि घर ऐसे स्थान पर हो कि जहाँ उपद्रव न हो अथवा उपद्रव होने पर जीवन सुरक्षा की संभावना हो, निकट ही जिनालय, उपाश्रय हो, मुनि भगवंतों के प्रवचन व तत्त्व श्रवण का पुनः-पुनः लाभ प्राप्त होता हो, सुपात्र दान एवं साधर्मिक भक्ति का लाभ

उठाया जा सके तथा पड़ोसी सज्जन, समझदार एवं धर्म प्रेमी हो क्योंकि कहा गया है 'संसर्गजा गुणदोषाः भवन्ति' बुरी संगत से बुरे एवं भली संगत से अच्छे संस्कारों का निर्माण होता है, जैसे आर्द्रकुमार ने अभयकुमार जैसे निस्वार्थ एवं शीलयुक्त मित्र की संगति के फलस्वरूप संयम एवं मोक्ष को प्राप्त किया।

प्र.560. घर कैसा होना चाहिए?

उ. एक श्रावक अपना घर उपाश्रय को मानता है। वह प्रतिदिन सोचता है कि मेरा जन्म भले ही घर में हुआ पर मृत्यु उपाश्रय में गुरुमुख से धर्म-श्रवण करता हुआ पाऊँगा। मैं सामान्य व्यक्ति की तरह लेटे-लेटे नहीं, साधु की भाँति बैठे-बैठे जाऊँगा।

घर के प्रति मोह हेतु नहीं, जीवन यात्रा में संयम-साधना का अधिकतम संयोग मिले, इस हेतु पूर्वाचार्यों ने हित शिक्षाएँ दी हैं—

- घर ऐसा हो, जिसमें अधिक जीव हिंसा न हो।
- फर्श ऐसी न हो कि जिस पर चल रहे छोटे जीव जंतुओं की जयणा न हो सके।

— हवा एवं प्रकाश का पर्याप्त आगमन होना चाहिये ताकि दिन में ट्यूब लाईट एवं पंखे का उपयोग नहीं करना पड़े।

— घर के कम से कम दरवाजे हो ताकि चोरादि का भय न रहे।

— संगमरमर का पत्थर घुटनों का दर्द बढ़ाता है। संगमरमर का अर्थ ही है— साथ में मारने वाला।

— शो-केस में साधु-साध्वी एवं उनके उपकरणों (पात्र, डंडा आदि) की प्रतिकृति रखे ताकि संयम की प्रेरणा मिलती रहे।

— हिंसक जानवरों के चित्र एवं अस्त्र-शस्त्र (तलवार आदि) दीवारों पर न लगावें। इससे घर में नकारात्मक (Negative) ऊर्जा फैलती है जो कि परिवेश को तनावग्रस्त, बेचैन एवं हिंसक बनाती है।

— चरित्रहीन नेता-अभिनेता-अभिनेत्री के फोटो न लगावे। इससे वातावरण विकृत एवं विचार दूषित होते हैं।

— रसोई गृह एवं डाइनिंग टेबल पर बड़े-बड़े शब्दों में लिखकर बोर्ड



रख देवे— जैसे—

1. रात्रि भोजन यानि नरक ले जाने वाला **High Way**.
2. प्राण जाये पर कंदमूल न खाये।
3. अभक्ष्य का करो परिहार।
वरना नरक में पड़ेगी मार।।
4. कम खाना, बार—बार नहीं खाना।
यह महावीर प्रभु का है फरमाना।।
5. खायेंगे आलू तो बनेंगे भालू।
6. खाओगे यदि गाजर मूली।
तो चढ़ोगे दुःख की शूली।।

—शयन कक्ष में आर्य स्थूलिभद्र विजय, सेठ एवं विजया सेठानी की प्रतिकृति रखें ताकि चारित्र एवं ब्रह्मचर्य की प्रेरणा मिलती रहे एवं शील की सुगंध बिखरती रहे।

प्र.561. परिवार को संस्कारों से समृद्ध कैसे बनाया जावे?

उ. परिवार में यदि धर्म व व्यवहार की समझ मिलती रहे तो वह परिवार स्वतः संस्कारों को प्राप्त कर लेता है। इस हेतु निम्न बिन्दुओं को स्मरण में रखें—

- (1) बच्चों में धर्म के बीजों का वपन करना यथा मंदिर—दर्शन व पूजन, गुरु—वंदन, प्रवचन— श्रवण, सामायिक, पूजा, प्रणाम आदि।

(2) परिवारजनों को समझाकर चार महाविगय एवं सप्त व्यसनो का त्याग करवाना।

(3) प्रातःकाल नवकार जाप, भक्तामर, प्रभु—प्रार्थना से मन को सुन्दर एवं निर्मल बनाना।

(4) रविवार आदि छुट्टी के दिनों में घुमने, टी.वी., गपशप, ताश आदि मनोरंजन में समय न गंवाकर सामूहिक तत्त्वचर्चा व सामायिक की साधना करें एवं बच्चों को हित शिक्षाएँ दें।

(5) बच्चों की दिनचर्या का एवं हाथ खर्ची (Pocket Money) का पूरा ध्यान रखना।

(6) टी.वी. के रोग से बच्चों को दूर रखें। केबल, चैनल के कनेक्शन नहीं लेना। ये परिवार की शोभा नहीं बल्कि बरबादी के कारण हैं। टी.वी. यानि पाप की बीवी। यह अकेली कभी भी नहीं आती। अधर्म और अश्लीलता का दहेज साथ में लेकर आती है।

टेलीविजन के चामत्कारिक कार्यक्रमों के चक्कर में कितने ही निर्दोष बच्चे मौत के मुँह में पहुँच गये, लड़के—लड़की घर से भाग गये, पुत्रों ने पैसे

की खातिर माँ—बाप को गोली से मार दिया।

टी.वी. अर्थात्

- जीवन, संस्कार एवं समय की बरबादी का महत्वपूर्ण आलम्बन।
- स्वच्छंदता का महारोग फैलाने वाला जहरीला कीटाणु।
- मर्यादा और अनुशासन की गर्दन को काटने वाला अमोघ शस्त्र।
- परस्पर ईर्ष्या, कुटिलता और मनमुटाव को बढ़ाने वाला शकुनि।
- बीयर बार, गुटखा, डांसबार, जुआ, क्लब आदि व्यसनों के प्रति आकर्षित करने वाला महाजादूगर।
- घर से भागकर बच्चों को विवाह करने की प्रेरणा देने वाला निकट का परिजन।
- हास्य, मनोरंजन एवं संस्कारों के नाम पर अश्लीलता एवं फूहडता परोसने वाला शर्मनाक प्रोग्राम।
- निकट भविष्य में बच्चों को इंसान से कार्टून बनाने वाली अन्तर्राष्ट्रीय संस्था।
- भारतीय एवं जैन संस्कृति को नष्ट—भ्रष्ट करके नरक एवं तिर्य्यच गति में धकेलने वाला बहुत बड़ा

मिशन।

- व्यक्ति को आत्मदर्शन, प्रभुदर्शन एवं सम्यग्दर्शन से वंचित करने वाला दूरदर्शन।

यदि आप अपना, परिवार का एवं देश का भला चाहते हो तो आज ही टी.वी. को घर से निकाल दीजिये।

Remember Everyday-

T.V. यानि

- Time waste
- Talent waste.
- Treasure waste.
- Teacher of Violence.

(7) व्यापार आदि में इतना व्यस्त न होना कि परिवारजनों को समय ही न दे पाओ। "सम्पत्ति से मूल्यवान् सम्बन्ध और पारस्परिक प्रेम है।" इस तथ्य को सदा ध्यान में रखना।

(8) किसी की भी गलती सभी के सामने न कहकर एकान्त में समझाना।

(9) किसी पर अविश्वास नहीं करना। संदेह के कारणों की पुष्टि होने तक अनुचित बर्ताव से बचना।

(10) अपशब्द का उच्चारण नहीं करना। आपसी कलह एवं वाद—विवाद से बचना।

(11) बड़े-बुजुर्गों के प्रति विनय, आदर एवं कृतज्ञता के भाव रखना। उनके आदेश-निर्देश की अवहेलना नहीं करना।

(12) परिवारजनों को प्रेम, स्नेह तथा सद्भाव के धागे में पिरोना। हिल-मिलकर रहने की शिक्षा देना। एक-दूसरे के सुख-दुःख में अपना सुख-दुःख मानना।

प्र.562. सुन्दर जीवन जीने के नुस्खे बताइये।

उ. (1) सभी के साथ मधुर व्यवहार करना।

(2) हित, मित एवं प्रिय वचन बोलना।

(3) किसी की निंदा नहीं करना।

(4) बिना पूछे किसी की चीज नहीं लेना।

(5) भेदभाव नहीं करना।

(6) सज्जनों की संगति करना।

(7) धर्म एवं कुल कलंकित हो, ऐसे कार्यों से बचना।

(8) प्रामाणिकता, सत्यवादिता व सरलता से छलकता पारदर्शी व्यवहार अपनाना।

(9) गुणीजनों की प्रशंसा करना।

(10) साधर्मिक भाई का प्रणाम से तथा अन्यधर्मी का जय-जिनेन्द्र से अभिवादन-बहुमान करना।

(11) अपशब्द, अपमानजनक शब्दों का प्रयोग न करना।

(12) समय का पाबंद होना।

(13) शांति को जीवन का सर्वोत्तम वैभव मानना।

(14) मुसीबत में धैर्य रखना।

(15) नकारात्मक सोच से बचना क्योंकि सकारात्मक सोच जीवन को स्वर्ग से सुन्दर बनाती है एवं नकारात्मक सोच नरक से खतरनाक, दर्दनाक बनाती है।

(16) किसी के भी अहित का विचार नहीं करना क्योंकि कर पाना व्यक्ति के हाथ में नहीं है पर कर्म बंध हो जाता है।

(17) कार्य के परिणाम पर सदा दृष्टि रखना।

(18) गलती होने पर तुरन्त स्वीकार करना।

(19) परिश्रम को सफलता व सुख की चाबी मानना।



मृत्यु कैसे बने महोत्सव ?

प्र.563. मृत्यु किसे कहते हैं?

उ. आयुष्य कर्म के समाप्त होने पर शरीर से प्राणों का निकलना मृत्यु कहलाती है।

प्र.564. मृत्यु होने पर आत्मा मर जाती है या जीवित रहती है?

उ. चार्वाक दर्शन के अतिरिक्त समस्त दर्शनों में माना गया है कि आत्मा का न जन्म होता है, न मृत्यु होती है। वह कृत कर्मानुसार अन्य गति, योनि एवं पर्याय को प्राप्त करता है और समस्त कर्मों का क्षय हो जाने पर भगवान बन जाता है।

शास्त्रों में कहा गया है कि जिस प्रकार वस्त्र के जीर्ण-शीर्ण होने पर उसे छोड़कर नया परिधान धारण किया जाता है, वैसे ही शरीर के शक्तिहीन एवं सड़-गल जाने पर आत्मा (जीव) उसे छोड़कर नूतन शरीर को धारण करता है।

समस्त कर्मों का क्षय होने पर जीव अशरीरी भगवद्-स्वरूप को प्राप्त हो जाता है।

प्र.565. मरण कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. दो प्रकार के—

(1) बाल मरण— अज्ञानी का मरण।

(2) पण्डित मरण— साधु/ज्ञानी का सद्भावना/समाधि युक्त मरण।

इन्हें क्रमशः अकाम और सकाम मरण कहा गया है।

प्र.566. बाल मरण कितने प्रकार का कहा गया है?

उ. बारह प्रकार का—

(1) वलय मरण— भूख-प्यास से व्याकुल होकर आर्तध्यान पूर्वक मरना।

(2) वशार्त मरण— इन्द्रिय-विषयों में आसक्त होकर मरना।

(3) अन्तर्शाल्य मरण— मन में कपट रखकर मरना।

(4) तद्भव मरण— मनुष्य, तिर्यच का मरकर पुनः उसी भव में जाना।

(5) गिरिपतन मरण— पर्वत से गिरकर मरना।

(6) तरूपतन मरण— पेड़ से गिरकर मरना।

(7) जलप्रवेश मरण— पानी में डूबकर मरना।

(8) ज्वलनप्रवेश मरण— अग्नि में जलकर मरना।

(9) विषभक्षण मरण— जहर खाकर मरना।

(10) शस्त्रावपाटन मरण— शस्त्र से कटकर मरना।

(11) वेहाय मरण— फाँसी लगाकर मरना।

(12) गृद्धप्रविष्ट मरण— मृत गिद्ध आदि के कलेवर में प्रवेश करके मरना।

इस प्रकार बाल मरण के अनेकानेक भेद होते हैं। सांसारिक पदार्थों की आकांक्षा या राग-द्वेष, क्रोध-मान-माया-लोभ, भय, दुःख के वशीभूत

होकर मरना बाल मरण कहलाता है।

प्र.567. मरते समय प्राण किन रास्तों से निकलते हैं?

उ. प्राण निकलने के पाँच रास्ते स्थानांग तथा उत्तराध्ययन सूत्र में बताये गये हैं—

- (1) पाँवों से प्राण निकलने वाले नरक में जाते हैं।
- (2) जंघा से प्राण निकलने वाले तिर्य्यच योनि में जाते हैं।
- (3) हृदय से प्राण निकलने वाले मनुष्य बनते हैं।
- (4) मस्तक से प्राण निकलने वाले देवलोक में जाते हैं।
- (5) सम्पूर्ण शरीर से प्राण निकलने वाले मोक्षगामी होते हैं।

प्र.568. मृत्यु को महोत्सव कैसे बनाया जा सकता है?

उ. जीवन की सम्पूर्ण साधना का सार है— समाधि / पण्डित मरण को प्राप्त होना। इसके लिये निम्नोक्त तथ्य ध्यान में रखने चाहिये—

- (1) मृत्यु के समय मन में संसार और पदार्थों की कोई इच्छा नहीं रखनी चाहिये।
- (2) पंचपरमेष्ठी और नवकार मंत्र का स्मरण करना चाहिये।
- (3) किसी के प्रति वैर—विरोध, राग—द्वेष के भाव न रखकर सम्पूर्ण सृष्टि के साथ मैत्री, प्रेम और करुणा के निर्मल अध्यवसायों में डूबकी लगानी चाहिये।
- (4) हाथ जोड़कर मन ही मन जीवन भर के झूठ, माया, लोभ, हिंसा, अनैतिकता आदि पापों को याद करके उनका मिच्छामि दुक्कड देना चाहिये।

(5) यदि साधु संत का सुयोग प्राप्त हो तो भोजन, वस्त्र आदि प्रदान करना एवं मांगलिक श्रवण करना चाहिये। यथासम्भव कृतपापों का प्रायश्चित्त लेना चाहिए।

(6) पद्मावती आलोचना का श्रवण करना चाहिये।

(7) दुकान, मकान आदि पापकारी स्थानों से आसक्ति हटाकर अठारह पाप स्थानों को त्रिविध त्रिविध विसराना चाहिये।

(8) मरते समय परभव में धन—साधन की इच्छा न करते हुए केवल जिनशासन, जिनवाणी एवं जिनेश्वर प्रभु की शरण की कामना करनी चाहिये।

(9) मन और धड़कन में केवल एक ही गाथा गूँजनी चाहिये —

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।

तस्मात् कारुण्य भावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर।।

हे प्रभो! जीवन भर मैंने पुत्र—परिवार, सत्ता—सम्पत्ति में शरण मानी परन्तु वे त्राण / रक्षण में असमर्थ हैं। अब मैं आपकी शरण को स्वीकार करता हूँ। आप मेरी रक्षा करें।

(10) पंचपरमेष्ठी, सम्यग्ज्ञान— दर्शन— चारित्र और तप, इन सर्वोत्कृष्ट नवपदों का उत्तम निष्काम ध्यान धरना चाहिये।

(11) श्रावक के बारह व्रत— स्वीकरण—पूर्वक पाप द्वारों को अवरूद्ध करना चाहिये।

(12) अन्त में त्रिविहार अथवा चौविहार अनशन (संधारा) लेकर आत्म— कल्याण साधना चाहिये।

जैन पर्व मीमांसा

1. जैन पर्व साधना
2. पर्व तिथि में करणीय एवं अकरणीय
3. त्यौहार कैसे मनाये ?



जैन पर्व साधना

प्र.569. जैन पर्वों के सन्दर्भ में जानकारी दीजिये।

- उ. (1) कार्तिक सुदि एकम—नूतन वीर संवत् (वर्ष) का प्रारम्भ एवं गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति। इस दिन तप—जप— आराधना आदि करके गुरुमुख से नववर्ष का सप्त स्मरण, गौतम स्वामी का रास आदि मंगलपाठ सुनने चाहिये।
- (2) कार्तिक सुदि पंचमी—यह ज्ञान पंचमी का दिन है। इस दिन ज्ञान की आराधना करने से ज्ञान, बुद्धि एवं सौभाग्य में वृद्धि होती है।
- (3) कार्तिक सु. चतुर्दशी—चातुर्मासिक चतुर्दशी की आराधना। चार महिने के पापों का प्रतिक्रमण।
- (4) कार्तिक पूर्णिमा— इस दिन शत्रुजय तीर्थ पर दस करोड़ मुनि मोक्ष में गये। सिद्धाचल पट्ट के सम्मुख चैत्यवन्दन करके तप— आराधना करनी चाहिये।
- (5) मिगसर सुदि एकादशी—यह दिन मौन एकादशी के रूप में प्रसिद्ध है। 150 कल्याणकों की आराधना के इस महापर्व को उपवास, सम्पूर्ण मौन आदि करना चाहिये।

- (6) पौष वदि दसमी—पाप—ताप— सन्ताप नाशक पार्श्वनाथ प्रभु का जन्म—कल्याणक।
- (7) माघ वदि त्रयोदशी — मेरु तेरस के रूप में प्रसिद्ध इस दिन आदिनाथ का निर्वाण कल्याणक हुआ था।
- (8) फाल्गुन सुदि चतुर्दशी —होली चौमासी चौदस की आराधना का पर्व।
- (9) फाल्गुन वदि अमावस — दादा श्री जिनकुशलसूरि स्वर्गरोहण दिवस।
‘ॐ ह्रीं श्रीं जिनकुशलसूरि सदगुरुभ्यो ह्रीं नमः’ की बीस माला फेरे तथा जप, तप पूर्वक गुरुदेव के कृपापात्र बने।
- (10) चैत्र वदि अष्टमी—वर्षोत्तप का प्रारम्भ, आदिनाथ प्रभु का जन्म एवं दीक्षा कल्याणक।
- (11) चैत्र सुदि सप्तमी से पूर्णिमा — शाश्वती ओलीजी की साधना। इन दिनों में नौ दिन शुद्ध आयम्बिल तप करें। गुरु मुख से नवपद की महिमा तथा श्रीपाल मयणा का प्रेरणास्पद कथानक

सुनते हुए पापकर्मों का सर्वथा त्याग करें। इस महान् आराधना से श्रीपाल का कुष्ठ रोग नष्ट हो गया।

- (12) **चैत्र सुदि त्रयोदशी**— भगवान् महावीर जन्म कल्याणक।
- (13) **चैत्र पूर्णिमा** — पाँच करोड़ मुनियों के साथ गणधर पुण्डरीक स्वामी सिद्धाचल तीर्थ पर मोक्ष पधारे।
- (14) **वैशाख सुदि तृतीया**—अक्षय तृतीया। वर्षातप का पारणा।
- (15) **आषाढ सुदि एकादशी**—दादा श्री जिनदत्तसूरि पुण्यतिथि। जप—तप एवं ध्यान करके दादा का वात्सल्य प्राप्त करें।
- (16) **आषाढ सुदि चतुर्दशी**— चौमासी चौदस। चातुर्मास प्रारंभ।
- (17) **श्रावण सुदि पंचमी**—श्री नेमिनाथ जन्म कल्याणक।

(18) **भाद्रपद सुदि चतुर्थी**— संवत्सरी महापर्व। पर्युषण के आठ दिनों में हिंसा, झूठ आदि का सर्वथा त्याग करके स्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त करें। पौषध, उपवास, मौन, जप, स्वाध्याय, प्रवचन श्रवण करें। पाप—प्रवृत्तियों पर पूर्णतया अंकुश लगाकर आठवें दिन मूल बारसा सूत्र का सश्रद्धा श्रवण करें। संवत्सरी महाप्रतिक्रमण के पूर्व वर्षभर में कृत पापों की निंदा करते हुए परस्पर क्षमा का आदान—प्रदान करें।

(19) **आसोज सु. सप्तमी से पूर्णिमा** — आयंबिल ओली।

(20) **कार्तिक वदि अमावस**— भगवान् महावीर निर्वाण कल्याणक/ दीपावली पर्व।



पर्व तिथि में करणीय एवं अकरणीय

प्र.570. पर्व किसे कहते हैं?

उ. पर्व यानि उत्सव, हर्ष का अवसर। जिन दिनों में आध्यात्मिकता एवं आनंद में अभिवृद्धि होती है, उसे पर्व कहते हैं।

प्र.571. पर्व कौन-कौनसे कहे गये हैं?

उ. 1. तिथि-आगमों में छह पर्व-
तिथियों का कथन किया गया है-(1-2)शुक्ला-कृष्णा अष्टमी
(3-4) शुक्ला-कृष्णा चतुर्दशी
(5) पूर्णिमा (6) अमावस्या।

वर्तमान में शुक्ल तथा कृष्णपक्ष की द्वितीया, पंचमी, अष्टमी; एकादशी एवं चतुर्दशी, जो दस पर्व तिथियाँ प्रचलित हैं, उनका कथन गणधर प्रवर श्री गौतम स्वामी द्वारा किया गया है, ऐसी अनुश्रुति है।

2. कल्याणक-जिस दिन परमात्मा का कल्याणक हुआ हो, वह भी पर्वतिथि है।

3. अड्डाई-आश्विन एवं चैत्र आदि शाश्वती अड्डाईयाँ भी पर्व स्वरूप है।

4. विविध-पर्युषण पर्व, ज्ञान पंचमी, मौन एकादशी, चैत्री पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा आदि भी पर्व दिवस है।

प्र.572. पर्वतिथि की महिमा क्यों गायी गयी?

उ. 1. जिस प्रकार लौकिक पर्वों में

व्यक्ति विशेष रूप से वस्त्र व आभूषण से सुसज्जित होकर मिष्ठान्न ग्रहण करते हैं, आनंद मनाते हैं, हर्षित होते हैं, उसी प्रकार अलौकिक पर्व दिनों में विशेषतया धर्म आराधना करनी चाहिये।

2. परमात्मा महावीर फरमाते हैं कि इन पर्वतिथियों में विशेषतः आयुबंध होता है अतः शुभायु बंध के लिये आराधना की जाती है।

3. पर्व दिनों में किया गया पाप कई गुणा अशुभ फल देने वाला है, वैसे ही पुण्य भी उत्कृष्ट एवं शत गुणित होकर शुभ फल देता है।

4. जैसे योग्य अनुकूल ऋतु में बोया गया बीज शीघ्र ही पल्लवित होता है, वैसे पर्व-तिथियों में की गयी आराधना शीघ्र तथा विशेष फलदायी होती है।

5. यथा उचित समय पर किया गया अल्पाहार भी पुष्टि-तुष्टि प्रदायक होता है, उसी प्रकार पर्वतिथियों की अल्पाराधना भी महान् फल देने वाली होती है।

प्र.573. पर्व दिनों में क्या-क्या आचरणीय है?

उ. 1. पौषधोपवास व्रत की महाराधना करना।

2. पौषध संभव न हो तो राइ-देवसी प्रतिक्रमण, सामायिक, सुपात्र

दान, स्वाध्याय आदि आराधना करना।

3. यथाशक्ति उपवास आदि तप करना।
4. किसी पर्व तिथि को एक कल्याणक हो तो एकासन, दो कल्याणक हो तो नीवी और तीन हो तो आयम्बिल तप की आराधना करनी चाहिए।
5. अधिकतम मौन एवं जाप से आत्मिक ऊर्जा का भण्डार परिपूर्ण रखना।
6. स्नात्रपूजा, मुनि-वन्दना, प्रवचन-श्रवण, देव-पूजन करना।
7. ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना।
विष्णु पुराण में कहा गया है कि जो पुरुष इन पर्वों में शरीर की शोभा करता है, अब्रह्मचर्य का सेवन करता है, वह नरक में जाता है। मनुस्मृति में तो यहाँ तक कहा गया है कि नित कामभोग करने वाला ब्राह्मण यदि इन पर्वतिथियों में कामभोग से विरत होता है तो वह नित्य ब्रह्मचारी कहलाता है।

प्र.574. पर्व तिथियों में क्या-क्या नहीं करना चाहिये?

- उ.
1. पर्वतिथियों में क्रोध-मान-माया-लोभादि अवगुणों का सर्वथा त्याग करना चाहिये।
 2. इन पावन दिनों में दुर्गतिकारक अनन्तकाय, अभक्ष्य भक्षण एवं रात्रि भोजन का सर्वथा निषेध करें क्योंकि ये सब घोर अशाता वेदनीय बंध, अपंगता, बहरापन,

कुष्ठ रोग आदि विघ्नों के प्रमुख कारण हैं।

3. मकान-दुकान का निर्माण, खेती, रंग-रोगान आदि महा-सावद्यकारी आरंभ-समारंभ का त्याग करना।
4. यद्यपि श्रावक को सर्वदा सचित्त आहार का त्याग करना चाहिए। संभव न हो तो पर्वतिथियों में अवश्यमेव सचित्त का निषेध करना चाहिये।
5. स्नान करना, शोभा-विभूषा करना, कपड़े धोना, गाड़ी-हल जोतना, यात्रा करना, अन्न कूटना-पीसना, यंत्र चलाना, फल-फूलादि तोड़ना, इन सभी का पर्व दिनों में वर्जन करना चाहिये।
6. निंदा, विकथा, चुगली, झूठ, माया आदि को मन से देश निकाला देना चाहिये।
7. मादक पदार्थ यथा अफीम, गांजा, चरस, भांग, तम्बाकु आदि का सर्वथा वर्जन करना एवं बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, गुटखा को देखकर वैसे ही आँखें हटा लेना जैसे तपती दोपहर में सूर्य पर जाती निगाहें तुरन्त हट जाती है।
8. टी.वी., इन्टरनेट, कम्प्यूटर, सिनेमा, पर्यटन, क्रिकेट, हॉकी, ताश आदि पर दृष्टिपात भी नहीं करना चाहिए।



त्यौहार कैसे मनाएँ ?

प्र.575. जन्म दिन (Birthday) मनाने की परम्परा क्या उचित है?

उ. जन्मदिन चिन्तन का दिन है। यह दिन तो बीते एक वर्ष को टटोलने का खास दिन है कि मैंने इस एक वर्ष में धर्मकार्य यथा सामायिक, पूजा, प्रतिक्रमण, माला, जाप कितना किया? मेरे क्रोध-मान-माया-लोभ कितने कम हुए?

वर्तमान में जन्म दिन मनाने की जो प्रक्रिया चल रही है, वह जैन धर्म से नितान्त विपरीत है। आर्य संस्कृति में प्रत्येक शुभ कार्य के आरंभ में दीप प्रज्ज्वलित करके जीवन में संस्कार एवं धर्म के प्रकाश की प्रार्थना की जाती है। वर्तमान में दीप बुझाया जाता है तो फिर मन में ज्ञान, संस्कार और जागरण का प्रकाश कहाँ से आयेगा।

आप यदि जन्म दिन रात्रि भोजन करके/ करवाकर, केक, चॉकलेट, केडबरी आदि अभक्ष्य पदार्थ खाकर/ खिलाकर एवं फिल्मी संगीत पर थिरककर मनाते हैं तो सावधान! ये पदार्थ आपकी उम्र और धर्म को काटने वाले हैं।

प्र.576. तो फिर यदि जन्मदिन मनाना चाहे तो कैसे मनाना चाहिये?

(1) इस दिन सामायिक, प्रभु-पूजा,

गुरु-वन्दन करके कोई सुन्दर नियम स्वीकार करें।

(2) माता-पिता, बड़े-बुजुर्गों के चरणों का स्पर्श करके आशीर्वाद ग्रहण करें।

(3) बुरी आदत का त्याग करें।

(4) सुपात्र दान करें।

(5) दीन-दुःखी की सहायता करें।

(6) क्षमा का आदान-प्रदान करें।

(7) आत्म-चिन्तन करें।

प्र.577. दीपावली किस प्रकार मनानी चाहिये?

उ. दीपावली का अर्थ है—दिल में धर्म का दीप जलाना। पर आज लोग यह भूल चुके हैं। आतिशबाजी करना यानि संस्कृति और प्रकृति का विनाश एवं विकृति को आमंत्रण।

आतिशबाजी से वायु एवं अग्नि के जीवों की हिंसा होती है। छोटे-बड़े जीव, पशु-पक्षी दुःखी होते हैं, कभी सुलगता पटाखा झोंपड़ी आदि पर गिर जाता है तो जान और माल, दोनों का नुकसान उठाना पड़ता है।

पटाखे बनाने की फैक्ट्री में एवं बेचने की दुकान में आग लगने से अनेक लोग मर जाते हैं, उसका पाप भी आतिशबाजी करने वाले को लगता है, उसके फलस्वरूप नरक में जाना पड़ता है।

पटाखों पर सरस्वती—लक्ष्मी के चित्र, कागज आदि के जलने से ज्ञान नहीं चढता है।

अनन्त जीवों को पीड़ा होने से शरीर में अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं और इसके साथ पैसों की भी बरबादी होती है।

अतः प्रिय आत्मन्! पैसों से पटाखे न खरीदकर उन्हीं पैसों से किसी गरीब की सहायता करना, बीमार को दवाई देना, गरीब मित्र को उपहार देना, ज्ञान की पुस्तकें देना, स्वयं के लिए अच्छी किताबें खरीद कर ज्ञानार्जन करना, पर पैसों की बरबादी कभी मत करना।

प्र.578. दीपावली की आराधना कैसे करें?

उ. गुरु महाराज का सानिध्य प्राप्त हो तो चतुर्दशी एवं अमावस को गुरुमुख से दीपावली का व्याख्यान सुने। यथाशक्ति बेला तप करें।

अमावस की रात में 6 से 9 तक श्री महावीर स्वामी नाथाय नमः की, 9 से 12 तक श्री महावीर स्वामी केवलज्ञानाय नमः की, 12 से 3 तक श्री महावीर स्वामी पारंगताय नमः की तथा 3 से 6 तक श्री गौतम स्वामी केवलज्ञानाय नमः, इन सभी की 20—20 माला फेरनी चाहिये। तत्पश्चात् प्रातः गुरुमुख से सप्त स्मरण, भक्तामर, बड़ी शान्ति, गौतम गुरुरास एवं दादागुरु इकतीसा का पाठ—जाप करते हुए नये वर्ष में प्रवेश करना चाहिये।

प्र.579. अन्य त्यौहारों के बारे में भी बताईये।

उ. (1)होली— होली यानि अश्लील शब्दों से मुँह को गंदा करने वाला विकृत त्यौहार! होली जलाने से असंख्य निर्दोष जीव मर जाते हैं। इससे व्यक्ति शिष्टाचार—यश खोकर निंदनीय पात्र बनता है एवं परभव में दुर्गति में जाता है। धुलेटी खेलने से पानी का अपव्यय होता है, रंग में मिले केमिकल्स शरीर को नुकसान पहुँचाते हैं। होली सज्जनों एवं धर्मप्रेमियों का उत्सव नहीं है, अब आपको सोचना है कि आप सज्जन है या...?

(2)विजयादशमी— यह पर्व भीतर में रहे दुर्गुण रूपी राक्षस को जप—तप की अग्नि में दहन करके आत्मा को कुंदन की भाँति बनाने की प्रेरणा देता है।

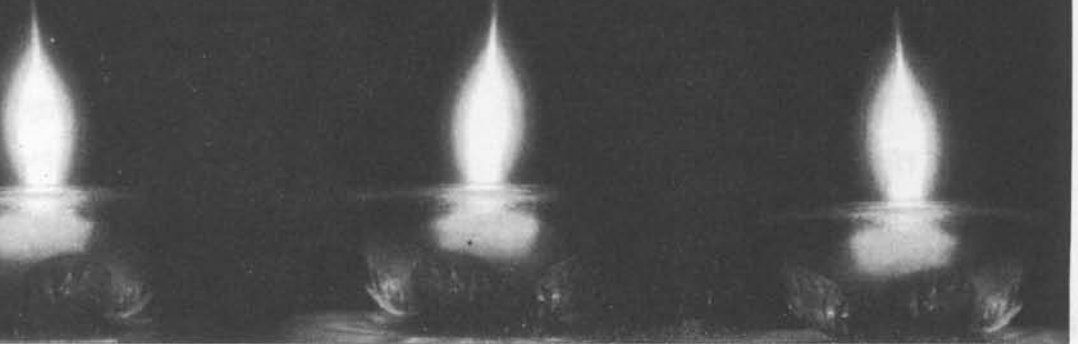
यदि रावण दहन देखने जाते हैं तो पंचेन्द्रिय प्राणी की हिंसा का पाप लगता है।

(3)अप्रैल फुल— अप्रैल फुल यानि असत्य भाषण से अपनी जिह्वा को बदनाम करना। इससे चिंता, अपघात, हृदयघात, क्लेश, रोने—पीटने से व्यक्ति के बुरे हालात उत्पन्न हो जाते हैं। अतः अप्रैल फुल मनाना है तो सोचना कि मैं स्वयं के अनन्तगुणों को भूलाकर संसार के झूठे सुख—प्रलोभन में मूर्ख बनता जा रहा हूँ अब मुझे होश में आ जाना है।



जैन इतिहास मीमांसा

1. आत्म-कल्याणी : जिनेश्वर वाणी
2. जिनशासन के चमकते सितारे
3. खरतरगच्छ का स्वर्णिम इतिहास



आत्म-कल्याणी : जिनेश्वर-वाणी

प्र.580. जिनमें परमात्मा महावीर की वाणी गुंफित है, उन जैन शास्त्रों को क्या कहा जाता है?

उ. आगम।

प्र.581. आगम से क्या अभिप्राय है?

उ. 'आगम' शब्द निर्माण में 'आ' उपसर्ग और 'गम्' धातु है।

आ यानि पूर्ण! गम यानि जानना, गति, प्राप्ति। जिसके द्वारा पूर्णता की प्राप्ति होती है अथवा जो पूर्णता के प्रति गति करवाता है, उन्हें आगम कहा जाता है।

राग-द्वेष से मुक्त तीर्थंकर को आप्त पुरुष कहा जाता है और उनकी वाणी को आगम कहा जाता है।

प्र.582. आगमों का निर्माण किस प्रकार होता है?

उ. आप्त पुरुष निर्दोष, पूर्वापरदोषमुक्त, सर्वजन कल्याणकारी युक्तिसंगत अर्थरूप उपदेश फरमाते हैं तथा गणधर भगवंत उन्हें सूत्रों में ग्रथित करते हैं।

प्र.583. आगमों को कितने भागों में विभक्त किया जा सकता है?

उ. पांच भागों में – (1) अंग (2) उपांग (3) प्रकीर्णक (4) छेद (5) मूल-चूलिका।

प्र.584. आगमों की रचना किस प्रकार होती है?

उ. गणधर भगवंत प्रभु के सम्मुख जिज्ञासा प्रकट करते हैं— भगवं! किं तत्तं? (प्रभो! तत्त्व क्या है?) तब भगवान उन्हें त्रिपदी प्रदान करते हैं—**उप्पन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा।** (उत्पन्न होता है, नष्ट होता है, स्थिर रहता है) इस त्रिपदी के माध्यम से गणधर भगवंत अन्तर्मुहूर्त मात्र में अंग आगमों की रचना करते हैं। शेष उपांग, प्रकीर्णक इत्यादि सूत्रों की रचना गणधरों के साथ-साथ श्रुतकेवली, दश पूर्वधर आदि करते हैं। प्रमाण रूप वे भी आगम ही कहे जाते हैं।

प्र.585. आगमों की भाषा कौनसी है?

उ. आगम अर्द्धमागधी भाषा में लिखे गये हैं। सामान्यतः इसे प्राकृत कहा जाता है। परमात्मा आत्म-हितार्थ अर्द्धमागधी में धर्मोपदेश देते हैं। यह भाषा वस्तुतः

मागधी तथा अठारह देशों की भाषाओं का मिश्रण होने से इसे अर्द्धमागधी कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि यह भाषा मगध राज्य के आधे क्षेत्र में प्रचलित होने से अर्द्धमागधी कहलाती है। यह भाषा वीर-काल में जनसामान्य एवं सर्वत्र प्रचलित थी।

प्र.586. अंग आगम कौनसे हैं?

उ. बारह अंग आगम कहे गये हैं, जिन्हें द्वादशांगी कहा जाता है।

(1)आचारांग— सुधर्मा स्वामी विरचित इस सूत्र में मुख्य रूप से श्रमणाचार का विवेचन है।

(2)सूत्रकृतांग— तीन सौ पैसठ पाखण्डियों एवं मत-मतान्तरों का वर्णन इस सूत्र में है।

(3)स्थानांग— एक से सौ तक की संख्या वाली चीजें इस आगम में कही गयी हैं।

(4)समवायांग— एक से दस की संख्या वाली बातें इसमें वर्णित है।

(5)व्याख्या प्रज्ञप्ति— भगवती के नाम से प्रसिद्ध इस विशाल आगम में जीव, अजीव, पुद्गल, आकाश, स्वमत, परमत, लोक, परलोक आदि शताधिक विषयों से युक्त छत्तीस हजार प्रश्नोत्तर हैं।

(6)ज्ञाताधर्मकथांग— इस छट्ठे आगम में धर्म कथाओं एवं उदाहरणों का कथन किया गया है।

(7)उपासकदशांग— प्रभुवीर के आनंद आदि प्रमुख दस श्रावकों का विवेचन इस सूत्र में है।

(8)अन्तकृतदशांग— जन्म-मरण की परम्परा का अन्त करने वाले साधकों का वर्णन इस सूत्र में है।

(9)अनुत्तरौपपातिकदशांग— इस आगम में उन साधकों की विवेचना है, जो मृत्यु प्राप्त कर अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए हैं तथा पुनः मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्षगामी होंगे।

(10)प्रश्नव्याकरण— इस सूत्र में हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रह, इन पंच आश्रवों का एवं उनके संवर का वर्णन है।

(11)विपाक सूत्र— इसमें उदाहरण शैली में कर्म के सुख व दुःख रूप फल (विपाक) का वर्णन है।

(12)दृष्टिवाद — यह आगम विच्छेद को प्राप्त हो चुका है। इसके पांच विभागों में से एक में चौदह पूर्वों का विवेचन था।

प्र.587. महाराज श्री ! पूर्वांग साहित्य

का विच्छेद कैसे हुआ?

उ. भगवान महावीर के निर्वाण के 170 वर्षोपरान्त श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु का स्वर्गवास होने पर अंतिम चार पूर्व अर्थ की दृष्टि से विच्छेद को प्राप्त हो गये। आचार्य स्थूलिभद्र के साथ ये चार पूर्व शब्द से भी विलुप्त हो गये। वज्रस्वामी तक दस पूर्व, दुर्बलिका पुष्यमित्र तक नौ पूर्व ही रहे और क्रमशः देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक पूर्व विच्छेद होता रहा। देवर्द्धिगणि स्वयं एक पूर्व के ज्ञाता थे।

पूर्व ज्ञान—विच्छेद के कारण—

- (1) बारह—बारह वर्षों के भयंकर दुष्काल में अनेक श्रुतकेवली काल कवलित हो गए।
- (2) निर्दोष भिक्षा दुष्कर होने से ज्ञानी साधु अनशन कर स्वर्गवासी बन गये।
- (3) राजा—महाराजा जैन धर्म—विरोधी थे। उनके कारण अनेक विशिष्ट ज्ञानी स्वर्गवासी हो गए।

प्र.588. तो क्या हुआ महाराजश्री! आगमों का लेखन भी तो संभवित था?

उ. प्रभु महावीर ने लेखन—कला का निषेध किया है क्योंकि उससे स्वाध्याय में प्रमाद आता है, पुस्तक

नामक उपधि रखने की जिनाज्ञा नहीं है तथा आगम लेखन तथा उनके रख—रखाव में जीव हिंसा होने से संयम दूषित होता है। इन कारणों से सुविधा होने पर भी लेखन संभव न हो सका।

प्र.589. तो फिर आगम लेखन विधा का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ?

उ. पूर्व में श्रुति परम्परा थी, साधु श्रवणपूर्वक सूत्रों को स्मृति में रखते थे परन्तु काल—प्रभाव से स्मृति बल क्षीण होता गया तब देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने जिनवाणी सुरक्षा हेतु दूरदर्शिता पूर्वक आगम लेखन का प्रशंस्य/स्तुत्य कदम उठाया।

प्र.590. बारह उपांग सूत्रों में किस विषय की विवेचना की गयी है?

उ. बारह उपांग आगम—

(1) औपपातिक सूत्र— आचारांग के इस उपांग सूत्र में देव, नारकी का औपपातिक जन्म, मोक्ष आदि का रोमांचक विवेचन है।

(2) राजप्रश्नीय सूत्र— सूत्रकृतांग के इस उपांग सूत्र में राजा प्रदेशी को केशी, गणधर का धर्मबोध, सूर्यभदेव द्वारा समवसरण रचना, बत्तीस प्रकार के नाटक इत्यादि

का वर्णन है।

(3) **जीवाभिगम सूत्र**— स्थानांग का यह उपांग सूत्र जीव, अजीव, ढाई द्वीप, नरक, देवलोक और विजयदेव द्वारा जिन-प्रतिमा पूजा आदि विशिष्ट विषयों से युक्त है।

(4) **प्रज्ञापना सूत्र**— जैन दर्शन के तात्त्विक पदार्थों का विस्तृत विवेचन इसमें हुआ है। यह समवायांग का उपांग है तथा बारह उपांगों में सर्वाधिक विस्तृत होने से इसे लघु भगवती भी कहा जाता है।

(5) **सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र**— सूर्य-चन्द्रादि की गति आदि खगोल सम्बन्धी अति सूक्ष्म दृष्टि से गणित सूत्र इसमें टंकित है।

(6) **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र**— इसमें भूगोल सम्बन्धी छह आरों, नवनिधि, मेरुपर्वत आदि अनेक विषय अंकित हैं।

(7) **चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र**— इसमें चन्द्र हानि-वृद्धि, गति आदि घटनाएँ विवेचित हैं।

(8) **निरयावलिका सूत्र**— इसमें कोणिक सम्राट् एवं चेडा राजा के मध्य हुए भयंकर युद्ध का वर्णन है।

(9) **कल्यावतंसिका सूत्र**— इसमें

श्रेणिक सम्राट् के काल आदि दस पौत्रों की दीक्षा, तप-साधना, देवलोकगमन आदि रसप्रद वर्णन है।

(10) **पुष्पिका सूत्र**— पुष्पक विमान में बैठकर प्रभु वीर के वन्दनार्थ आने वाले देवी-देवताओं के पूर्वभव का विशेष विवेचन इसमें है।

(11) **पुष्पचूलिका सूत्र**— बड़ी शांति स्तोत्र में वर्णित श्रीं, ह्रीं, धृति, मति आदि दस देवियों के पूर्वभवों के कथानक इस सूत्र में है।

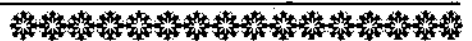
(12) **वृष्णिदशा सूत्र** — बलभद्र के बारह पुत्रों के नेमिनाथ प्रभु के पास दीक्षा-ग्रहण व देवलोक गमन का सुन्दर वर्णन इस आगम में किया गया है।

प्र.591. दस प्रकीर्णक सूत्र कौनसे हैं ?

उ. (1) **चतुःशरण** — चार शरणों का महत्त्व, दुष्कृत-गर्हा एवं सुकृत-अनुमोदना की मार्मिक व्याख्या इस आगम में है।

(2) **आतुर प्रत्याख्यान**— बाल, पण्डित, बाल पण्डित मरण के अतिरिक्त अन्तिम समय की आराधना विधि का निर्देश इस सूत्र में है।

(3) **महाप्रत्याख्यान** — इस आगम में श्रमण योग्य अन्तिम आराधना



विधि का विवेचन है।

- (4) **भक्त परिज्ञा**— इस सूत्र में चार आहार का त्याग करके अनशन विधि का कथन है।
- (5) **तन्दुलवैचारिक**— अशुचि भावना की विवेचना से युक्त यह आगम वैराग्य रसवर्द्धक है।
- (6) **गणि विद्या**— ज्योतिष सम्बन्धी दिन, तिथि, लग्न, निमित्त आदि बातें इस ग्रंथ में बताई गयी हैं।
- (7) **चन्द्र विद्या**— राधावेध की भाँति आराधना में स्थिरता रखने का उपदेश इस ग्रन्थ में है।
- (8) **देवेन्द्रस्तव** — इन्द्रों द्वारा प्रभु स्तवना, उनका स्थान, आयुष्य, बल एवं सिद्धशिंला का स्वरूप इसमें वर्णित है।
- (9) **मरण समाधि** — समाधि मरण की दिव्य प्रक्रिया, पाण्डवों के दृष्टांत आदि इस आगम के विवेच्य विषय हैं।
- (10) **संस्तारक** — इसमें वर्णित अन्तिम समय में क्षमापना—विधि, भाव संथारा आदि का स्वरूप पठनीय है।

प्र.592. छह छेद सूत्रों में किसकी विवेचना की गयी है?

- उ. (1) **निशीथ** — श्रमणाचार, प्रायश्चित्त, समाचारी से युक्त निशीथ अर्थात् मध्यरात्रि में शिष्य को पढ़ाने योग्य

यह ग्रंथराज है।

- (2) **महानिशीथ** — वर्धमान विद्या व नवकार की महिमा एवं उपधान तप—स्वरूप—संयम शुद्धि की महत्ता आदि अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य इस आगम में है।
- (3) **दशाश्रुतस्कंध**— इसमें बीस असमाधि स्थान, इक्कीस सबल दोष आदि का वर्णन है। कल्पसूत्र में वर्णित साधु समाचारी इस सूत्र के 8वें पर्युषणा कल्प से ही ली गयी है।
- (4) **वृहत्कल्प** — प्रत्याख्यान प्रवाद नामक पूर्व से उद्धृत इस सूत्र में श्रमण सम्बन्धी मूल व उत्तर गुणों के साथ उत्सर्ग—अपवाद मार्ग भी वर्णित है।
- (5) **व्यवहार सूत्र**—पापों की आलोचना के सम्बन्ध में विस्तृत अधिकार के साथ प्रायश्चित्त, पद आदि की विवेचना इस सूत्र में है। इसे दण्ड या नीति शास्त्र भी कहा जा सकता है।
- (6) **जीतकल्पसूत्र**—प्रायश्चित्त विधान से सम्बन्धित इस गंभीर ग्रंथ का पारायण गीतार्थ गुरुराज ही कर सकते हैं।

प्र.593. चार मूल सूत्र कौनसे हैं ?

उ. (1) आवश्यक सूत्र — चतुर्विध संघ हेतु छह आवश्यक, पद-योग्यता, पांच व्यवहार आदि तथ्यों से पूर्ण यह सूत्र है।

(2) दशवैकालिक सूत्र— दस अध्ययन एवं दो चूलिकाओं से अलंकृत साधु-समाचारी व संवेग-निर्वेद पोषक उपदेशों से परिपूर्ण यह ग्रंथ आज सर्वाधिक महत्त्व रखता है।

(3) उत्तराध्ययन सूत्र — कर्म, वैराग्य, विनय, साधना, अप्रमाद, त्याग, लेश्या आदि अनेक विषयों एवं रसप्रद घटनाओं से सजा यह ग्रन्थ परमात्मा महावीर की अन्तिम देशना का साक्षी स्वरूप है।

(4) ओघ-पिण्ड निर्युक्ति सूत्र — गौचरी से सम्बन्धित 42 दोषों से बचने की विवेचना इस सूत्र में है।

प्र.594. दो चूलिकाएँ कौनसी हैं?

उ. (1) नदी सूत्र — पाँच प्रकार के ज्ञान, द्वादशांगी आदि की संक्षिप्त विवेचना को समेटे यह ग्रन्थ मंगल स्वरूप है।

(2) अनुयोगद्वार सूत्र— यह समस्त आगमों को समझने की शैली समझाता है।

प्र.595. आगमों के गूढ रहस्यों को समझने के लिये कौनसे साहित्य लिखे गये ?

उ. आगम ज्ञान के गंभीर सागर है। इसकी अतल गहराईयों में छिपे रहस्यों के मोती पाने हेतु पाँच प्रकार का व्याख्या-साहित्य लिखा गया, जिसे पंचांगी कहा जाता है।

(1) निर्युक्ति— एक पद, शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। उनमें से प्रसंग तथा कालानुरूप कौनसा अर्थ ग्रहण करना, यह निर्युक्ति साहित्य बताता है। इसमें शब्दों के निश्चित अर्थों का ही प्रतिपादन किया गया है। इनकी भाषा प्राकृत है।

निर्युक्तिकार के रूप में आचार्य भद्रबाहु प्रसिद्ध है। आज दस आगमों पर निर्युक्तियाँ प्राप्त होती हैं।

(2) भाष्य— निर्युक्तियों में मुख्यतः विशिष्ट शब्दों की ही विवेचना होने से अर्थ गूढ तथा संक्षिप्त होते हैं। उन्हें विस्तारपूर्वक समझने के लिये प्राकृत भाषा में जिन पद्यात्मक ग्रन्थों की रचना हुई, वे भाष्य कहलाये।

आगम मर्मज्ञ जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण तथा संघदासगणि भाष्यकार के रूप

में प्रसिद्ध हैं।

(3) **चूर्णि** — चूर्णियों की रचना भाष्य के उपरान्त हुई। इनकी रचना गद्यात्मक तथा भाषा प्राकृत-संस्कृत मिश्रित है। यद्यपि जैन दर्शन में श्रद्धा की प्रधानता है तथापि चूर्णियों में तर्क प्राधान्य तौर पर दृष्टिगत होता है।

प्रमुख चूर्णिकार जिनदासगणि महत्तर हुए। इनके अतिरिक्त सिद्धसेनसूरि, प्रलम्बसूरि, अगत्स्य सिंह स्थविर इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

(4) **वृत्ति (टीका)**—वृत्ति साहित्य में आगम विवेचना के साथ जैनेतर दर्शनों का भी वर्णन है। परमत खण्डन एवं स्वमत मण्डन से युक्त वृत्तियाँ संस्कृत भाषा में लिखी गयी।

जिनभद्रगणि, क्षमाक्षमण, हरिभद्रसूरि, शीलाकाचार्य, वादिवेताल शान्तिसूरि, अभयदेवसूरि, मलयगिरि, मलधारी हेमचन्द्र आदि अनेक आचार्यों ने गहन पाण्डित्य एवं अनुपम मेधा से परिपूर्ण वृत्तियों का निर्माण किया। आगम के अतिरिक्त अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों पर भी टीकाएँ लिखी गयी।

(5) **टब्बा** — वृत्ति की भाषा जनसामान्य

के लिये कठिन होने से अनेक आचार्यों, मुनियों ने सरल संस्कृत भाषा में टब्बों की रचना की।

प्र.596. आगमों का अनुवाद कितनी भाषाओं में हो चुका है?

उ. हिन्दी, गुजराती एवं अंग्रेजी में। आंग्ल भाषा में जर्मन विद्वान् डॉ हर्मन जेकोबी ने आचारांग, सूत्रकृतांग, उत्तराध्ययन और कल्पसूत्र, इन चार का अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त भी अनेक आगमों का अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है। हिन्दी, गुजराती में समस्त आगम अनुवादित हो चुके हैं।

प्र.597. आगम कितने माने जाते हैं ?

उ. श्वेताम्बर परम्परा में मूर्तिपूजक परम्परा पैतालीस आगमों को मानती है। स्थानकवासी एवं तेरापंथी परम्परा, जिन आगमों में मूर्तिपूजा का विशेषतः उल्लेख है, उन्हें मूल वाणी नहीं मानती है। वह बत्तीस आगमों को मानती है। दिगम्बर परम्परा एक भी आगम को मूल वाणी नहीं मानती है। उसे कुंदकुंदाचार्य रचित समयसार, नियमसार, षट्खण्डागम आदि ही मान्य हैं।



जिनशासन के चमकते सितारे

प्र.598. जिनशासन के प्रभावक आचार्यों का परिचय दीजिये।

- उ.
1. **सुधर्मा स्वामी**— ये परमात्मा महावीर के पंचम गणधर थे। श्वेताम्बर परम्परा सुधर्मा स्वामी को और दिगम्बर परम्परा गौतम स्वामी को प्रभु वीर का पट्टधर मानती है।
 2. **जम्बूस्वामी**— पाँच सौ सत्ताईस व्यक्तियों के साथ दीक्षा लेने वाले जम्बू स्वामी को भला कौन नहीं जानता। सुधर्मा स्वामी के चरणों में दीक्षित हुए और रत्नत्रयी की विशुद्ध आराधना की। उनके मोक्ष गमन के बाद कोई भी मोक्ष में नहीं गया। इसलिये कहा भी जाता है— 'जम्बू जड गया ताला रे।'
 3. **प्रभव स्वामी**— ये थे तो चोर परन्तु धर्म कथा के द्वारा जम्बूकुमार ने इनके मन के चोर को चुरा लिया। उनके धर्मोपदेश से पाँच सौ चोरों के साथ सुधर्मा स्वामी के पास दीक्षित हुए एवं जम्बू स्वामी के पट्ट को शोभायमान किया।
 4. **शय्यभवसूरि**— प्रभवस्वामी के पट्ट प्रभावक शय्यभवसूरि गर्भवती पत्नी को छोड़कर दीक्षित हुए। बाद में पुत्र मनक मुनि के निमित्त दशवैकालिक सूत्र की रचना की।
 5. **भद्रबाहु स्वामी**— चतुर्दश पूर्वधर एवं उवसगहरं स्तोत्र के रचयिता भद्रबाहु स्वामी शासन के महान् सूरिपुरन्दरों में से एक है।
 6. **आर्य स्थूलिभद्र**— ब्रह्मचर्य व्रत की बेजोड़ आराधना से चौरासी चौबीसी तक आपका नाम अमर रहेगा। आचार्य श्री भद्रबाहु के सानिध्य में चौदह पूर्वों का सूत्र से एवं दस पूर्वों का अर्थ से अध्ययन किया।
 7. **ब्रजस्वामी**— आपको पूर्व देवभव में गौतम स्वामी ने प्रतिबोध दिया था। ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से पालने में झूलते— झूलते आपने ग्यारह अंग आगम कण्ठस्थ लिये थे। आप अंतिम दस पूर्वधर थे।
 8. **आर्यरक्षित सूरि**— आगम रहस्य ज्ञाता आर्यरक्षितसूरि ने आगमों को चरण, करण, द्रव्य, कथा, इन चार भागों में विभक्त किया।

9. **हरिभद्रसूरि**— ये थे तो अहंकारी ब्राह्मण परन्तु याकिनी महत्तरा से प्रतिबुद्ध होकर जैन प्रव्रज्या अंगीकार की । संस्कृतज्ञ, परम विद्वान् हरिभद्रसूरि ने 1444 ग्रंथों की रचना की ।

10. **आचार्य शीलांक**— संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् शीलांकाचार्य ने नौ अंगों पर टीकाएँ लिखी थी परन्तु सम्प्रति आचारंग एवं सूत्रकृतांग की ही वृत्तियाँ उपलब्ध हैं ।।

11. **वादिवेताल शान्तिसूरि**— ये राजा भोज की सभा में चौरासी वादियों को पराजित करने से 'वादिवेताल' कहलाये । उत्तराध्ययन वृत्ति, जीव विचार प्रकरण आदि ग्रंथों की रचना की ।

12. **आचार्य मलयगिरि**— प्रचण्ड प्रतिभा के धनी मलयगिरि जैनागम, दर्शन, सिद्धांत, गणित आदि अनेक विषयों में परम प्रवीण थे । आपने विपुल परिमाण में साहित्य रचना की ।

13. **सिद्धसेन दिवाकर**— कल्याण मंदिर स्तुति से शिवलिंग के गर्भ में स्थित पार्श्वनाथ की अतिशय

युक्त प्रतिभा प्रकट करके उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य को प्रतिबोध दिया ।

14. **हेमचन्द्राचार्य**— बेजोड़ प्रतिभा थी आपकी । हर विषय के पारगामी, 'कलिकाल सर्वज्ञ' नाम से प्रसिद्ध हेमचन्द्राचार्य ने साढ़े तीन करोड़ श्लोकों की रचना कर साहित्य जगत् को समृद्ध किया । कुमारपाल सम्राट् आपसे अत्यन्त प्रभावित थे ।

15. **यशोविजयोपाध्याय**— संस्कृत—न्याय के प्रकाण्ड विद्वान् यशोविजयजी ने न्याय विषयक ग्रंथों का ही आलेखन नहीं किया अपितु संस्कृत में भी अनेक मौलिक ग्रन्थ रचे । आपकी काव्य प्रतिभा अद्भुत थी । आप नव्य न्याय प्रणेता के रूप में प्रसिद्ध हैं । जिनेश्वरसूरि, नवांगी वृत्तिकार अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनकुशलसूरि आदि शासन प्रभावक आचार्यों का वर्णन खरतरगच्छ के इतिहास से जानने योग्य है ।



खरतरगच्छ का स्वर्णिम इतिहास

प्र.599. वर्तमान में जैन धर्म में कितनी शाखाएँ प्रचलित हैं?

उ. मुख्यतः दो शाखाएँ प्रचलित हैं—

(1) श्वेताम्बर (2) दिगम्बर

(1) **श्वेताम्बर** — जो श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। इसमें भी मुख्य दो भेद हैं—

(i) **मंदिर-मूर्तिपूजक** — इसमें वर्तमान में कुल पांच संप्रदाय हैं—खरतरगच्छ, आंचलगच्छ, तपागच्छ, पार्श्वचन्द्रगच्छ और त्रिस्तुतिक गच्छ।

(ii) **अमूर्तिपूजक** — स्थानकवासी और तेरापंथी।

(2) **दिगम्बर**— ये वस्त्र रहित होते हैं तथा स्त्री-मुक्ति का निषेध करते हैं।

प्र.600. श्वेताम्बरीय सम्प्रदायों का उद्भव कब हुआ ?

उ. 1. खरतरगच्छ का — वि.सं. 1075 में जिनेश्वरसूरि से।

2. आंचलगच्छ का — वि.सं. 1169 में आर्यरक्षितसूरि से।

3. तपागच्छ का — वि.सं. 1285 में जगच्चन्द्रसूरि से।

4. स्थानकवासी का — वि.सं. 1531

में लोकाशाह से।

5. पार्श्वचन्द्रगच्छ का—वि.सं. 1575 में पार्श्वचन्द्रसूरि से।

6. तेरापंथ का—वि.सं. 1816 में आचार्य भिक्षु से।

7. त्रिस्तुतिक मत का — वि.सं. 1925 में राजेन्द्रसूरि से।

प्र.601. खरतरगच्छ का प्रारंभिक काल बताओ।

उ. यद्यपि परमात्मा महावीर का शासन अद्यावधि पर्यन्त अविच्छिन्न रूप से चल रहा है तथापि मध्यकाल में यति परम्परा चली, जिसमें जिनाज्ञा के विपरीत साधुजन पैसा रखते, छत्र धारण करते, ताम्बुल चबाते, मन्दिरों में रहते।

11वीं सदी का काल भी यतियों की बहुलता से परिपूर्ण था। आचार्य बुद्धिसागरसूरि एवं श्री जिनेश्वरसूरि ने जिनोक्त तत्त्व को समझकर यति परम्परा का त्याग किया और आचार्य वर्धमानसूरि के शिष्य बने।

एक बार जब वे पाटण में आये तब जिनेश्वरसूरि और यतिप्रमुख सुराचार्य के मध्य पंचासरा पार्श्वनाथ

के मन्दिर में दुर्लभ सम्राट् की अध्यक्षता में शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें जिनेश्वरसूरि विजयी हुए। तब दुर्लभ राजा ने खड़े होकर आचार्यवर को कहा— आपका आचार—विचार, ज्ञान—ध्यान और साधना उत्तम है, कसौटी पर खरी उतरी है। आप खरे हैं। तब से आपका अनुयायी वर्ग खरतरगच्छीय कहलाने लगा।

प्र.602. खरतरगच्छ के प्रमुख चारित्रप्रिय, आचारज्ञ एवं विद्वद्गुरु आचार्यों की परम्परा के बारे में बताइये।

उ. (1)आचार्य जिनेश्वरसूरि— खरतरगच्छ के आप आद्य आचार्य थे। जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, आदि अनेक आपके प्रभावशाली शिष्य हुए।

आपका संस्कृत, प्राकृत भाषा पर गजब का अधिकार था। आपने पंचलिंगी प्रकरण, षट्स्थानक प्रकरण लिखे तो न्याय क्षेत्र में जैन दर्शन को प्रमालक्ष्म के द्वारा आलेखित करने का श्रेय भी आपको ही जाता है।

(2)आचार्य जिनचन्द्रसूरि—अल्पायु में चारित्र पथ स्वीकार कर सुन्दर ज्ञानार्जन किया। संवेग, विराग रस से परिपूर्ण विस्तृत संवेगरंगशाला ग्रन्थ से आपकी विद्वत्ता से

परिचित हुआ जा सकता है।

(3)आचार्य अभयदेवसूरि—नवांगी वृत्तिकार के रूप में समस्त गच्छों में प्रसिद्ध, माननीय एवं पूजनीय आचार्य अभयदेवसूरि खरतरगच्छ की अनमोल धरोहर है।

अशाता वेदनीय कर्म — उदय से शरीर में कुष्ठ रोग हो जाने पर आप अनशन करने को उद्यत हुए, तब शासन देवी ने प्रकट होकर कहा— आचार्यवर! आप शासन के अप्रतिम विद्वान होंगे, यह मेरा ज्ञान कहता है। आपश्री अनशन स्थगित करें और स्तंभन नगर के बाहर सेढी नदी के तट पर भूगर्भ में स्थित पार्श्व प्रभु की प्राचीन प्रतिमा को प्रकट करें। उसके प्रक्षाल से आपका कुष्ठ रोग नष्ट हो जायेगा।

खरतरगच्छ की परम्परा में बोला जाने वाला जयतिहुअण वही स्तोत्र है, जिसकी स्तुति से स्तंभन पार्श्वनाथ प्रकट हुए। उस प्रतिमा के प्रक्षाल जल से सूरिप्रवर का कुष्ठ रोग नष्ट हुआ।

आपने स्थानांग से विपाक सूत्र, इन नौ आगमों पर विस्तृत टीका लिखी अतः आपको नवांगी वृत्तिकार कहा जाता है। पंचाशक प्रकरण वृत्ति आदि

भी आपके प्रमुख ग्रंथ हैं।

(4) **आचार्य जिनवल्लभसूरि**— श्री अभयदेवसूरि के पट्टधर विद्वद्वर्य आचार्य श्री जिनवल्लभसूरि चारित्र-निष्ठ आचार्य थे। आपने तत्कालीन फैली शिथिलताओं पर चोट करते हुए संघपट्टक ग्रंथ का निर्माण किया। प्रतिभावान् सूरिजी ने पिण्डविशुद्धि प्रकरण आदि ग्रन्थों, उल्लासि आदि सैंकड़ों स्तोत्रों की रचना की।

आपने दस हजार अजैनों को जैन बनाकर संघ का विस्तार किया।

(5) **दादा श्री जिनदत्तसूरि** — जिनशासन और खरतरगच्छ के चमकते सितारे श्री जिनदत्तसूरि का जन्म धोलका नगर में वि.सं. 1132 में हुआ था। मात्र नव वर्ष की अल्पायु में श्री धर्मदेव गणि का पावन शिष्यत्व स्वीकार कर सोमचन्द्र मुनि बने। तीक्ष्ण प्रतिभा और अप्रतिम मेधा से अल्पकाल में ही संस्कृत, प्राकृत, न्याय, व्याकरण, आगम आदि का गहन अभ्यास कर मात्र चालीस वर्ष की आयु में आचार्य बने और जिनदत्तसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आपका काल खरतरगच्छ के लिये

स्वर्णिम युग था। आपका उच्च चारित्र बल और आत्म साधना इतनी गजब की थी कि उससे प्रभावित होकर पांच पीर, बावन वीर और चौसठ जोगणियाँ आपको समर्पित हो गयी। विक्रमपुर में फैली महामारी का निवारण आपके द्वारा उपदिष्ट सप्त स्मरण से हो गया। गौतम गणधर के बाद एक साथ बारह सौ दीक्षाएँ आज तक मात्र आपके द्वारा सम्पन्न हुई, यह एक गौरवपूर्ण घटना है।

एक लाख तीस हजार नूतन जैनों के एवं शताधिक गोत्रों के निर्माण में आपका उज्ज्वल कर्तृत्व सहज ही परिर्लक्षित होता है।

आपने उपदेश रसायन, गणधर सार्ध शतक आदि अनेक ग्रंथों की रचना की। अपभ्रंश भाषा में आपने विपुल साहित्य लिखा।

वि.सं. 1211 में अजमेर में स्वर्गगत होने पर अग्नि संस्कार में आपका चोलपट्टक, चदर और मुँहपत्ति नहीं जली जो आज भी जैसलमेर के ज्ञान भण्डार में दर्शनार्थ विद्यमान हैं।

(6) **मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि** — केवल छह वर्ष की अल्पायु में दीक्षित होकर मात्र आठ-वर्ष की अल्प आयु में आचार्य पद पर



प्रतिष्ठित होने वाले द्वितीय दादा गुरुदेव आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरि का साधना बल गजब का था। आप आत्म साधना और ज्ञान साधना के पर्याय थे। इस दिव्य साधना के परिणामस्वरूप ही आपका वीर्य एवं आन्तरिक शक्तियाँ ऊर्ध्वगामी होकर मणि के रूप में ललाट में स्थापित हो गयी, इसी कारण आप मणिधारी के रूप में सुप्रसिद्ध हैं। दादा जिनदत्तसूरि के द्वारा दिल्ली जाने का निषेध करने पर भी योगानुयोग आप दिल्ली पधारे और भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी को 26 वर्ष की अल्पायु में ही स्वर्गवास को प्राप्त हो गये। दिव्य ज्ञान बल से अपना अन्तिम काल जानकर सूरिवर ने संघ को मणि के संदर्भ में सूचित किया था पर शोकमग्न संघ विस्मृत कर गया तथा मणि किसी और के हाथ में पहुँच गयी। आपका स्वर्गधाम दिल्ली महरौली (बड़ी दादावाड़ी) के नाम से सुप्रसिद्ध है।

(7) श्री जिनपतिसूरि – खरतरगच्छ के प्रभावक व विद्वद्भर्य आचार्यों की श्रेणी में प्रतिष्ठित जिनपतिसूरि ने

अपने जीवन में तर्क, ज्ञान एवं प्रज्ञा के महाबल पर छत्तीस महावादियों को परास्त किया था, अतः षड्त्रिंशत्वादि विजेता के रूप में प्रसिद्ध हुए। जिनपति सूरिवर ने पंचलिंगी प्रकरण वृत्ति, संघपट्टक वृत्ति इत्यादि ग्रंथों का सर्जन किया।

(8) दादा श्री जिनकुशलसूरि – संकटहरण एवं कुशलकरण दादा श्री जिनकुशलसूरि शासन के वे चमकते कोहिनूर हैं, जिन्होंने जीवन-परिवर्तन की लहर चलायी। व्यसनों में डूबे पचास हजार अजैन परिवारों ने आपकी प्रेरणा से जैनधर्म स्वीकार किया। आपके सेवक काला एवं गौरा भैरव आज भी भक्तों के विघ्न हरने में तत्पर हैं। देराउर, जो आज पाकिस्तान में है, वहाँ आपका स्वर्गवास हुआ था।

चतुर्दशी को बोली जाने वाली 'द्रे द्रे कि धपमप' स्तुति आपके द्वारा ही रचित है।

(9) श्री जिनप्रभसूरि – अनेक सिद्धियों के धारक जिनप्रभसूरि का प्रभाव दिग्दिगन्त में व्याप्त था। सम्राट् मुहम्मद तुगलक आपकी साधना

से प्रभावित था। आपश्री ने अपनी अगाध प्रतिभा के द्वारा विविध तीर्थ कल्प, विधिमार्ग प्रपा आदि महत्वपूर्ण शास्त्रों की रचना की।

(10) **श्री जिनभद्रसूरि**— आचार्य जिनभद्रसूरि का श्रुत-संरक्षण के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान रहा है। आपने जैसलमेर, लिम्बड़ी, खम्भात, पाटण, आशापल्ली, नागौर, देवगिरि आदि अनेक स्थानों पर ज्ञान भण्डार स्थापित किये। अपने जीवनकाल में आपने अनेक प्राचीन, अलभ्य एवं महत्वपूर्ण ग्रंथ लिखवाकर सुरक्षित किये।

(11) **श्री जिनमाणिक्यसूरि** — यद्यपि आचार्यवर यति परम्परा में दीक्षित थे परन्तु शास्त्राध्ययन करने के बाद जब मूल धर्म को जाना तब क्रियोद्धार का निर्णय करके क्रियान्वित करने हेतु कुशल-धाम देराउर पधारे! चरण वन्दना करके आते समय तृषा का महान् परीषह उत्पन्न हुआ। श्रीसंघ ने रात्रि में जल ग्रहण करने का निवेदन किया परन्तु आप तनिक भी विचलित नहीं हुए और उसी रात्रि में पिपासा परीषह को समतापूर्वक

सहन करते हुए अनशनपूर्वक सुरलोक वासी बने।

(12) **अकबर प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि**— आचार्य श्री जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य शासन सम्राट् श्री जिनचन्द्रसूरि ने अपने गुरुदेव का स्वप्न साकार करते हुए शिथिलाचार पर प्रखर प्रहार किया। आपके संयम-तप के प्रभाव से सम्राट् अकबर ने कुल छह माह पर्यन्त अहिंसा के जो फरमान जारी किये, वे आज भी जैसलमेर के जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार में उपलब्ध हैं।

आपने यति परम्परा पर अनुशासन और मर्यादा का बुलडोजर चलाया।

'नवांगी वृत्तिकार अभयदेवसूरि खरतरगच्छ में हुए' इसका पचास से अधिक गच्छों के आचार्यों के हस्ताक्षर से युक्त सम्मति पत्र आज भी ज्ञान भण्डार में उपलब्ध है।

मृत गाय को जीवित करना, अमावस को चाँद उगाना आदि अनेक चमत्कार आपके तपोबल के सहज परिणाम थे। बिलाड़ा में आपका आश्विन वदि अमावस्या को जब स्वर्गवास

हुआ, तब साधना के फलस्वरूप
मुँहपत्ति नहीं जली ।

(13) **श्री समयसुन्दरोपाध्याय** — आठ
अक्षरों के आठ लाख से अधिक
अर्थ करने वाले सत्यपुर रत्न,
कविकुल किरीट के नाम से
प्रसिद्ध श्री समयसुन्दरोपाध्याय
रचित अष्टलक्षी, दशवैकालिक
वृत्ति, समाचारी शतक, विचार
शतक, विशेष शतक इत्यादि
मौलिक ग्रंथों में उनका संस्कृत,
न्याय, प्राकृत पर पूर्ण अधिकार
और पाण्डित्य स्वतः प्रकट होता
है। पद्मावती आलोचना,
शत्रुंजय रास एवं भावपूर्ण सैंकड़ों
स्तवन, सज्जाय की रचना कर
साहित्य व काव्य जगत को
आबाद किया। अहमदाबाद में
आप समाधिपूर्वक कालधर्म को
प्राप्त हुए।

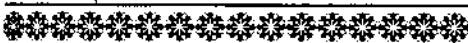
(14) **श्रीमद्देवचन्द्र** — आगामादि के
परम ज्ञाता श्रीमद् देवचन्द्रजी ने
चौबीसी में द्रव्यानुयोग का
दिव्यप्रयोग किया है। आपका
ज्ञान एक पूर्व प्रमाण था। वर्तमान
में आप महाविदेह क्षेत्र में
केवलज्ञानी के रूप में विचरण
कर रहे हैं, ऐसी अनुश्रुति है।

आपने जिनशासन में प्रथम स्नात्र
पूजा की रचना की।

जैन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज
की सुदृढ पेढी आनंदजी
कल्याणजी की स्थापना भी
आपके द्वारा ही हुई। ब्रह्मचर्य की
दिव्य साधना के कारण
से आपका वीर्य ऊर्ध्वगामी होकर
ललाट में मणि के रूप में
स्थापित हो गया। आपने गहन
अध्ययन पूर्वक विचारसार आदि
मौलिक ग्रंथों का सर्जन किया।

(15) **श्रीमद् आनंदघन** — आनंदघन
यानि साधना क्षेत्र के बेनमून
नक्षत्र। आप अधिकांशतः गुफाओं
में एकान्त में साधना करते थे।
आपकी लघुनीति (पेशाब) में
इतनी शक्ति थी कि पाषाण भी
स्वर्णमय हो जाता था। आप
खरतरगच्छ की परम्परा में
दीक्षित होकर मुनि लाभानंद बने
परन्तु ख्याति आनन्दघन के रूप
में हुई। आपश्री के द्वारा रचित
प्रभु भक्ति से सराबोर जिनेन्द्र
चौबीसी सर्वत्र प्रसिद्ध है।

(16) **गणनायक सुखसागरजी** —
यद्यपि आपका जन्म सरसा में
हुआ था परन्तु व्यवसायार्थ आप



जयपुर आये। वहाँ मुनि श्री राजसागरजी के चातुर्मास में भाद्रपद सुदि चतुर्थी को पौषध किया, तब संयम वेश की भावना इतनी तीव्र हुई कि अगले दिन पंचमी को ही दीक्षा ले ली।

आगमों का गहन अभ्यास करने के उपरान्त आपने सिरोही में क्रियोद्धार किया। यह आपके चारित्र एवं पुण्य बल का ही प्रभाव था कि 3-4 साधु-साध्वियों से चले आपके समुदाय में आज लगभग 300 साधु-साध्वी साधनारत हैं।

खरतरगच्छ की यह गौरवशाली परम्परा श्री भगवानसागरजी, श्री छगनसागरजी, श्री त्रैलोक्य-सागरजी, आचार्य श्री जिनहरि-सागरसूरिजी, श्री जिनआनंद-सागरसूरिजी, श्री जिनकवीन्द्र सागरसूरिजी, श्री हेमेन्द्र-सागरजी, श्री जिनउदयसागर सूरिजी आदि यशस्वी आचार्यों की परम्परा के रूप में आज भी अपनी पूरी प्रखरता, उष्मा एवं गरिमा से युक्त है।

(17) आचार्य श्री जिनकान्ति-सागरसूरि - यद्यपि पूज्य

आचार्यश्री तेरापंथ परम्परा में दीक्षित थे परन्तु बाद में आगमिक मूर्तिपूजा के सन्दर्भ में स्वयं को तेरापंथ से अलग किया और पू. आचार्य श्री जिनहरि-सागरसूरिजी म.सा. के शिष्य बनकर मुनि कान्तिसागर के नाम से विश्रुत हुए।

प्रवचन कला का आपको वरदान प्राप्त था। सार्वजनिक प्रवचनों में जब आप हे हिन्दु! तुझे किसने बरबाद किया, गौमाता को बचाओ, इन विषयों पर सिंह की भाँति गर्जना करते थे, तब बीस-बीस हजार की मानव-मेदिनी आश्चर्य से अभिभूत हो उठती थी। समस्त धर्मों की खूबियों का प्रवचन में समावेश होने से जैन, हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, सारी जैन-जैनैतर जनता आपके प्रवचनों का लाभ उठाती थी।

आपने अनेक दीक्षाएँ, प्रतिष्ठाएँ, उपधान करवाये। आपका मांडवला में स्वर्गवास हुआ। अग्नि संस्कार स्थल पर आपश्री के प्रधान शिष्य पू. उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. की प्रेरणा से जहाज मंदिर बना है।

प्र.603. खरतरगच्छ की साहित्य आदि संपदाओं पर प्रकाश डालिये।

उ. आज ज्ञान भण्डारों में प्राप्त साहित्य में से सर्वाधिक साहित्य खरतरगच्छ के विद्वान् आचार्यों के द्वारा आलेखित है। आगमिक शास्त्र के क्षेत्र में आचार्य अभयदेवसूरि, समयसुन्दरजी के नाम प्रमुख हैं तो मौलिक शास्त्र रचना में जिनेश्वरसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, जिनपति-सूरि, जिनप्रभसूरि, समयसुन्दरजी, देवचन्द्रजी ने महत्वपूर्ण कार्य किया। जिनवल्लभसूरि जिनहर्षसूरि, समय-सुन्दरजी, देवचंद्रजी, आनंदधनजी, क्षमाकल्याणजी, कवीन्द्रसागरसूरि, मणिप्रभसागरजी ने काव्य जगत में अपना स्थान बनाया तो जिनवल्लभ-सूरि, जिनदत्तसूरि, जिनकुशलसूरि ने नूतन जैन बनाकर संघ का विस्तार किया।

श्री जिनपदमंसूरि ने 'अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र महिता' स्तुति की एवं विनय-प्रभोपाध्याय ने श्री गौतम स्वामी के रास की रचना की, जो सम्पूर्ण जिनशासन में बिना किसी गच्छ भेद के चलती है।

महाकवि धनपाल, कविवर ठक्कर फेरु, पद्मानंद, थाहरूशाह भंसाली, सेठ श्री मोतीशा नाहटा, अमीचंद नाहटा, भुवन पाल डोसी, पल्ल कवि,

कर्मचन्द्र बच्छावत, अगरचन्द्र नाहटा भंवरलाल नाहटा आदि अनेक श्रावक श्राविका खरतर-गच्छ की अनमोल विरासत है।

एक समय में शत्रुंजय, सम्मेतशिखर, गिरनार, नाकोड़ा, खंभात, पाटण, कापरड़ा, आगासी, आयड आदि अनेक तीर्थ प्रखर खरतरगच्छ की परम्परा का अनुगमन करते थे।

प्र.604. खरतरगच्छ को राजगच्छ क्यों कहा जाता है?

उ. राजा-महाराजाओं पर विशिष्ट प्रभुत्व होने के कारण खरतरगच्छ को राजगच्छ कहा जाता है।

आचार्य जिनेश्वरसूरि ने पाटण नरेश दुर्लभ सम्राट् को प्रतिबोधित किया था तो जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ नरेश नरवर्म को धर्म-साधना का रहस्य समझाया था।

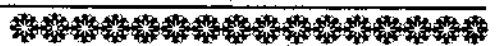
प्रथम दादा जिनदत्तसूरि के प्रति के अजमेर नरेश अर्णोराज, त्रिभुवनगिरि अधिपति कुमारपाल आदि राजा श्रद्धान्वित थे।

मणिधारी दादा जिनचन्द्रसूरि को दिल्लीपति सम्राट् मदनपाल ने दिल्ली में प्रवेश करवाकर उनके मुख से जिनवाणी का रसपान किया था तो जिनपतिसूरि ने आशिका नरेश

भीमसिंह, भीमदेव को जीवन का मर्म बताया था। पृथ्वीराज चौहान विद्वद्वर्य जिनपालोपाध्याय की चारित्र-प्रियता से प्रभावित था तो बीजापुर नरेश सारंगदेव, जैसलमेराधिपति कर्णदेव आदि ने जिनप्रबोधसूरि से प्रतिबोधित हो व्यसनों का त्याग किया था।

जिनप्रभसूरि की विद्वत्ता पर मुहम्मद तुगलक फिदा था और जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) के तपोमय जीवन से मुहम्मद बेगडे में आश्चर्यजनक परिवर्तन घटित हुए थे।

जिनपदमसूरि से बाडमेर नरेश शिखरसिंह, रुद्रनन्दन, हरिपालदेव, जिनसिंहसूरि से नरेश जहाँगीर, जिनराजसूरि से सिकन्दर लोदी बादशाह अत्यन्त प्रभावित थे। इस प्रकार खरतरगच्छाचार्यों की उज्ज्वल परम्परा ने अनेक राजाओं को जीवन का मर्म बताया। इस कारण खरतरगच्छ राजगच्छ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। खरतरगच्छ को विधि मार्ग, संविग्न पक्ष, सुविहित पक्ष आदि भी कहा जाता है।



जैन ध्यान मीमांसा

1. जाप से कटते हैं पाप
2. माला-जाप के प्रयोग
3. हस्तांगुली जाप
4. ध्यान का विधान
5. नवकार मंत्र की साधना
6. नवग्रह दोष निवारण विधि



जाप से कटते हैं पाप

प्र.605. जाप किसे कहते हैं?

उ. मन, वचन तथा काया की एकाग्रता से साध्य को समर्पित होना जाप कहलाता है। जप शब्द ज+प से निष्पन्न हुआ है। ज से जन्म—जरा व मृत्यु का विनाश एवं प से पाप कर्मों का क्षय करने वाला महानुष्ठान जप है।

प्र.606. जाप कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. शास्त्रों में जाप के अनेक भेद बताये गये हैं—

तीन प्रकार के जाप—

1. **भाष्य जाप**— मधुर, मंद और स्पष्ट रूप से उच्चारित करके किया वाला जाप, जिसे दूसरा सुन सकता है, उसे भाष्य जाप कहते हैं।
2. **उपांशु जाप**— जिसमें होंठ, जीभ का हलन—चलन होता है परन्तु शब्द सुनाई नहीं देते हैं, उसे उपांशु जाप कहते हैं।
3. **मानस जाप**— मन ही मन जो जाप किया जाये, उसे मानस जाप कहते हैं।

दूसरी अपेक्षा से पाँच प्रकार के जाप कहे गये हैं — (1) शब्द (भाष्य) जाप (2) मौन (उपांशु) जाप (3) सार्थ (अर्थ सहित) जाप (4) चित्तस्थ (मानस) जाप (5) ध्येय—एकत्व जाप— जिसमें ध्यान, ध्याता एवं ध्येय एकाकार हो जाते हैं।

उच्चारण की अपेक्षा से ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत, ये तीन प्रकार के जाप होते हैं। रेचक, पूरक, कुंभक, सात्त्विक आदि तेरह प्रकार के जाप भी शास्त्रों में वर्णित हैं।

प्र.607. जाप से पूर्व किन—किन बातों का ध्यान रखना चाहिये?

- उ. 1. जाप शुरू करने से पूर्व जिन्हें आप सिद्ध करना चाहते हैं अथवा जिनकी प्रत्यक्ष—परोक्ष कृपा की कामना रखते हैं, उनके स्वरूप का संपूर्ण एवं स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये।
2. गुरु मुख से विधिपूर्वक मंत्र ग्रहण करना चाहिये, इससे वह शीघ्र फलदायी होता है। मनमाने और स्वरूप को जाने बिना मंत्रों का प्रयोग करने से विपरीत प्रभाव हो

सकते हैं।

3. ध्यान, ध्येय एवं ध्याता पर सम्पूर्ण श्रद्धा जरूरी है। ध्यान मंत्र है, ध्येय मंत्र में प्रतिष्ठित प्रभु, गुरु महाराज है और स्वयं ध्याता है। इन तीनों की समग्रता ही जाप को पूर्ण बनाती है।
4. 'आप जाप किसलिये कर रहे हैं?' इसका उत्तर चित्त में बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिये।
5. भौतिक-सिद्धि हेतु जाप-मंत्र का प्रयोग न करें। यह अलौकिक शक्तियों के द्वार खोलने वाली दिव्य कुंचिका है अतः महान्, सुन्दर एवं सात्विक उद्देश्य का निर्धारण होना चाहिये।
6. जाप करने से पूर्व चिन्ता व तनाव को दूर फेंक दें। योगों की विशुद्धि भी अत्यन्त अनिवार्य है।

प्र.608. जाप करते समय ध्यान में रखने योग्य सुझाव दीजिये।

- उ. 1. वस्त्र एवं वातावरण की शुद्धि होनी चाहिये। शान्त, नीरव, अनुकूल एवं चित्त को प्रफुल्लित करने वाला स्थान हो। ध्यान या जाप के लिये जिस स्थान का चुनाव किया जाय, जरूरी है कि वह स्थान मच्छर, मक्खी, चींटी आदि जीवों के

उपद्रव से मुक्त हो, पर्याप्त प्रकाश, शुद्ध वायु से युक्त हो। स्थान अति उष्ण अथवा शीत भी नहीं होना चाहिये।

2. जाप में श्वेत वर्ण का ऊनी आसन उत्तम होता है।
3. जाप के समय मन, वचन एवं काया में किसी प्रकार की विकार अथवा चंचलता न हो।
4. जाप प्रारंभ करने से पूर्व प्रार्थना करें- जगत के सभी जीव सुख और समाधि को प्राप्त हों, सभी का कल्याण हो।
5. जाप में मंत्र उच्चारण की शुद्धि आवश्यक है। अक्षर कम-ज्यादा न बोले व उच्चारण में ह्रस्व-दीर्घ का भी ध्यान रखें।
6. पूर्व, उत्तर दिशा अथवा ईशान कोण में जाप करना फलदायी होता है।
7. जाप करते समय नयन बंद रखे अथवा नासिका के अग्रभाग पर एकाग्र करें अथवा तस्वीर, प्रतिमा का आलम्बन लेकर खुले रखें। यह जरूरी है कि मेरुदण्ड और गर्दन एक सीध में रहे।
8. प्रतिदिन निश्चित स्थान एवं समय पर जाप करें। माला, दिशा,

- परिधान, आसन, मुद्रा आदि में अत्यावश्यक कारण के बिना बदलाव न करें। किसी भी स्थिति में जाप अवश्य करें। अनियमितता से जाप फलित नहीं होता है।
9. जाप की अवधि एवं संख्या बढ़ाते रहे, इसके साथ एकाग्रता पर भी पूरा ध्यान दें।
 10. विश्वास और श्रद्धा बढ़ाते रहे, फल प्राप्ति में विलम्ब होने पर धीरज न हारे।
 11. जाप करते समय मंत्राक्षर एवं ध्येय आकृति चित्त पर सहज ही उपस्थित होनी चाहिये।
 12. सफलता मिलने पर मंत्र—जाप, श्रद्धा में वृद्धि करते रहे।
 13. जाप पद्मासन, अर्द्धपद्मासन, जिनमुद्रा आदि में किया जा सकता है।
 14. यदि प्राणायाम विधि का प्रशिक्षण लिया है तो जाप व ध्यान से पूर्व 5—7 मिनट उसका प्रयोग करें जिससे शरीर में स्फूर्ति, ताजगी एवं एकाग्रता का संचार होता रहे।
 15. जाप करने से पहले आत्मा रक्षा स्तोत्र से शरीर सुरक्षा का कवच तैयार करें।
 16. जाप से पूर्व नवकार की एक माला

अवश्य गिनें।

17. मंत्र को साधने के लिये प्रायः 5 बजे से 6 बजे तक का एवं रात्रि में 8 बजे से 10 बजे तक का समय अत्युपयुक्त है। इस समय अन्तरिक्ष में विद्यमान दिव्यात्माओं के आत्मबल की विद्युत् तरंगें प्रसारित होती हैं।
18. जाप के मध्य किसी से वार्तालाप न करें। स्थिरता को अखण्ड रखे।
19. मंत्र, स्तोत्र, सूत्र को गुरु के पास विनययुक्त होकर ग्रहण करना चाहिये। मंत्रोच्चारण के वक्त भी विनम्रता अत्यन्त आवश्यक है।

प्र.609. जाप के दिनों में कैसा आचरण हो?

- उ. (1) जाप के दिनों में सप्त व्यसनों का, क्रोध आदि कषायों का त्याग करें।
- (2) तामसिक, गरिष्ठ तीखे, चटपटे भोजन का परिहार करें। अभक्ष्य एवं कंदमूल का त्याग करें।
- (3) मनोरंजन के टी.वी., खेल आदि साधनों को भी छोड़ दें।
- (4) जाप में प्रामाणिक, मधुर व्यवहार करें। हित—मित—प्रिय बोले। अन्यथा जाप व ध्यान से प्राप्त शक्ति का क्षरण हो जाता है।

- (5) श्रावकाचार—तप, स्वाध्याय, सत्संग, तत्त्वचर्चा आदि अनुष्ठानों में समय और चित्त को एकाग्र करें।
- (6) ब्रह्मचर्य का अधिकतम पालन करें।
- (7) अनीति, दुराचार, मायाचार एवं पारस्परिक विवाद से पूरी तरह दूर रहें। दिन में नींद न ले।
- (8) उठते—बैठते, हर समय अजपाजाप चलता रहे।
- (9) जाप व ध्यान की साधना में जल्दी उठना जरूरी है और जल्दी उठने के लिये समय पर सोना जरूरी है।
- (10) मंत्र साधना के दिनों में दो—तीन घण्टे मौन करें। मौन शक्ति का दिव्य कोष है।

प्र.610. जाप के प्रभाव क्या है?

- उ. 1. इससे कषायों का ताप, कलह का

संताप एवं भव—भव के पाप नष्ट हो जाते हैं।

2. सहनशक्ति एवं प्रतिरोधक क्षमता (इम्युनिटी) का विकास होता है।
3. मन की शान्ति और शरीर का आरोग्य प्राप्त होता है।
4. कषाय, विकार, वासनाओं पर नियन्त्रण होता है।
5. मैत्री, जयणा, अहिंसक भावों में अभिवृद्धि होती है।
6. राग—द्वेष हीनता को प्राप्त होते हैं।
7. लक्ष्य सिद्धि एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है।
8. आत्म विश्वास, धैर्य, समता, अप्रमत्तता आदि गुणों का विकास होता है। हीनता, घुटन, तनाव, आक्रोश, प्रपंच, अहं, ईर्ष्या आदि ग्रन्थियाँ नष्ट होती जाती हैं।



माला-जाप के प्रयोग

प्र.611. जाप प्रक्रिया में किनका आलम्बन लिया जाता है?

उ. विविध आलम्बन लिये जाते हैं—आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी, हस्तांगुलि, ध्यान इत्यादि।

प्र.612. आनुपूर्वी आदि को समझाईये।

उ. 1. **आनुपूर्वी**— क्रमशः जाप करना यथा नमो अरिहंताण, नमो सिद्धाणं इसी प्रकार पढमं हवइ, मंगलम् तक।

2. **अनानुपूर्वी**— क्रमशः जाप न होकर आगे—पीछे अंकानुसार जाप करना।

जहाँ 1 अंक लिखा है, वहाँ नमो अरिहंताणं बोलना, 2 लिखा है— वहाँ नमो सिद्धाणं बोलना। इस प्रकार अंकानुसार जाप करना।

3. **पश्चानुपूर्वी**— उल्टे क्रम से जाप करना। यथा पढमं हवइ मंगलं, मंगलाणं च सव्वेसिं यावत् नमो अरिहंताणं तक। इसका एक ओर प्रयोग है कि प्रत्येक पद को उल्टा करके बोलना यथा— णं ता हं रि अ मो न (नमो अरिहंताणं का उल्टा)।

प्र.613. भिन्न—भिन्न अंगुलियों से

माला—जाप का क्या प्रभाव होता है?

उ. जिस प्रकार कैल्कुलेटर के भिन्न—भिन्न बटन दबाने से भिन्न—भिन्न परिणाम आते हैं, उसी प्रकार अलग—अलग अंगुलियों के पोरवे दबाने से अलग—अलग परिणाम आते हैं।

1. **अंगुष्ठ जाप**— तर्जनी को छोड़कर शेष तीन अंगुलियाँ मिलाकर मध्यमा और अंगुष्ठ से जाप करना।



अग्नि तत्त्व की प्रधानता होने से अंगुष्ठ ऊर्जा का खजाना

है। ऊर्जा व पुरुषार्थ का प्रतीक होने से अंगुष्ठ को मोक्ष दातार कहा जाता है।

2. **तर्जनी जाप**— तर्जनी में वायु तत्त्व की प्रधानता होने से इससे अस्थिरता, चंचलता बढ़ती है। माला—जाप में एकाग्रता की मुख्यता होने से इससे जाप नहीं करना चाहिये।



3. **मध्यमा जाप**— मध्यमा में आकाश तत्त्व की प्रधानता है।



जिस प्रकार आकाश सभी को स्थान देता है, वैसे ही इस अंगुली से जाप करने से हृदय की विशालता, सद्भाव, सहयोग की भावना उत्पन्न होती है। फलतः व्यक्ति धन, सुख आदि प्राप्त करता है।



4. अनामिका जाप— इसमें पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता है। पृथ्वी में सहनशीलता, गुरुत्वाकर्षण, क्षमा, धैर्य आदि गुण होते हैं। अतः इस अंगुली से जाप करके इन गुणों के माध्यम से व्यक्ति सुख, शान्ति, धीरज आदि को प्राप्त करता है।



5. कनिष्ठिका जाप— जल तत्त्व का प्राधान्य होने से कनिष्ठिका के माध्यम से ध्याता में संतोष, जप, तप, साधना, ज्ञान, चारित्र्य आदि गुण प्रकट होते हैं। जल तत्त्व रस युक्त होने से इस अंगुली के जाप से व्यक्ति में आकर्षण, प्रीति, स्नेहादि गुण सहज ही विकसित होते हैं।

प्र.614. माला किस प्रकार की होनी चाहिये?

उ. 1. सोने एवं कपूर की माला से सौभाग्य की, चांदी की माला से शांति की, मोती की माला से

आरोग्य की, सूत, रुद्राक्ष, फिटकरी की माला से सुख की प्राप्त होती है।

2. सभी प्रकार की मालाओं में सूत की माला सर्वोत्कृष्ट कही गयी है। प्लास्टिक, रेडियम एवं हल्की लकड़ी की माला का प्रयोग कदापि नहीं करना चाहिये।
3. माला के सभी मणके बराबर होने चाहिये, छोटे-बड़े नहीं।
4. जिस रंग के मणके हो, उसी रंग के रेशम अथवा सूत के धागे में माला पिरोनी चाहिये।
5. माला को इधर उधर न रखकर व्यवस्थित स्थान पर वस्त्र, पॉकेट आदि में डालकर रखनी चाहिये।
6. माला से पाँव आदि निम्न अंगों का स्पर्श न हो, गंदे, झूठे हाथ भी न लगे, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये।
7. माला ज्ञान का उपकरण है, अतः उसके प्रति बहुमान का भाव रखना चाहिये।

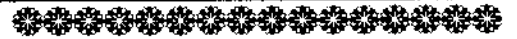
प्र.615. माला फेरते समय क्या ध्यान रखना चाहिये?

- उ. 1. ध्यान रहे— माला का वस्त्र एवं नाखून से स्पर्श नहीं होना चाहिये।
2. माला हृदय के सन्मुख होनी

- चाहिये। नासिका से ऊपर एवं नाभि से नीचे नहीं होनी चाहिये।
3. माला अभिमंत्रित होनी चाहिये एवं जमीन पर नहीं रखनी चाहिये।
 4. जब तक एक मणके पर जाप पूरा न हो, तब तक दूसरे मणके का स्पर्श न करें।
 5. माला के पूर्ण होने पर मेरु का उल्लंघन न करें, ऊर्जा-प्राप्ति हेतु

उसका आँख से स्पर्श करके उलटकर फेरे।

6. परमात्मा एवं देवी-देवता के जाप की माला अलग-अलग होनी चाहिये। समय, स्थान, वस्त्र, आसन से संबंधित अध्याय 'जाप से कटते हैं पाप' नामक अध्याय से समझ लेनी चाहिये।



हस्तांगुली जाप

प्र.616. हस्तांगुली जाप किसे कहते हैं?

उ. जिस जाप में अंगूठे को अंगुलियों पर फिराते हुए मंत्र—जाप किया जाता है, उसे हस्तांगुली जाप कहते हैं।

इस जाप में जप माला (नवकारवाली) का उपयोग नहीं किया जाता है।

प्र.617. इस जाप को अन्य किन नामों से पुकारा जाता है?

उ. इसे आवर्त जाप और कर माला जाप भी कहा जाता है। आवर्त यानि दोहराना। इसमें अंगूठे को अपने हाथ की चारों अथवा तीन अंगुलियों के पोरवों पर मंत्र को दोहराते हुए पुनः पुनः विधि—अनुसार फिराया जाता है, अतः इसे आवर्त जाप कहा जाता है। हाथों की अंगुलियों का प्रयोग/उपयोग होने से यह कर माला जाप के नाम से भी प्रसिद्ध है।

प्र.618. क्या यह जाप विधि जपमाला जाप विधि से ज्यादा प्रभावशाली है?

उ. एकान्त दृष्टि से किसी विधान/क्रिया/वस्तु को सर्वथा उपयोगी

अथवा अनुपयोगी कहने से मृषावाद का दोष लगता है। दोनों जाप अपने अपने स्थान पर सार्थक एवं सम्यग् हैं। परन्तु निष्कर्ष रूप में यह अवश्य कहा जा सकता है कि करमाला जाप में माला का प्रयोग नहीं होने से कहीं पर भी करना सम्भव है।

यह जाप अपने आप में श्रेष्ठ एवं फलदायक है। आवर्त क्रिया से ध्यान/जाप से मन अधिक स्थिर एवं ध्येय के प्रति एकाग्र बनता है। इससे आसन भी जम जाता है।

प्र.619. पांच अंगुलियां कौन कौनसी हैं?

उ. पांचों अंगुलियों को नामपूर्वक इस प्रकार पहचाना जा सकता है—

1. अंगुष्ठ — सर्वविदित है।
2. तर्जनी — अंगुष्ठ के निकट वाली अंगुली।
3. मध्यमा — पांचों अंगुलियों के बीच वाली अंगुली।
4. अनामिका — मध्यमा और कनिष्ठिका के मध्य वाली अंगुली।

5. कनिष्ठिका — सबसे छोटी अंगुली।

प्र.620. हस्तांगुली जाप कितने प्रकार के कहे गये हैं?

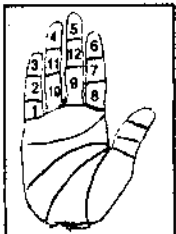
उ. हस्तांगुली जाप के अनेक भेद शास्त्रों में वर्णित है यथा आवर्त जाप, शंखावर्त जाप, नंदावर्त, ऊँकार दक्षिणावर्त, ऊँकार वामावर्त, ह्रीँकार आवर्त, नवपद आवर्त, सिद्धावर्त आदि।

प्र.621. आवर्त जाप को बताएँ।

उ. लाभ —

1. आवर्त जाप शान्ति, तुष्टि एवं पुष्टि प्रदायक है।
2. इस जाप के प्रभाव से दुष्ट देव नहीं सताते। यह जाप भूत-प्रेत भय निवारक कहा गया है।
3. मनोकामनाएँ शीघ्र फलित होती हैं।
4. सुख एवं धैर्य की प्राप्ति होती है।

विधि— दाहिने हाथ की अंगुलियों में से कनिष्ठिका अंगुली के नीचे पोरवे से शुरूआत करें, जिससे कनिष्ठिका के तीनों पोरवें, चौथा अनामिका के ऊपर का, पाँचवां मध्यमा के ऊपर का, छठा तर्जनी के ऊपर का, सातवां तर्जनी के मध्य



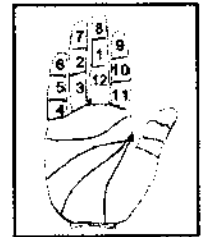
का, आठवां तर्जनी के नीचे का, नौवां मध्यमा के नीचे का, दसवां अनामिका के नीचे का, ग्यारहवां अनामिका के मध्य का, बारहवां मध्यमा के मध्य का, ऐसे नौ बार गिनने से एक पूरी माला होती है।

प्र.622. शंखावर्त जाप की विधि बताईये।

उ. लाभ—

1. शंख जिस प्रकार शुक्ल, शुभ्र और शुभ माना गया है, उसी प्रकार यह जाप मानसिक कालुष्य, ऊहापोह और व्यग्रता को समाप्त कर मन-मानस में नवस्फूर्ति एवं ताजगी का संचार करता है।
2. यह आवर्त जाप पाप, ताप एवं संताप निवारक एवं मनोवांछित-पूरक कहा गया है।

विधि— यह आवर्त अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों पर ही गिना जाता है। इसकी शुरूआत मध्यमा अंगुली के मध्य के पोरवे से होती है। दूसरा अनामिका के मध्य का, तीसरा अनामिका के नीचे का, चौथा कनिष्ठिका के नीचे का,



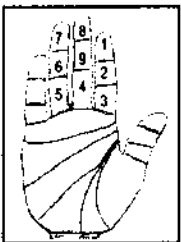
पांचवां कनिष्ठिका के मध्य का, छद्वा कनिष्ठिका के ऊपर का, सातवां अनामिका के ऊपर का, आठवां मध्यमा के ऊपर का, नौवां तर्जनी के ऊपर का, दसवां तर्जनी के मध्य का, ग्यारहवां तर्जनी के नीचे का, बारहवां मध्यमा के नीचे का। इस तरह नौ दफा गिनने से एक माला पूरी हो जाती है। इस प्रकार गिनने से शंख आकृति का निर्माण होता है, अतः इस आवर्त का नाम शंखावर्त है।

प्र.623. नंदावर्त जाप विधान को समझाइये।

उ. लाभ—

1. नंदी अर्थात् मंगलकारी, अकुशल एवं अशांता निवारी। यह मन, तन और जीवन में सर्वत्र मंगल की वर्षा करता है।
2. यह जाप तुष्टि, सौम्यता तथा आदर प्रदायक है।

विधि— इस आवर्त में दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली के ऊपर के पोरवे से शुरुआत होती है, दूसरा तर्जनी के मध्य का, तीसरा तर्जनी के नीचे का, चौथा का मध्यमा के नीचे का, पांचवां अनामिका के नीचे



का, छद्वा अनामिका के मध्य का, सातवां अनामिका के ऊपर का, आठवां मध्यमा के ऊपर का, नौवां मध्यमा के मध्य का, इस तरह बारह बार गिनने से एक माला पूरी होती है। इसे नंदावर्त कहते हैं।

प्र.624. ऊँकार दक्षिणावर्त जाप किस प्रकार किया जाता है?

उ. स्वरूप—

1. ऊँ की अपार महिमा कही गयी है। इसे प्रणवाक्षर भी कहा जाता है।
2. इसमें पंचपरमेष्ठी के आद्य अक्षरों को मिलाने से ओम् बना है, अतः ऊँकार में पंच परमेष्ठी का समावेश होने से इसकी महती महत्ता एवं अद्भुत चमत्कार है।
3. 'ऊँ' यह ब्रह्म, सुख एवं आत्म वाचक है। ध्रुव व शाश्वत होने से दिव्य शक्तियों का भण्डार है।
4. यह काम बीज, प्रदीप बीज, विनय बीज, पंचपरमेष्ठी बीज एवं तेजो बीज है।

लाभ—

1. इसका उच्च व मधुर ध्वनि से प्रतिदिन उच्चारण करने से अस्वस्थ शरीर में स्वस्थता का

संचार, खिन्न मन में प्रसन्नता एवं आत्मा में अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है।

2. इस जाप से वातावरण पवित्र एवं निर्मल बनता है।

3. इस जाप से क्षुद्र व्यंत्तर देव पलायन कर जाते हैं।

4. चित्त की एकाग्रता में यह महत्त्वपूर्ण आलम्बन है।

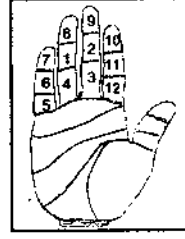
विधि— इसमें प्रथम मध्यमा के मध्य

का पोरवा, दूसरा अनामिका के मध्य का पोरवा, तीसरा अनामिका के ऊपर का पोरवा, चौथा मध्यमा के ऊपर का पोरवा, पांचवां तर्जनी के ऊपर का

पोरवा, छट्टा तर्जनी के मध्य का पोरवा, सातवां तर्जनी के नीचे का पोरवा, आठवां मध्यमा के नीचे का पोरवा, नौवां अनामिका के नीचे का पोरवा, दसवां कनिष्ठिका के नीचे का पोरवा, ग्यारहवां कनिष्ठिका के मध्य का पोरवा, बारहवां कनिष्ठिका के ऊपर का पोरवा, इस तरह नौ बार गिनने में एक माला पूरी होती है।

ऊँकार दक्षिणावर्त की अन्य प्रक्रिया इस प्रकार है

पहला अनामिका के मध्य का



पोरवा, दूसरा मध्यमा के मध्य का, तीसरा मध्यमा के नीचे का, चौथा अनामिका के नीचे का, पांचवां, छट्टा, सातवां कनिष्ठिका के क्रमशः

नीचे, मध्य व ऊपर का पोरवा, आठवां व नौवां क्रमशः अनामिका व मध्यमा के ऊपर का पोरवा तथा दसवां, ग्यारहवां व बारहवां तर्जनी का क्रमशः ऊपर, मध्य व नीचे का पोरवा है। इस प्रकार नौ बार गिनने से एक माला पूर्ण होती है।

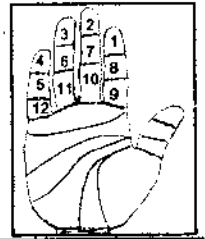
प्र.625. ह्रीँकार आवर्त की प्रक्रिया बताइये।

उ. स्वरूप—

ह्रीँ कल्याण वाचक है। इसे माया बीज, त्रैलोक्य बीज एवं परम तत्त्वबीज भी कहा जाता है।

लाभ— इस आवर्त जाप से सुख, समृद्धि की प्राप्ति एवं विघ्न, अन्तराय की समाप्ति होती है।

विधि— ह्रीँकार आवर्त की गिनती इस प्रकार है। तर्जनी के ऊपर से चलना है। मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठिका तक क्रमशः ऊपर के चार हुए।



पांचवां कनिष्ठिका का मध्य, छट्टा अनामिका का मध्य, सातवां मध्यमा का मध्य, आठवां तर्जनी का मध्य, नौवां तर्जनी के नीचे, दसवां मध्यमा के नीचे, ग्यारहवां अनामिका के नीचे और बारहवां कनिष्ठिका के नीचे, इस तरह गिनती करने से ह्रीं का निर्माण होने इसे ह्रींकार आवर्त कहा जाता है। नौ बार गिनने से माला पूरी होती है।

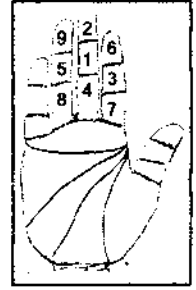
प्र.626. नवपद (नवकार) आवर्त विधि बताओ।

उ. महिमा— नवकार का प्रभाव अचिन्त्य अद्भुत है। यह मंत्र शक्ति, ऊर्जा, आनन्द और सिद्धि का भण्डार है। नवकार के जाप से ऋद्धि व समृद्धि में वृद्धि होती है। ऊँ, ह्रीं, ह्रीं, क्लीं, क्लूं, श्रीं, क्ष्वीं, फुट्, हँ, वषट्, त्वयूं आदि बीजाक्षरों की उत्पत्ति प्रधानतः नवकार मंत्र से हुई है क्योंकि मातृका ध्वनियाँ इस मंत्र से उत्पन्न हुई हैं। ये बीजाक्षर अन्तःकरण और प्रवृत्ति की शुद्धि के महत्वपूर्ण माध्यम हैं जिनके समुचित संयोजन, विधि विधान एवं जाप से आत्मशक्ति को जागृत, देवताओं को आकर्षित एवं आसुरी शक्तियों को समाप्त किया जा

सकता है। यहाँ तक कि सर्वोत्तम मोक्ष पद को भी प्राप्त किया जा सकता है।

विधि— श्री नवकार मंत्र का दूसरा नाम नवपद है।

इसका जाप नमो अरिहंताणं से प्रारम्भ कर पढमं हवई मंगलं तक नव पदों में किया जाता



है। इसका एक-एक

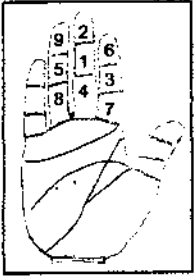
पद क्रमशः एक-एक पोरवे पर गिना जाता है। प्रारम्भ मध्यमा के मध्य पोरवे से करें। दूसरा मध्यमा के ऊपर का पोरवा, तीसरा तर्जनी के मध्य का पोरवा, चौथा मध्यमा के नीचे का पोरवा, पांचवां अनामिका के मध्य का पोरवा, छट्टा तर्जनी के ऊपर का पोरवा, सातवां तर्जनी के नीचे का पोरवा, आठवां अनामिका के नीचे का पोरवा, नौवां अनामिका के ऊपर का पोरवा। इस तरह नवपदों को बारह दफा गिनने में एक माला पूरी होती है।

प्र.627. नवपद (सिद्धचक्र) आवर्त की प्रक्रिया को समझाईये।

उ. स्वरूप— सिद्धचक्र पद का दूसरा नाम नवपद भी है। पंचपरमेष्ठी,

सम्यक्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप, ये नवपद शाश्वत पद हैं। इन पदों की आराधना करके अनन्त जीव संसार सागर से उत्तीर्ण हो गये। श्रीपाल और मयणा सुन्दरी ने सविधि और सश्रद्धा नवपद की साधना की, जिससे श्रीपाल का कुष्ठ रोग विनष्ट हो गया तथा काया कंचन की भाँति चमक उठी। यह अनुभूत सत्य है कि नवपद के महान् अनुष्ठान से सारे विघ्न, बाधाएँ क्षणार्ध में समाप्त हो जाती हैं और जीवन में आनन्द, धैर्य, समता एवं साधना की बहार छा जाती है।

विधि— इसकी आराधना नवपद



नवकार की भाँति ही होती है परन्तु पदों में परिवर्तन होता है। इसके सुप्रसिद्ध पदों के नाम क्रमशः इस प्रकार है—

(1-5) नमो अरिहंताणं आदि पाँच पद (6) ऊँ ह्रीं नमो दंसणस्स (7) ऊँ ह्रीं नमो नाणस्स (8) ऊँ ह्रीं नमो चरित्तस्स (9) ऊँ ह्रीं नमो तवस्स।

1. नमो अरिहंताणं एवं नमो सिद्धाणं का मध्यमा के मध्य व ऊपर का, पोरवा, नमो आयरियाणं का

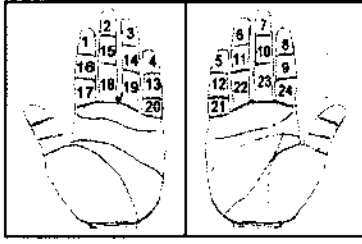
तर्जनी के मध्य का, नमो उवज्झायाणं का मध्यमा के नीचे का, नमो लोए सव्वसाहूणं का अनामिका के मध्य का, ऊँ ह्रीं नमो दंसणस्स का तर्जनी के ऊपर का, ऊँ ह्रीं नमो नाणस्स का तर्जनी के नीचे का, ऊँ ह्रीं नमो चरित्तस्स का अनामिका के नीचे का एवं ऊँ ह्रीं नमो तवस्स का अनामिका के ऊपर का पोरवा, इस प्रकार सिद्धचक्र पद का बारह बार जाप करने से एक माला पूर्ण होती है।

प्र.628. सिद्धावर्त किस प्रकार किया जाता है?

उ. स्वरूप— यह आवर्त जाप दोनों हाथों की अंगुलियों के पोरवों पर किया जाता है।

यह जाप मुक्ति प्रदायक है। यह जाप चौबीस पोरवों पर होने से जाप करने वाला चौबीस तीर्थंकरों की कृपा प्राप्त करता हुआ आत्मिक गुणों को प्रकट करता है। इससे विघ्न उपशान्त हो जाते हैं। यम-नियम-संयम तथा ज्ञान-ध्यान के क्षेत्र में व्यक्ति आत्म विश्वास के सोपान चढ़ता हुआ अन्तिम सिद्धपद का वरण करता है। इस आवर्त से नौ बार जाप करने पर नवकार की दो माला पूर्ण होती हैं।

विधि— नवकार मंत्र के प्रथम पांच



परमेष्ठी पद एवं शेष चार चूलिकाएँ कहलाती हैं। इस हस्तांगुली जाप में प्रथम

चार पदों का जाप बायें हाथ की तर्जनी, मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका के ऊपर के पोरवे पर करने के बाद पंचम पद एवं तीन चूलिका का जाप क्रमशः दायें हाथ की कनिष्ठिका, अनामिका, मध्यमा एवं तर्जनी के ऊपर के पोरवे पर करें। अन्तिम चूलिका पढमं हवइ मंगलम् का जाप तर्जनी के मध्य के पोरवे पर करें। फिर नवकार के

शुरू के तीन पदों का जाप मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका के मध्यवर्ती पोरवों पर करें। शेष दो पदों एवं प्रथम दो चूलिकाओं का जाप बायें हाथ की कनिष्ठिका, अनामिका, मध्यमा एवं तर्जनी के मध्यवर्ती पोरवों पर करते हुए अन्तिम दो चूलिका एवं प्रथम दो पदों का क्रमशः तर्जनी, मध्यमा, अनामिका एवं कनिष्ठिका के नीचे के पोरवों पर करें। तदुपरान्त दायें हाथ की कनिष्ठिका, अनामिका, मध्यमा एवं तर्जनी पर शेष तीन पदों एवं प्रथम चूलिका का जाप करें। उसके बाद पुनः संख्यानुसार आगे का जाप करते जाये।



ध्यान का विधान

प्र.629. ध्यान का प्रारम्भ कैसे करें?

उ. पदमासन, अर्द्धपदमासन आदि किसी भी आसन में मेरु दण्ड को सीधा करके दोनों घुटनों पर हाथों को ज्ञान-मुद्रा में स्थापित करके बैठो। आँखों को सहज बंद करके दीवार का सहारा लिये बिना स्थिरतापूर्वक बैठ जाओ।

शरीर में कहीं भी खिंचाव या तनाव न हो। अंगों को ज्यादा न खींचो, न ढीला छोड़ो। मस्तक व सीने को एक सीध में कर लो। उत्तर, पूर्व अथवा दोनों के मध्य स्थित ईशान कोण के सम्मुख बैठो।

वस्त्र ऐसे हो कि शरीर में कहीं कोई खिंचाव या तकलीफ न हो वरना एकाग्रचित्त नहीं हो पाओगे। यदि वस्त्र, आसन श्वेत हो तो अति-उत्तम।

ध्यान रहे—शरीर के किसी भी अंग में कोई चंचलता न हो। न पलकें झपके, न होंठ फड़के। मक्खी बैठे, मच्छर काटे, किसी भी अंग पर खुजलाहट चले, मन में घबराहट हो, तब भी मन

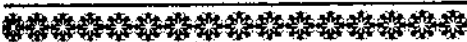
स्थिर हो। मन उठने को करें या इधर—उधर भागने लगे तो तुरन्त उसे पकड़ लो।

प्रारंभ में ये सब बाधाएँ आयेगी पर परवाह न करो। हार कर, मैदान छोड़कर भागो मत। ये सब तुम्हारी समत्व एवं एकत्व की परीक्षा लेने को उपस्थित हुई हैं।

अब धीरे—धीरे अन्तर्मुखी होना शुरू करो। मन और तन की गतिविधियों से ध्यान को हटाकर स्वयं से कहो—मेरा दृढ़ संकल्प है कि जब तक ध्यान पूर्ण नहीं होगा, तब तक मैं न हिलूंगा, न चलूंगा, न बोलूंगा। मैं मन और शरीर का नियन्ता हूँ। मैं जो भी आदेश दूंगा, वह उसे मानना होगा। इसका पुनः पुनः आवर्तन करो।

जब शरीर सहज हो जाये तब मानसिक ध्यान शुरू करें—

मैं शांत—प्रशान्त हो रहा हूँ। मेरे चारों तरफ शान्ति ही शान्ति बिखरी हुई है। मेरे मन और विचारों में शान्ति ही शान्ति है। अशान्ति न मेरे दिमाग में है, न दिल में है।



मैं शान्ति की साक्षात् प्रतिमा हूँ। मेरा मन, मेरी आत्मा, सम्पूर्ण वातावरण शान्त है। कहीं कोई अशांति की लहर नहीं है।

ध्यान के प्रारंभ में प्रतिदिन पाँच मिनट से दस मिनट इसका ध्यान करें। यह शांतिपाठ वाणी, वर्तन और विचारों को परम शांत व सन्तुलित बनाता है।

प्र.630. ध्यान की पवित्रता में विश्व कल्याण की कामना कैसे करें?

उ. शान्ति धारा के इस पाठ के पश्चात् विश्व मैत्री एवं जग कल्याण का ध्यान करें—

मित्री मे सव्वभुएसू—समस्त जीवों से मेरी मैत्री है।

वेरं मज्झ न केणइ—किसी से भी मेरा वैर नहीं है।

प्राणी मात्र से मेरा मैत्री भाव है। हर जीव के प्रति मेरी प्रीति है।

मैं किसी का विरोध नहीं करता, किसी से द्वेष नहीं करता। किसी की प्रगति से मुझे ईर्ष्या नहीं है।

मैं तो बस इतना ही जानता हूँ कि प्राणी मात्र मेरा अपना है। मैं सभी का हितैषी हूँ।

मेरा रोम—रोम, मेरा हृदय, मेरी समस्त

ऊर्जा मैत्री और प्रीति से पवित्र हो रही है। सर्वत्र प्रीति का उद्घोष हो रहा है। मेरे वैर—विकार नष्ट हो रहे हैं। अमंगल समाप्त हो रहा है। कलह, कामना और क्रोध शान्त—प्रशान्त हो रहे हैं। मेरी आत्मा में विश्व—कल्याण की उदात्त भावनाएँ नृत्य कर रही हैं। मेरे हृदय से उठती मंगल, सुख, शान्ति और आरोग्य की तरंगे वातावरण में प्रसारित हो रही हैं। सभी सुखी हो, सम्पूर्ण विश्व दुःख और शोक से मुक्त बने, हर व्यक्ति अहिंसा, शान्ति और प्रेम का आचरण करें। ये मंगल विचार मैं विश्व के कोने—कोने में भेज रहा हूँ। इन विचारों में डूबकी लगाते हुए इतने एकाग्र बनो कि स्वयं को भूल जाओ। प्रतिदिन पांच मिनट तक विश्व—मंगल का ध्यान करना चाहिये। इससे विचार—शुद्धि होती है। ज्ञानावरणीय एवं मोहनीय कर्म का विशेष रूप से क्षय होता है।

प्र.631 पंच परमेष्ठि का ध्यान कैसे करें?

उ. पंच परमेष्ठि के ध्यान में सर्व प्रथम शान्ति—पाठ का ध्यान करें। तत्पश्चात् चिन्तन करें—

परमात्मा महावीर के समवसरण में आ गया हूँ। फिर अन्तरात्मा में डूबकी

लगाकर ध्यान करो—ओ अरिहंत प्रभो! ओ डूबती नैया के खेवनहार। ओ भव्यजनों के उद्धारक! मेरे हृदय में आओ। मेरी आँखों में छा जाओ। समस्त जीवों में शासन का प्रशस्त राग भर दो।

क्रमशः ध्यान में आगे बढ़ते रहो। तत्पश्चात् गुणों का ध्यान धरो। ओ दयालु अरिहंत! आपकी कृपा से ही मैंने शासन पाया है। अब मेरा रोम—रोम अरिहंतमय हो गया है। मेरे मन में प्रभु भक्ति और प्रीति के फूल खिलने लगे हैं। मेरी सांसों में आपकी खुशबू छाने लगी है, मेरी आँखों में आप बस गये हो।

मेरी आत्मा और आपकी आत्मा एकरूप एकाकार हो गयी है। सारे भेद मिट गये हैं। अब मुझे छोड़ के न जाओ। मुझे अपनी शरण में लो।

ओह! मेरे जन्मों जन्म के पाप नष्ट हो रहे हैं, मैं पवित्र हो रहा हूँ, शुद्ध हो रहा हूँ, विशुद्ध रहा हूँ, मेरे अन्तर में साधना के हजारों दीप जल रहे हैं, मेरा पोर—पोर उसकी रोशनी में भीग गया है।

अब कषाय की परतें उतरने लगी हैं, मोह की दीवारें गिरने लगी हैं, मेरा

रूप अरिहंतमय हो गया है। अरिहंत की खुशबू से मेरी दुर्गंध नष्ट हो रही है। एक साथ सहस्र फूल मेरी आत्मा के धरातल पर खिल उठे हैं। उनमें से वीतरागता की, ज्ञान और ध्यान की, दया और करुणा की सुरभि उठने लगी है। ओ प्रभो! सभी जीवों में ऐसी ही करुणा भरो। मैत्री का भाव जगाओ।

मुझ पर गुण—गांभीर्य—माधुर्य से युक्त हजारों—लाखों अमृत मेघ बरस रहे हैं और मेरे भव—भव की कालिमा धुल रही है। मेरा मान, मेरा गर्व पिघल कर बहने लगा है। मोह—मेरू खण्ड खण्ड होकर नष्ट हो गया है।

इस ध्यान में समवसरण आदि का ध्यान किया जा सकता है। इस प्रकार पाँच से सात मिनट तक ध्यान करें।

(ii) **सिद्ध ध्यान**— सिद्ध परमात्मा के आठ गुणों का एवं उनके स्वरूप का ध्यान करें।

(iii) **आचार्य ध्यान**— आचार्य के छत्तीस गुणों का एवं उनकी महिमा का ध्यान करें।

(iv) **उपाध्याय ध्यान**— उपाध्याय के

पच्चीस गुणों का ध्यान धरे एवं ज्ञान गुण में डूबकी लगावे।

(V)साधु ध्यान— साधु के सत्ताईस गुणों से एवं चारित्र की महिमा से हृदय को ओतप्रोत करें।

प्र.632. महाराजश्री! मैं बहुत ही जल्दी अपने प्रति अविश्वास से भर जाता हूँ। थोड़ी-सी कहीं असफलता हाथ लगती है या सपना साकार नहीं हो पाता है, मेरा मन हीनता से भर जाता है तो क्या ध्यान की प्रक्रिया इस बीमारी में कहीं उपयोगी साबित हो सकती है?

उ. ध्यान का अर्थ है कि शान्ति प्राप्त करना। जीवन सुख और दुःख का, धूप और छाँव का मिलन है। सुख और छाँव को व्यक्ति जितना आनंद से स्वीकार करता है, दुःख की धूप में प्रायः उतना ही असंतुलित हो जाता है। हर बार सफलता मिले, जरूरी नहीं, असफलता भी मिलती है। उस वक्त हीनता, तनाव और चिंता की ग्रन्थियाँ उसके मनोबल को तोड़ देती हैं। ध्यान एक ऐसी अनूठी विधा है, जो चित्त को स्थिर, सहज एवं धीरज देती है एवं मनोबल बढ़ाती है।

प्रयोग— पदमासन, अर्द्धपदमासन,

किसी भी आसन में बैठो। ध्यान रहे मेरुदण्ड सीधा हो, वातारण शान्त हो, मन प्रशान्त हो।

अब पूरक, रेचक और कुंभक करें, जिससे श्वास-उच्छ्वास संतुलित एवं सहज हो जाये। श्वासोच्छ्वास की अनियमितता (कभी धीरे कभी तेज) व्यक्ति को असहज बनाती है।

तत्पश्चात् मन की ओर मुड़ो। अन्तर्मुखी होना प्रारंभ करो— मेरी इच्छा शक्ति प्रबल है। कोई भी समस्या उसे हिला नहीं सकती है। मेरा मनोबल मजबूत है। मैं परिस्थितियों का स्वामी हूँ। कोई भी परेशानी मुझे अस्थिर नहीं कर सकती। मेरे मन को तनाव एवं चिन्ता से नहीं भर सकती है।

मेरी हीनता की सारी ग्रन्थियाँ नष्ट हो रही हैं। मेरा आत्मविश्वास बढ़ रहा है। मेहनत करना मेरा धर्म है, फल भाग्य का परिणाम है। सफलता और असफलता, दोनों जिन्दगी के अहम् हिस्से हैं। आज असफल हूँ तो क्या हुआ? सफलता मेरे भीतर छिपी है। कल जरूर प्रकट होगी। मैं अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माता हूँ।

मुझे स्वयं पर पूरा भरोसा है। मेरा



पुरुषार्थ अंशमेव फलदायी बनेगा ।
मैं स्वयं के प्रति रूचिवान हूँ, मैं स्वयं
से प्रेम करता हूँ, मुझे अपनी शक्तियों
का प्रयोग करना है । बाधाएँ आती हैं,
असफलता भी एक बाधा ही है । पर
उन सभी बाधाओं को पार करके मुझे
अलौकिक, अपूर्व एवं सफल व्यक्तित्व
का स्वामी होना है ।
मैं स्वयं से स्नेह करता हूँ । विश्वास
करता हूँ, गौरव करता हूँ । मेरी

धमनियों में विश्वास और श्रद्धा का
रक्त बह रहा है । हीनता, घुटन,
बिखराव, असंतुलन, क्रोध की सारी
ग्रन्थियाँ खुल रही हैं । मेरे रोम-रोम में
आत्म विश्वास के असंख्य सितारें
जगमगा उठे हैं ।

इस प्रकार दस मिनट तक प्रतिदिन
जाप करें । शनैः शनैः आपको प्रतीत
होगा कि वास्तव में मेरा विश्वास बढ़ा
है, बढ़ रहा है ।



नवकार मंत्र की साधना

प्र.633. मंत्र—साधना की आवश्यकता क्यों है?

उ. निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विशेष विधानपूर्वक जो क्रियानुष्ठान किया जाता है, उसे साधना कहते हैं।

कोई भी विद्यार्थी सोलह—सतरह वर्षों की दृढ मेहनत से एम.ए., एम. कॉम. की उपाधि प्राप्त करता है।

वैज्ञानिकों ने शोधपूर्वक नये नये निष्कर्ष दुनिया के सम्मुख प्रस्तुत किये, वे उनकी दीर्घकालीन विज्ञान—साधना का ही परिणाम है।

किसी भी बीज को वटवृक्ष में रूपान्तरित होने में युगों की अवधि पसार करनी होती है।

कोई भी सिद्धि / उपलब्धि एकाएक सिद्ध नहीं होती, उसके लिए महान् साधना एवं कठोर परिश्रम करना होता है।

इस विराट् जगत में ऐसी कोई वस्तु अथवा पदार्थ नहीं, जिसे मंत्र साधना के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सके। हमारे महापुरुषों ने मंत्र को चिन्तामणि रत्न, कामगवी, कल्पवृक्ष तथा कामघट की उपमाएँ

दी है। बस! जरूरी है कि इसकी आराधना व जाप सविधि हो, क्रिया ज्ञानयुक्त एवं मानस श्रद्धा से परिपूर्ण हो।

प्राचीन महर्षियों द्वारा उक्त आराधना को तो हमने पकड़ लिया परन्तु सम्यग्ज्ञान एवं समुचित विधि को नहीं जाना, यह साधना की अपूर्णता है, ऐसी अज्ञानदशा में भला कैसे मंत्र साधना फलित हो सकती है!

हम मंत्र—जप—साधना करते हैं! परन्तु रूक रूककर, कभी आलस्य व प्रमाद से निरन्तरता खण्डित हो जाती है तो कभी हमारी क्रिया व निष्ठा संकल्प—विकल्प में उलझकर रह जाती है।

स्वीकृत मंत्र साधना को अदम्य उत्साह, उत्तरोत्तर गुणानुगुणित होती श्रद्धा, मन की उमंग एवं काया की पवित्रता— एकाग्रतापूर्वक पूर्ण प्रण से किया जाये तो साधना निश्चितरूपेण लक्षित ध्येय को प्राप्त करवाती है।

इसमें विघ्नजय, बाधाओं के प्रति

निर्भयता, शरीर की सुविधा का त्याग, लक्ष्य शुद्धि तथा धैर्य की उत्तम पूंजी साथ हो तो ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो जाप आराधना की पूर्णता में बाधक सिद्ध हो सके।

प्र.634. मंत्र के स्वरूप एवं प्रभाव पर प्रकाश डालिये।

उ. मंत्र योग साधना का महत्त्वपूर्ण अंग एवं महाविज्ञान है। मंत्र अर्थात् जिसका पुनः पुनः मनन किया जाये।

मंत्र चमत्कारिक शक्तियों का भण्डार है। प्राचीन और अर्वाचीन काल में मंत्र साधना का महाप्रभाव सर्वविदित है, जिससे महर्षि स्वलक्ष्य और इष्ट को उपलब्ध करते आये हैं। चौदह पूर्वों में से विद्याप्रवाद पूर्व में मंत्र की स्वरूप, संरचना और प्रभावों का ही वर्णन था परन्तु काल प्रभाव से आज लुप्त हो चुका है। शास्त्रों, वेदों, पुराणों आदि में वर्णित अनेक युद्ध मंत्रों के द्वारा लडे गये हैं। महाभारत के युद्ध में मंत्र शक्ति के द्वारा जिन आयुधों का प्रयोग किया गया था, वर्तमानस्थ मिस्ताइल्स, अणुबम से उनकी तुलना की जा सकती है।

श्री विशुद्धानन्द ने मृत कबूतर को

मंत्र शक्ति से देखते देखते जीवित कर दिया था। नवकार व दादा गुरुदेव मंत्र के चमत्कार प्रसिद्ध है। इसलिये मंत्र को ब्रह्मा भी कहा गया है।

शाप हो चाहे वरदान, दोनों मंत्र शक्ति के ही प्रतिफल है। यहाँ तक की मंत्र के माध्यम से जीव मोक्ष तक प्राप्त कर लेता है।

जर्मनी के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री अरनेस्ट क्लानडी ने वायलिन वादन के अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिखाया है कि हर स्वर, नाद, कम्पन, लय, संगीत विशेष आकार को जन्म देता है। जब जड पदार्थ पर भी मंत्र स्वरों का इतना प्रभाव है तो सचेतन प्रभावित हो, इसमें अतिशयोक्ति को कोई स्थान नहीं है। मंत्र साधना में स्थान का भी प्रभाव हम देखते हैं। शत्रुंजय आदि पावन स्थानों पर साधक शीघ्र ही अभीष्ट को सिद्ध कर लेता है।

प्र.634. मंत्र से क्या अभिप्राय है?

- उ. 1. सतत् मनन करने से जो अक्षर हमारी रक्षा करते हैं, उन अक्षरों को मंत्र कहा जाता है।
2. देव द्वारा अधिष्ठित—प्रतिष्ठित अक्षरों की दिव्य संयोजना को



मंत्र कहा जाता है।

3. जिन ध्वनियों के परस्पर संयोजन एवं उच्चारण से अलौकिक ज्योति/प्रभा प्रकट होती है, उसे मंत्र कहा जाता है।

प्र.636. मंत्र साधना की कितनी विधियाँ शास्त्रों में वर्णित हैं?

उ. मंत्र साधना के लक्ष्य को केन्द्र में रखते हुए पूर्वाचार्यों ने तीन विधियों का कथन किया है।

1. **उत्कृष्ट विधि** – आत्म शान्ति, कर्म निर्जरा, संवर साधना एवं मोक्षरूप महान् फल की उपलब्धि को लक्ष्य में रखकर की जाने वाली विधि उत्कृष्ट कही गयी है।
2. **मध्यम विधि** – मानसिक व्यथा एवं चित्त की व्याकुलता को मिटाकर आराधना पथगामिनी विधि मध्यम विधि है। शास्त्रकारों ने उदाहरणपूर्वक इस विधि का उल्लेख इस प्रकार किया है, यथा— कोई दीक्षित होना चाहता है परन्तु परिवारिक प्रतिकूलता, शारीरिक रोग, मानसिक अशान्ति एवं विविध उत्तरदायित्वों से बंधा/घिरा संवेगी, निर्वेदी मुमुक्षु

प्रव्रज्या पथ को अंगीकार करने में अक्षम है, तब वह उन सभी बाधाओं/चिन्ताओं से मुक्त होकर विघ्नजयी बनने के लिये मंत्र साधना करता है, वह मध्यम विधि है।

3. **जघन्य विधि** – यह विधि भवाभिनंदी (संसारार्थी) एवं पुद्गल विलासी जीवों के द्वारा की जाती है। धन, सत्ता, सौन्दर्य, देवगति, यश, सम्मान हेतु की जाने वाली मंत्र विधि जघन्य है।

यद्यपि मंत्र की शक्ति शाश्वत सत्ता, सौन्दर्य और शान्ति प्रदायक है परन्तु जो व्यक्ति पुद्गलों से प्रभावित होकर उनकी कामना में अटक कर/भटककर रह जाते हैं, वे पारसमणि—चिन्तामणि दातार को पाकर भी कंकर व कांच की याचना का मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं और जघन्य, अक्षम्य उद्देश्य की सिद्धि में लगे रहते हैं।

अन्ततः पद, पदार्थ छूट ही जाते हैं और शान्ति और साधना दिवास्वप्न की भांति दूर रह जाते हैं, अतः सुज्ञ एवं अप्रमत्तचेता को मंत्र शक्ति का माहात्म्य व रहस्य जानकर संयम, मोक्ष रूप महान् अर्थ की ही कामना

करनी चाहिए। अन्यथा वे स्वयं की कुल्हाड़ी से स्वयं के पांवों पर वार करने जैसा हास्यास्पद कार्य कर बैठते हैं।

प्र.637. नवकार आदि मंत्र साधना की पूर्व भूमिका समझाईये।

उ. 1. स्थान — मंत्र साधना सिद्धि हेतु मन्दिर, उपाश्रय, तीर्थभूमि, नदी तट एवं पर्वत का उच्च स्थान, ये उत्तम स्थान माने गये हैं। यदि इस प्रकार की अनुकूलता न हो तो अलग से कक्ष पसंद करना चाहिए पर ध्यान रहे— कक्ष ऐसा हो जहाँ वायु—प्रकाश पर्याप्त रूप से प्रवेश कर सके एवं शोरगुल से सर्वथा मुक्त हो।

2. पात्रता — मानसिक और शारीरिक बल से परिपूर्ण होना मन में उद्देश्य पवित्रता व स्पष्टता के साथ हो पर कषाय, राग व द्वेष की मलिनता न हो।

धर्म में श्रद्धावान्, उत्सुक, विघ्नजयी, परिमित सात्विक भोजी, प्रसन्न, करुणावान्, परोपकारी, दयालु, मन को स्थिर करने वाला, धीर, गंभीर, सत्यवादी, नवकार पर परम श्रद्धावान्, सुदेव—गुरु की भक्ति एवं सेवा करने वाला,

गुरुमुख से मंत्र प्राप्त कर्ता साधक हो सकता है।

3. नियम—ब्रह्मचर्य पालन, अभक्ष्य व अनन्तकाय वर्जन, अधिकतम मौन, क्लेश कषाय से बचना, भूमिशयन करना।

नियमित दिशा, समय, स्थान, संख्या, आसन में जाप करना।

पूर्वोक्त जाप विधि में अन्य निर्देशों को समझकर उनका पालन करना।

प्र.638. नवकार मंत्र साधना की विधि बताईये।

उ. पूर्व में बताये गये संकेतों के अनुसार पूर्व भूमिका तैयार करें।

प्रथम उपधान (अढारिया) किया हुआ हो तो यह साधना शीघ्र फलित होती है क्योंकि इससे व्यक्ति नवकार मंत्र को बोलने की योग्यता को प्राप्त करता है।

गुरु प्रदत्त शुभ मुहूर्त में आराधना का शुभारंभ करें।

आराधना के दिनों में यथाशक्ति उपवास आदि तप करें। आयम्बिल तप को महामंगलकारी कहा गया है।

तप से त्रियोग की शुद्धि होती है। कषाय और शारीरिक मल नष्ट

हो जाते हैं, जिससे व्यक्ति साधना की भूमिका में प्रवेश कर जाता है।

1. नवकार आदि किसी भी मंत्र प्रारंभ करने से आत्म रक्षा स्तोत्र से अपने शरीर के चारों तरफ सुरक्षा कवच का निर्माण करके शरीर की रक्षा करें ताकि जाप के समय कोई भी अनिष्ट शक्ति बाधक न बन सके।
2. माला को हाथ में ग्रहण करने से पूर्व 'ॐ नमो अरिहंताणं श्रुतदेवि प्रशस्तहस्ते फट् स्वाहा' इस मंत्र से हाथ की शुद्धि करें।
3. नवकार के अतिरिक्त पार्श्वनाथ, दादा गुरुदेव, नाकोड़ा भैरव, पद्मावती आदि किसी मंत्र को सिद्ध करने के पूर्व प्रथम दिन आत्मशुद्धि के प्रयोजन से मंगलकारी नवकारमंत्र की दस माला का तथा प्रतिदिन जाप को शुरू करने से पूर्व एक माला का जाप करें। इससे मंत्र सिद्ध होता है।

4. मंत्र —

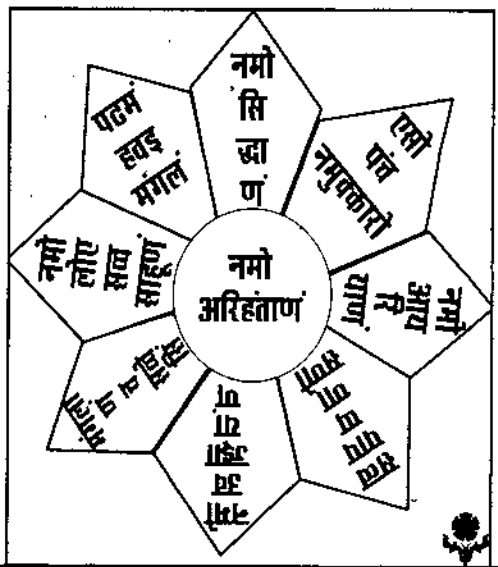
(i) असिआउसा नमः — इस पंचाक्षरी मंत्र के जाप से चिन्तित फल की प्राप्ति एवं भव भ्रमण की समाप्ति होती है।

(ii) ॐ नमः सिद्धेम्यः

(iii) नमोऽर्हत्सिद्धेम्यः

(iv) ॐ श्रीं ह्रीं अर्हं नमः ये तीनों मंत्र मोक्ष फल देने वाले हैं।

5. नवकार ध्यान — आठ पंखुडियों वाले श्वेत कमल का चिन्तन करके उसकी कार्णिका में नमो अरिहंताणं का ध्यान करें। फिर नमो सिद्धाणं आदि चार मंत्र पदों का अनुक्रम से कमल की कार्णिकाओं की चारों दिशाओं में स्थिर चार पंखुडियों में तथा चार विदिशाओं की चार पंखुडियों में एसो पंचनमुक्कारो आदि चार चूलिकाओं का चिन्तन करना चाहिये। इसे आप चित्र के माध्यम से जान सकते हैं।



नवग्रह दोष निवारण विधि

प्र.639. नवग्रह कौन कौनसे हैं?

- उ. 1. सूर्य, 2. चन्द्र, 3. मंगल
4. बुध, 5. गुरु, 6. शुक्र,
7. शनि, 8. राहु, 9. केतु।

प्र.640. नवग्रह पूजा विधि बताईए।

- उ. 1. ग्रह के वर्णानुरूप पवित्र वस्त्र धारण करना।
2. आसन एवं माला भी उसी वर्ण की धारण करना।
3. प्रभु प्रतिमा, चित्र अथवा फोटो की स्थापना कर उसके सम्मुख नवग्रह पट्ट स्थापित करना।
4. सात प्रकार की शुद्धियों का ध्यान रखना।
5. मुख पूर्व या उत्तर की तरफ रखना।
6. मंत्र जाप से पूर्व आत्म रक्षा स्तोत्र से शरीर का रक्षा कवच तैयार करना।
7. जैन परम्परा के प्रतिष्ठित श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी विरचित श्री नवग्रह शान्ति स्तोत्र का पाठ करना।
8. जाप शुरू करने पूर्व नवकार की एक माला अवश्य गिनना।

प्र.641. नवग्रहों के प्रभाव का नवकार आराधना से कैसे निवारण करें?

- उ. 1. सूर्य – ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं सूर्याय नमः की एक माला तत्पश्चात्, ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं का 21 दिनों में 12500 जाप करके मंत्र सिद्ध करें।
2. चन्द्र— ॐ श्रौं श्रौं श्रौं सोमाय नमः (एक माला)
ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं (12500 जाप/21 दिन)
3. मंगल— ॐ क्राँ क्रीँ क्रीँ कुजाय नमः (एक माला)
ॐ ह्रीं नमो सिद्धाणं (12500 जाप/21 दिन)
4. बुध— ॐ ब्रौं ब्रीँ ब्रीँ बुधाय नमः (एक माला)
ॐ ह्रीं नमो चवज्जायाणं (12500 जाप/21 दिन)
5. गुरु— ॐ ज्राँ ज्रीँ ज्रीँ जीवाय नमः (एक माला) ॐ ह्रीं नमो आयरियाणं (12500 जाप/21 दिन)
6. शुक्र— ॐ द्राँ द्रीँ द्रीँ शुक्राय

नमः (एक माला)

ॐ ह्रीं नमो अरिहंताणं (12500
जाप / 21 दिन)

7. शनि— ॐ षाँ षीँ षौँ

शनिश्चराय नमः (एक माला)

ॐ ह्रीं नमो लोए सव्वसाहूणं
(12500 जाप / 21 दिन)

8. राहु— ॐ भ्राँ श्रीँ भ्रौँ राहवे

नमः (एक माला)

ॐ ह्रीं नमो लोए सव्वसाहूणं
(21500 जाप / 21 दिन)

9. केतु— ॐ फ्राँ फ्रीँ फ्रौँ केतवे

नमः (एक माला)

ॐ ह्रीं नमो लोए सव्वसाहूणं
(21500 जाप / 21 दिन)

प्र.642. नवग्रहों के कुप्रभाव निवारण के
लिये किस भगवान का मंत्र करें?

उ. 1. सूर्य— ॐ ह्रीं पदमप्रम नमस्तुभ्यम्

मम शांतिः शांतिः ॥ (1 माला
प्रतिदिन)

2. चन्द्र— ॐ ह्रीं चन्द्रप्रम नमस्तुभ्यम्

मम शांतिः शांतिः ॥ (1 माला
प्रतिदिन)

3. मंगल — ॐ ह्रीं वासुपूज्यप्रभो

नमस्तुभ्यम् मम शांतिः

शांतिः ॥ (1 माला प्रतिदिन)

4. बुध — ॐ ह्रीं शांतिनाथप्रभो

नमस्तुभ्यम् मम शांतिः शांतिः ॥

(1 माला प्रतिदिन)

6. शुक्र — ॐ ह्रीं सुविधिनाथप्रभो

नमस्तुभ्यम् मम शांतिः

शांतिः ॥ (1 माला प्रतिदिन)

7. शनि — ॐ ह्रीं मुनिसुव्रतप्रभो

नमस्तुभ्यम् मम शांतिः

शांतिः ॥ (1 माला प्रतिदिन)

8. राहु — ॐ ह्रीं नेमिनाथायप्रभो

नमस्तुभ्यम् मम शांतिः

शांतिः ॥ (1 माला प्रतिदिन)

9. केतु — ॐ ह्रीं पार्श्वनाथप्रभो

नमस्तुभ्यम् मम शांतिः

शांतिः ॥ (1 माला प्रतिदिन)

प्रतिदिन पाठ समाप्ति के बाद 'ॐ ह्रीं अ

सि आ उ साय नमः' की एक माला

का जाप करें।

प्र.643. नवग्रहों में किस वर्ण की माला,

आसन व वस्त्रादि का प्रयोग

करना चाहिए?

उ. 1. सूर्य व मंगल के लिए लाल रंग।

2. चन्द्र व शुक्र के लिए श्वेत रंग।

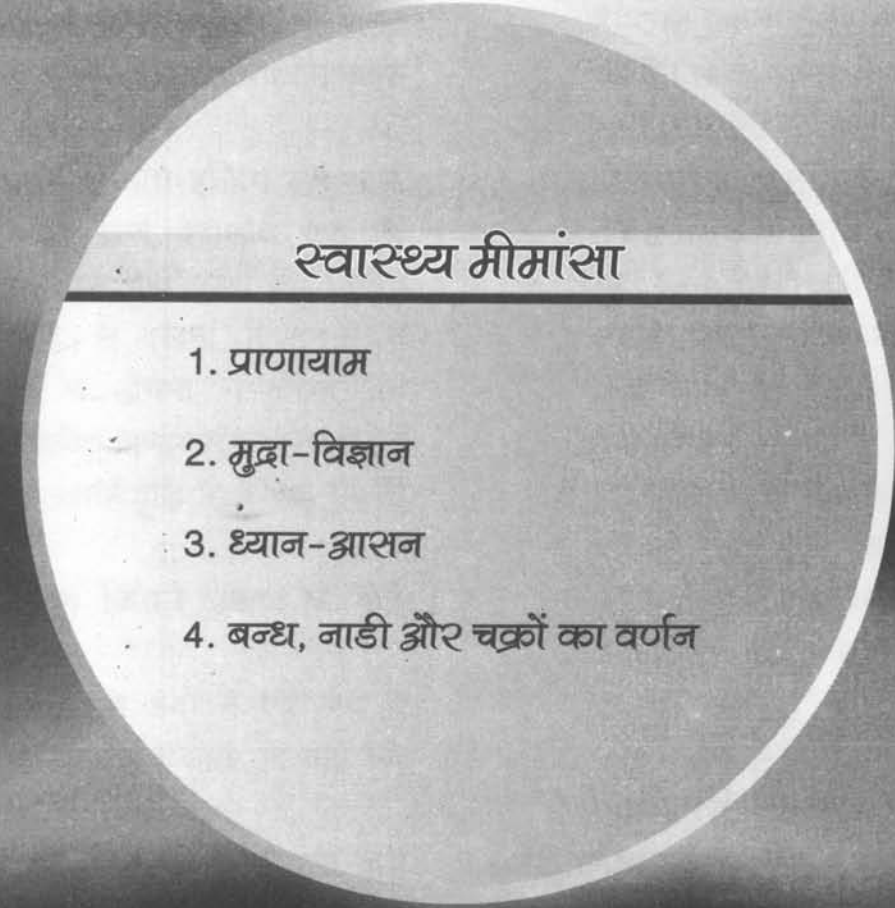
3. गुरु के लिए पीला रंग।

4. बुध व केतु के लिये हरा रंग एवं।

5. शनि व राहु के लिये नीला रंग।

स्वास्थ्य मीमांसा

1. प्राणायाम
2. मुद्रा-विज्ञान
3. ध्यान-आसन
4. बन्ध, नाडी और चक्रों का वर्णन



प्राणायाम

प्र.644. प्राणायाम किसे कहते हैं?

उ. प्राणों को नियंत्रित तथा नियमित करने की प्रक्रिया को प्राणायाम कहते हैं।

प्राणायाम से पांच इन्द्रिय बल प्राण, तीन योग प्राण, श्वासोच्छ्वास एवं आयुष्य, इन दस प्राणों का नियंता बनता है। न देखना, न सुनना, न बोलना, न सोचना, न करना, यह आत्म शक्ति प्राणायाम के द्वारा प्रकट होती है, उसमें वृद्धि भी की जा सकती है।

प्र.645. प्राणायाम कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. योग के आठ भेदों में एक भेद है प्राणायाम। इसके सात भेद कहे गये हैं—

1. **पूरक** — नासिका के द्वारा वायु खींचकर छाती, फेफड़े, पेट आदि को भरना पूरक कहलाता है।
2. **रेचक** — श्वास के द्वारा भरी हुई प्राणवायु को प्रश्वास के द्वारा नासिका से बाहर निकालना रेचक कहलाता है।
3. **कुम्भक** — जिस प्रकार पानी से

परिपूर्ण घड़ा शान्त एवं स्थिर होता है, उसी प्रकार शरीर में प्राणवायु भर देने से वह शान्त, निष्प्रकंप एवं सन्तुलित हो जाता है और प्राणवायु शरीर में स्थिर हो जाती है। इस प्रकार वायुरूपी पानी से भरे कुम्भ (घड़े) की उपमा से उपमित इस प्राणायाम को कुम्भक कहा जाता है। इसके आठ भेद कहे गये हैं।

4. **शान्ति** — ज्योति प्रकाश करना।
5. **समता** — ध्येय के स्वरूप में सूक्ष्म व गहन रूप से एकाकार होना।
6. **एकता** — आत्मा और गुणों में एकत्व का भाव।
7. **लीन भाव** — आत्मा के शुद्ध स्वरूप में लीन होना।

प्र.646. प्राणायाम किस प्रकार करें?

उ. सर्वप्रथम मेरूदण्ड को सीधा करके पद्मासन अथवा वज्रासन में बैठो तथा दोनों हाथों को घुटनों पर स्थापित करो। मुँह बंद रखो। आँखें चाहे खुली हो चाहे बंद हो, परन्तु सहज हो।

दाहिनी नासिका को अंगूठे से बंद

करके वाम (बायी) नासिका से वायु को धीरे-धीरे भीतर में ग्रहण करें अर्थात् पूरक प्राणायाम करें।

फिर अनामिका अंगुली और अंगूठे से दोनों नासिका के छिद्रों को बन्द कर दें। श्वास न ले, न निकाले यानि कुम्भक प्राणायाम करें। सहजतया जितने समय तक हो सके, करें, तत्पश्चात् रेचक प्राणायाम करें। दाहिनी नासिका से शनैः-शनैः वायु का रेचन इस प्रकार करें कि शरीर को इसमें किसी प्रकार का जोर न पड़े। रेचन के द्वारा प्राणवायु पूरी तरह निकल जाने पर पुनः उसी (दाहिनी) नासिका से प्राणवायु ग्रहण करें।

प्र.647. पूरक आदि प्राणायाम करते समय क्या सावधानी रखे?

- उ. 1. इनमें मुँह खुला न रहे।
 2. श्वास (लेना) व उच्छ्वास (निकालना) में आवाज नहीं होनी चाहिए।
 3. इस अभ्यास से प्राणों पर नियंत्रण होता है और मन निश्चिन्त होता है।
 4. इस प्रक्रिया में श्वास भरने, छोड़ने एवं रोकने का अधिकतम पुरुषार्थ करना चाहिये।
 5. रेचक में जल्दबाजी न करें अन्यथा

देह बल क्षीण होता है।

6. ये तीन प्राणायाम करते समय बीच की दोनों मध्यमा एवं तर्जनी अंगुलियों को मोड़ दे। दाहिनी नासिका को अंगूठे एवं बायी नासिका को अनामिका से बंद करनी चाहिए।

प्र.648. प्रणव प्राणायाम कैसे साधा जाता है?

- उ. सीधे खड़े हो जाये। नासिका द्वारा श्वास लेते दोनों हाथों को ऊपर वहाँ तक उठाते जाओ, जहाँ तक दोनों हथेलियाँ एक दूसरे का स्पर्श न करें। इसके साथ-साथ ही पाँव के पीछे का भाग यानि एडी ऊपर उठाये तथा सारा शरीर पाँवों के अग्र भाग पर टिका दे। फिर कुम्भक करें। सहजतया जितनी देर तक कर सके, करें। तत्पश्चात्, श्वास छोड़ते हुए हथेलियों को नीचे लाकर पूर्ववत् स्थिति में आ जाये। इससे स्मरण शक्ति बढ़ती है एवं शरीर ऊर्जापूर्ण बनता है।

प्र.649. थकान को प्राणायाम के द्वारा कैसे दूर किया जाता है?

- उ. शव की भाँति शांतिपूर्वक सीधे लेट जाये। आँखें बंद। पूरा शरीर सिथिल कर लो। कहीं खिंचाव-तनाव न रहे।

कोई विचार और चिंता नहीं रहे। प्रांच से दस मिनट करने से क्लान्त शरीर शान्त एवं ताजगी से भर जाता है। सारी थकान छूमन्तर हो जाती है। इसे श्रम नाशक साधन एवं शवासन भी कहा जाता है।

प्र.650. भ्रामरी प्राणायाम कैसे किया जाता है?

उ. यह कुम्भक के आठ भेदों में से एक है। दोनों हाथों के अंगूठे को कान में डालकर शेष चार अंगुलियों को दोनों बंद नेत्रों पर रख दे। फिर नथुनों से श्वास लेते हुए फैंफड़ों को वायु से भर दे, फिर भ्रमर की तरह की गुंजन करते हुए उच्छ्वास करें। इस विधि से कुम्भक करने पर चित्त समाधि को उपलब्ध होता है एवं स्मृति-दौर्बल्य दोष नष्ट हो जाता है। भ्रामरी प्राणायाम कम से कम तीन बार करें।

प्र.651. प्राणायाम से क्या लाभ है?

उ. 1. प्राणायाम की सिद्धि से शरीर रोगमुक्त हो जाता है तथा निरोगी काया में स्वच्छ, निर्मल एवं तीव्र बुद्धि का वास होता है।
2. तन व्याधि मुक्त, मन प्रसन्न व प्रफुल्लित एवं प्रकृति मधुर बनती है। नेत्र, ललाट एवं मुखाकृति

अन्य पुरुषों की अपेक्षा तेजस्वी, ओजस्वी प्रतीत होती है।

प्राणायाम के फल

1. पूरक प्राणायाम से शरीर पुष्ट एवं निरोगी बनता है।
2. रेचक प्राणायाम से पेट की व्याधि एवं कफ का नाश होता है।
3. कुम्भक प्राणायाम से हृदय कमल तत्काल विकस्वर होता है, बल, वृद्धि एवं वायु स्थिर होती है।

प्र.652. प्राणायाम के संदर्भ में कुछ विशेष जानकारी दीजिये।

उ. प्राणायाम का सर्वोत्तम समय ब्रह्म मुहूर्त का है। इसके लिये एकान्त, शान्त एवं निर्मल स्थान का चयन करना चाहिये। उस स्थान को हमेशा पवित्र रखे। यह भी जरूरी है कि वहाँ वायु का संचार अवश्य हो तथा किसी भी अन्य व्यक्ति का प्रवेश निषिद्ध हो क्योंकि विचार एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं।

उस स्थान पर प्रविष्ट होने से पहले मन को चिंता मुक्त कर दो। सारे तनाव, क्रोध-मान-माया लोभ को द्वार पर ही छोड़ने से वह स्थान सकारात्मक, शुद्ध एवं सात्विक ऊर्जा से परिपूर्ण बनेगा। फिर जब कभी हैरान-परेशान हो, तब वहाँ जाओगे

तो मन स्वस्थ बनेगा ।

उस स्थान पर गपशप, शयन आदि न करें । यदि अलग कक्ष की व्यवस्था न हो सके तो इच्छित स्थान पर अभ्यास करें ।

हर अभ्यास पूर्व, उत्तर दिशा में ही करें । चुम्बकीय तत्त्व से परिपूर्ण वायु उत्तर दिशा से प्रसारित होती है । वह शरीर में ऊर्जा, शक्ति एवं आकर्षण बढ़ाती है ।

प्रत्येक ध्यान एवं प्राणायाम के लिये जो समय निर्दिष्ट किया है, उसमें क्रमशः वृद्धि कर सकते हैं ।

हर ध्यान/प्राणायाम के मध्य थोड़ा-थोड़ा विश्राम लेना अच्छा-लाभकारी होता है ।

इनसे मन एकाग्र होगा, शरीर की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी तथा वचन-शुद्धि की प्राप्ति होगी ।

प्र.653. महाराजश्री! प्राणायाम से वायु विजय संभव है पर मनोजेता बनने की बात कहते हैं, वह किस प्रकार संभव है?

उ. मन और पवन का स्थान एक है । जहाँ मन है, वहाँ पवन है और जहाँ पवन है, वहाँ मन है । दोनों क्षीरनीर की भाँति परस्पर एकमेक है । उनकी क्रिया भी समान है । मन का संचरण/अस्थिरता ज्यादा होने पर पवन भी अस्थिर होगा और मन की अचंचलता सिद्ध होने पर पवन भी स्थिर होगा । अतः प्राणायाम के द्वारा शरीरस्थ वायु को सन्तुलित एवं स्थिर किया जाता है और वायु के स्थिर होने पर मन भी संतुलित, चंचलता रहित एवं एकाग्र बनेगा ही । अतः प्राणायाम से मन को सहज ही साधा जा सकता है, इसमें कोई बाधा नहीं है ।



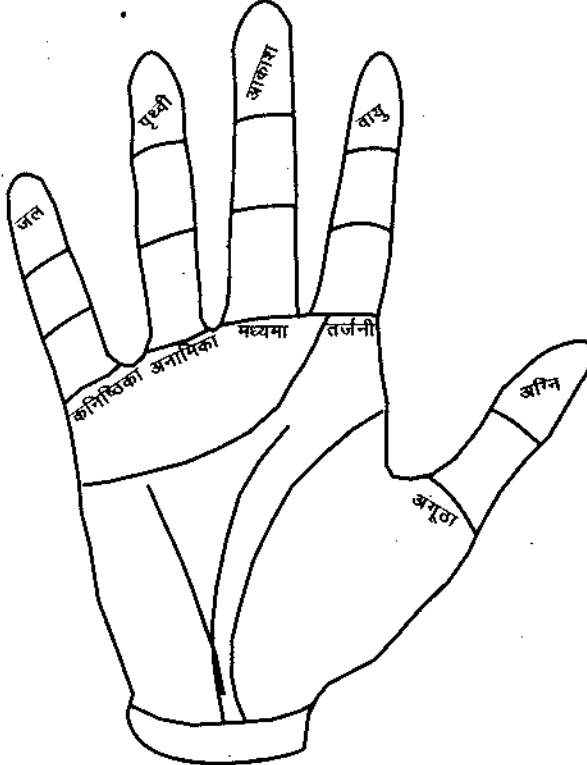
मुद्रा-विज्ञान

प्र.654. मुद्रा क्यों की जाये?

उ. जिस प्रकार ब्रह्माण्ड पांच तत्त्वों से बना हुआ है, उसी प्रकार अपना शरीर भी पांच तत्त्वों से बना हुआ है। ये पाँच महाभूत तत्त्व अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल माने जाते हैं। हमारी पाँचों अंगुलियाँ इन तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती है।

अंगुली के नाम और उनके तत्त्व

Thumb - अंगूठा	अग्नि - Fire-Sun
Index - तर्जनी	वायु - Air-Wind
Centre - मध्यमा	आकाश - Ether
Ring - अनामिका	पृथ्वी - Earth
Little - कनिष्ठिका	जल - Water



हाथ में विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा, विद्युत शक्ति और जीवनी-शक्ति (ओरा) निरंतर चलती रहती है। विभिन्न मुद्राएँ शरीर की चेतना शक्ति को जगाने के लिए रिमोट कंट्रोल के बटन की तरह काम करती हैं।

ज्ञानमुद्रा मानसिक तनाव दूर करके ज्ञानशक्ति बढ़ाती है। पृथ्वीमुद्रा से शारीरिक शक्ति बढ़ती है। शंखमुद्रा से 72000 नाड़ियों पर प्रभाव पड़ता है और स्नायुमंडल सशक्त होता है। सुरभिमुद्रा से वात, पित्त और कफ प्रकृति प्रधान मनुष्य को फायदा होता है।

प्र. 655. मुद्रा करने के सामान्य नियम बताईये।

- उ. 1. पांच तत्त्वों के संतुलन से मनुष्य स्वस्थ रह सकता है। अंगूठे के अग्रभाग पर दूसरी अंगुली के अग्रभाग को रखने से उस अंगुली का तत्त्व बढ़ता है और अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाने से वह तत्त्व कम होता है।
2. मुद्रा का प्रयोग स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध और रोगी-निरोगी कोई भी कर सकता है। बायें हाथ से मुद्रा करने से शरीर के दाहिने भाग पर प्रभाव होता है और दाहिने हाथ से करने से शरीर के बायें भाग पर प्रभाव होता है।
3. मुद्रा करते समय अंगुली और अंगूठे का स्पर्श सहज होना चाहिए। अंगूठे से हल्का दबाव देना चाहिए और दूसरी अंगुली सीधी और एक दूसरे से लगी रहनी चाहिए और हथेली आसमान की ओर रहनी चाहिए। अगर अंगुलियाँ सीधी न रहें तो आरामपूर्वक हो सके, उतनी सीधी रखने की कोशिश करनी चाहिए। धीरे-धीरे बीमारी दूर होने पर अंगुलियाँ सीधी होती जाएगी और मुद्रा भी ठीक से हो सकेगी।
4. कोई भी मुद्रा 48 मिनट तक करने पर शीघ्र लाभदायी होती है। अगर एक साथ करना संभव न हो तो सुबह – शाम 15 – 15 मिनट करके 30 मिनट तक एक मुद्रा करनी चाहिए। सिर्फ वायुमुद्रा भोजन के बाद तुरंत कर सकते हैं, जिससे गैस की तकलीफ दूर होती है। अन्य मुद्राएँ न करें।
5. पृथ्वीमुद्रा और ज्ञानमुद्रा साधक अपनी इच्छा के अनुसार ज्यादा से ज्यादा और लंबे समय तक कर सकते हैं।
6. अन्य किसी भी चिकित्सा के साथ मुद्रा का प्रयोग कर सकते हैं, क्योंकि मुद्रा प्रयोग से चिकित्सा में सहायता मिलती है।
7. मुद्रा करते समय पद्मासन, व्रजासन के प्रयोग से ज्यादा एवं शीघ्र लाभ मिलता है।
8. मुद्रा प्रयोग के समय ऊनी आसन का प्रयोग करना एवं मुख उत्तर अथवा पूर्व दिशा की ओर

रखना उत्तम होता है।

9. ध्यान एवं धार्मिक साधना के समय मुद्रा—प्रयोग से साधना जल्दी फलित होती है, एकाग्रता बढ़ती है।

10. शारीरिक अनुकूलता न होने पर पट्ट, कुर्सी आदि का भी उपयोग किया जा सकता है।

प्र. 656. ज्ञान मुद्रा किस प्रकार करें?

उ. विधि :- तर्जनी के अग्रभाग और अंगूठे के अग्रभाग को मिलाकर, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों को एक साथ सीधी रखने से ज्ञानमुद्रा बनती है।

लाभ :

1. यह मुद्रा मस्तिष्क के ज्ञानतंतुओं को सक्रिय बनाती है जिससे मन शांत होता है और ज्ञान का विकास होता है।
2. इससे मानसिक एकाग्रता, स्मरण शक्ति और प्रसन्नता बढ़ती है।
3. आध्यात्मिकता, स्नायुमंडल की क्षमता और ध्यान में प्रगति होती है।
4. मानसिक रोग जैसे पागलपन, अस्थिरता, अनिश्चितता, उन्माद, बैचेनी, डीप्रेशन, फिट की बीमारी, चंचलता और व्याकुलता दूर होती है।
5. चिन्ता, क्रोध, उत्तेजना, आलस्य, भय जैसे मानसिक तनाव दूर होते हैं।
6. अनिद्रा के रोग में ज्ञानमुद्रा रामबाण उपाय है। जिसे ज्यादा नींद आती हो, उनकी नींद संतुलित होती है। अनिद्रा की पुरानी बीमारी अथवा माइग्रेन जैसे सिरदर्द के लिये ज्ञानमुद्रा और प्राणमुद्रा साथ करनी चाहिए, जिससे शीघ्र लाभ होता है। इस मुद्रा को व्याख्यान और सरस्वती मुद्रा भी कहते हैं क्योंकि इस मुद्रा से स्वयं का चिंतन और पुस्तक का ज्ञान बढ़ता है।

प्र. 657. वायु मुद्रा का विधान बताओ।

उ. विधि — तर्जनी के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाकर अंगूठे से उसके पर हल्का सा दबाव रखते हुए और दूसरी अंगुलियाँ सीधी रखने पर वायुमुद्रा बनती है। वायुमुद्रा वज्रासन में बैठकर करने से तुरंत और ज्यादा लाभ मिलता है।

लाभ :

1. खाना खाने के बाद बैचेनी या गैस की तकलीफ हो तब तुरंत वज्रासन में बैठकर यह मुद्रा करने से राहत मिलती है।
2. वायु के रोग जैसे सायटिका, लकवा (पेरेलिसीस), घुटनों के दर्द में

राहत मिलती है।

3. वातजन्य गर्दन के रोग में अगर बायीं ओर तकलीफ हो तो दाहिने हाथ से और दाहिनी ओर तकलीफ हो तो बायें हाथ से मुद्रा करनी चाहिये।

नोट : यह मुद्रा 30 मिनट तक कर सकते हैं। जरूरत हो तो दिन में दो से तीन बार 15-15 मिनट तक कर सकते हैं। जब दर्द दूर हो जाये और वायु सम हो जाये, तब इस मुद्रा का प्रयोग बंद कर देना चाहिए।

प्र. 658. आकाश मुद्रा किस प्रकार की जानी चाहिये?

उ. विधि— मध्यमा अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाकर शेष तीनों अंगुलियों को सीधी रखते हुए आकाश मुद्रा बनती है।

लाभ :

1. इस मुद्रा से भावधारा निर्मल होती है एवं आत्म शक्ति व स्फूर्ति का विकास होता है।
2. दांत की कोई भी तकलीफ दूर हो जाती है एवं दांत मजबूत बनते हैं।
3. उबासी लेते वक्त अगर जबड़ा जम जाये तो इस मुद्रा से ठीक होता है। कान की बीमारी अगर शून्य मुद्रा से ठीक न हो तो साथ में आकाश मुद्रा भी करनी चाहिये। मुमुक्षु भाव जगाने में यह प्रभावक मुद्रा है।

प्र. 659. शून्य मुद्रा किस प्रकार करें?

उ. विधि— मध्यमा के अग्रभाग को अंगूठे के मूल भाग पर लगाकर उसके ऊपर अंगूठा रखकर हल्का दबाव देकर बाकी की अंगुलियाँ सीधी रखते हुए शून्य मुद्रा बनती है।

लाभ :

कान के दर्द में, कान में सतत आवाज आना, कम सुनाई देना आदि कोई भी बीमारी ठीक न हो तब तक यह मुद्रा निरंतर करनी चाहिये।

5 से 10 मिनट करने से तुरन्त लाभ मिलता है।

नोट :— ऊपर बतायी हुई तकलीफ दूर होने के बाद यह शून्यमुद्रा का अभ्यास भी बंद कर देना चाहिए। श्रवण शक्ति बढ़ती है परन्तु उसका फिल्म संगीत आदि के श्रवण में इस मुद्रा का दुरुपयोग न करके हित शिक्षा सुने।

प्र. 660. पृथ्वी मुद्रा कैसे करें?

उ. विधि—अनामिका अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाकर शेष तीनों अंगुलियाँ तर्जनी, मध्यमा, और कनिष्ठिका सीधी रखकर पृथ्वी मुद्रा बनती है।

लाभ :

1. इस मुद्रा के द्वारा शक्ति, कान्ति और तेजस्विता बढ़ती है। बाजार के किसी भी टॉनिक से यह मुद्रा ज्यादा असरकारक है। इस मुद्रा से आंतरिक प्रसन्नता, स्फूर्ति, स्वस्थता, उदारता और विचारशीलता बढ़ती है और विशाल हृदयी बन सकते हैं।

नोट :- इस मुद्रा से शक्ति बढ़ती है इसलिए बड़ी हुई शक्ति का दुरुपयोग न हो, इस बात का ध्यान रहे।

प्र. 661. आदिति मुद्रा की विधि एवं लाभ बताओ।

उ. विधि — अंगूठे के अग्रभाग को अनामिका के मूल पर रखकर, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका, इन चारों अंगुलियों को एक दूसरे के पास सीधी रखने पर आदिति मुद्रा बनती है। इस मुद्रा में अंगूठा थोड़ा सा तिरछा रहेगा।

लाभ :

- जिन्हें सुबह उठते ही एक बार-बार छींक आती हो या नियमित छींक की तकलीफ रहती हो, उनके लिये यह मुद्रा अत्यन्त लाभप्रद है। उबासी और छींक इस मुद्रा से रोकी जा सकती है।

इस मुद्रा के साथ सत्संग करने से ज्यादा लाभ मिलता है।

प्र. 662. सूर्यमुद्रा कैसे करें?

उ. विधि—अनामिका के अग्रभाग को अंगूठे के मूल पर लगाकर अंगूठे से अनामिका पर हल्का सा दबाव देते हुए शेष अंगुलियाँ सीधी रखते हुए सूर्यमुद्रा बनती है।

पद्मासन या सिद्धासन में करने से ज्यादा लाभ होता है।

लाभ :

1. इस मुद्रा से सूर्यस्वर शुरू होकर अग्नि तत्त्व बढ़ता है, जिसके कफ के हर रोग में यह उपयोगी मुद्रा है। दमा, सर्दी, निमोनिया, टी.बी., प्लुरसी, सायनस और सर्दी में असरकारक है।
2. 5 से 15 मिनट करने से सूर्यस्वर शुरू होता है।

3. थायरॉइड ग्रंथि का स्राव संतुलित होता है।

4. ज्यादा वजन को कम करने में सहायता मिलती है।
6. इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से पाचन शक्ति का विकास होता है।

नोट : ज्यादा दुर्बल शरीर वाले इस मुद्रा का प्रयोग न करें।

प्र.663. प्राण मुद्रा का प्रयोग किस प्रकार करें?

उ. विधि —1. अंगूठे के अग्रभाग पर कनिष्ठिका के अग्रभाग को मिलाकर, कनिष्ठिका के नाखून पर अनामिका का अग्रभाग रखकर, शेष तर्जनी और मध्यमा सीधी रखकर प्राणमुद्रा बनती है।



2. यही मुद्रा करने का दूसरा तरीका :

अनामिका और कनिष्ठिका के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाकर अंगूठे से हल्का सा दबाव देते हुए शेष अंगुलियाँ (तर्जनी और मध्यमा) सीधी रखते हुए प्राणमुद्रा बनती है।

प्राणवायु मुख्यतया नासिका में, मुख में, हृदय में और नाभि के मध्यभाग में होती है।

लाभ :

1. प्राणमुद्रा से प्राणशक्ति का विकास होता है। मेरुदंड सीधा रखते हुए प्राणमुद्रा करने से प्राण ऊर्जा सक्रिय बनकर उर्ध्वमुखी बनती है, जिससे चैतन्य शक्तियाँ उर्ध्वगामी होती है।
2. प्राणमुद्रा शरीर में स्फूर्ति, आशा, उमंग और उत्साह पैदा करती है।
3. शारीरिक तौर से दुर्बल व्यक्ति के लिए यह खास मुद्रा है। इससे इतनी शक्ति पैदा होती है कि कमजोर व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दृष्टि से शक्तिशाली बनकर रोग के संक्रमण से दूर रह सकता है।
4. इस मुद्रा से विटामिन्स की कमी दूर हो जाती है।
5. इससे आँखों की रोशनी बढ़ती है। आँखों की किसी भी बीमारी में लाभदायक है।
6. थकान के समय करने से शरीर में नवशक्ति का संचार होता है।
7. प्राणमुद्रा से भूख—प्यास की भावना लुप्त होती है।
8. एकाग्रता का विकास होता है।

प्र. 664. शंख मुद्रा किस प्रकार करें?



उ. विधि — बायें हाथ के अंगूठे को दाहिने हाथ की हथेली पर रखकर दाहिने हाथ के बाएं अंगूठे सहित मुट्ठी बंद करके, बायें हाथ की तर्जनी के अग्रभाग को दाहिने हाथ के अंगूठे के अग्रभाग को

मिलाकर, बायें हाथ की मध्यमा अनामिका और कनिष्ठिका, दाहिने हाथ की हथेली के पीछे की तरफ दाहिने अंगूठे के पास रखकर शंखमुद्रा बनती है। अंगुलियों के अग्रभाग के मिलने के स्थान में हल्का दबाव देना है। इस मुद्रा का आकार शंख की आकृति जैसा होता है।

लाभ :

1. यह मुद्रा करने से रोग का उपद्रव दूर होता है, अनिष्ट तत्त्वों का विसर्जन होता है और इष्ट तत्त्वों का सर्जन होता है।
2. थॉयराईड रोग दूर होता है।
3. नाभि के पोइन्ट दबने से हटी हुई नाभि अपने स्थान में आती है।
4. हकलाना, तुतलाना आदि वचन संबंधी दोष इस मुद्रा से नष्ट होते हैं।
5. वाणी की मधुरता और वचन की स्पष्टता बढ़ती है।

विशेष : गलत तरीके से करने पर थॉयराईड के स्राव में असंतुलन होने से शरीर अशक्त अथवा स्थूल हो सकता है।

प्र. 665. ध्यान मुद्रा किस प्रकार साधी जा सकती है?

उ. विधि— पद्मासन में बैठकर संभव न हो सके तो सुखासन में बैठकर बायीं हथेली पर दाहिनी हथेली रखकर दोनों अंगूठे एक दूसरे से मिलाकर नाभि के नीचे दोनों हाथ स्थापित करके ध्यान मुद्रा या वीतराग मुद्रा बनती है।

इस मुद्रा में दोनों अंगूठे मिलाने से ऊर्जा उत्पन्न होती है।

लाभ : यह ध्यान में विशेष लाभदायक है।

- (1) इससे चंचलता नष्ट होती है
- (2) आभामण्डल प्रभावशाली और विशुद्ध बनता है।
- (3) अनिष्टकारी तत्त्व साधना में बाधक नहीं बनते हैं।
- (4) आत्मसाक्षात्कार तक पहुँचने में परम सहायक है।

(5) मानसिक शांति, स्वभाव परिवर्तन, वीर्य ऊर्ध्वगमन, सात्विक—चिंतन आदि में यह अत्यन्त उपयोगी मुद्रा है।

प्र. 666. सुरभि (धेनु) मुद्रा किस प्रकार की जाती है?

उ. विधि— नमस्कार मुद्रा में हाथ रखकर, एक हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग को दूसरे हाथ की अनामिका के अग्रभाग से मिलाकर, ऐसे ही एक हाथ की तर्जनी को दूसरे हाथ की मध्यमा के अग्रभाग को

लगा के (सभी अंगुलियाँ एक दूसरे के आमने—सामने मिलती हैं) दोनों अंगूठे एक दूसरे के आसपास रखते हुए सुरभि या धेनुमुद्रा बनती है। इस मुद्रा में गाय के आंचल जैसी आकृति बनने से इसे धेनुमुद्रा कहा जाता है।

लाभ :

1. इसे कामधेनु मुद्रा भी कहा जाता है। जैसे कामधेनु इच्छित फल प्रदान करती है, वैसे सुरभि मुद्रा से इच्छित फल की प्राप्ति होती है।
2. वात, पित्त और कफ की प्रकृति का संतुलन होता है।
3. नाभिकेन्द्र स्वस्थ होता है एवं शरीर तथा पेट संबंधी रोग शांत होते हैं।
4. चित्त की निर्मलता बढ़ती है और योगसाधना में सहयोग मिलता है।
5. ध्यान करने के वक्त यह मुद्रा करने से ब्रह्मनाद (दिव्यनाद) सुनाई देता है। दुन्यवी शोरगुल से दूर होकर इस नाद में लीन रह सकते हैं।



ध्यान - आसन

प्र.667. आसन किसे कहते हैं?

उ. स्थिरता, एकाग्रता और सुख देने वाली, बैठने की विशेष मुद्रा को आसन कहा जाता है। आसन वह है, जिसमें सुखपूर्वक निश्चल होकर अधिकाधिक ध्यान/जाप में बैठा जा सके।

प्र.668. आसन कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उ. आसन के अनेक भेद कहे गये हैं, उनमें भी चौरासी प्रधान तथा प्रसिद्ध हैं। जैसे सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, योगासन, मुक्तासन, वज्रासन, गोदुग्धासन आदि।

अलग-अलग साधना के लिये अलग-अलग आसन उपयोगी होते हैं परन्तु ध्यान सिद्धि के लिये इन सभी आसनों में पद्मासन, स्वस्तिकासन एवं सिद्धासन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।

प्र.669. आसन करने से क्या लाभ हैं?

उ. 1. योगमार्गारूढ साधक को ध्यान में प्रवृत्त व स्थिर होने से आसन की सिद्धि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका

निभाती है।

2. आसन के अभ्यास से राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि आन्तरिक द्वन्द्व तथा भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, थकान, अस्थिरता आदि बाह्य द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं।

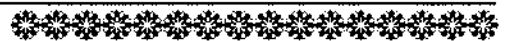
3. आसन-साधना से शरीर हल्का, स्वस्थ एवं स्फूर्ति से परिपूर्ण बनता है।

4. आसन से प्रत्येक नाडी में समुचित रूप से रक्त संचरण होता है। इन्द्रियाँ और नाड़ियाँ आलस व जड़ता से मुक्त होकर चैतन्य शक्ति से युक्त बनती हैं।

प्र.670. आसन कब व कहाँ करें एवं उस समय शरीर की स्थिति कैसी होनी चाहिये?

उ. आसन आत्मा की अनन्त सुषुप्त शक्तियों को प्रकट करते हैं। इनके अभ्यास से तन तंदुरुस्त, मन विकस्वर एवं बुद्धि तीक्ष्ण बनती है।

यदि आसन अविधि, अकाल में किये जाये तो लाभ की बजाय हानि के कारण बन जाते हैं अतः आसन करते



समय निम्नोक्त बातों का विशेष रूप से ध्यान में रखें।

1. भोजन के छह घण्टे बाद अथवा दूध पीने के दो घण्टे बाद आसन कर सकते हैं। खाली पेट आसन करना सर्वोत्तम मार्ग है।
2. आसन करते समय श्वास मुख से न लेकर श्वासन नासिका से ही ग्रहण करें।
3. मेरुदण्ड, सीना आदि सीधे होने चाहिये।
4. जयणापूर्वक कम्बल आदि बिछाकर करें अन्यथा शरीर में प्रवाहित विद्युत्-प्रवाह रुक सकता है।
5. आसन करते समय शरीर के साथ अत्याचार न करें। सहजता से जितना सधे, उतना धैर्य से करें।
6. आसन करते समय आज्ञा चक्र आदि पर ध्यान करने से महान् लाभ मिलता है।
7. आसन ऐसे स्थान में करें, जो प्रकाश युक्त एवं जीवों के उपद्रव से रहित हो, जहाँ स्त्री, नपुंसक, तिर्यच आदि का आवागमन न हो।

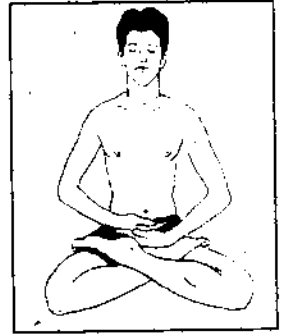
प्र.671. पद्मासन करने का विधि-विधान समझाईये।

उ. पद्मासन को कमलासन एवं

पर्यकासन भी कहा जाता है। इस आसन में पाँवों का आकार पद्म अर्थात् कमल तुल्य होने से पद्मासन कहा जाता है। तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमा पद्मासन में होती है।

विधि—दोनों भृकुटियों के मध्य में जो आज्ञा चक्र है, उस पर ध्यान स्थापित करें। रेचक करते हुए दाहिने पांव को मोड़कर बायीं जंघा पर रखें और बायें पांव को मोड़कर

दाहिनी जंघा पर रखें। ध्यान रहे—घुटने जमीन से लगे रहे। सिर, गर्दन, सीना, मेरुदण्ड



आदि का पूरा भाग सीधा और तना हुआ हो तथा दोनों हाथ दोनों घुटनों पर ज्ञान मुद्रा में स्थापित करें अथवा नाभि के सम्मुख एक दूसरे पर रखें। पाँवों में कदाच झनझनाहट, चित्त में घबराहट हो तब भी अखिन्न मन से अभ्यास जारी रखें। धीरे धीरे आसन सिद्ध हो जायेगा। दृष्टि नासाग्र अथवा भ्रूमध्य में स्थिर रखें। आँखें आधी खुली आधी बंद, अथवा पूरी तरह बंद रख सकते हैं।

इस आसन में ध्यान करें कि आज्ञा

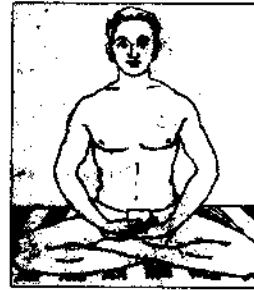
चक्र में स्थित दर्शन केन्द्र उद्घाटित हो रहा है। निम्न केन्द्र में स्थित चेतना (वीर्य) तेज और ओज में परिवर्तित होकर ऊर्ध्वगामी हो रही है।

लाभ—

1. कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य स्वरचित योग शास्त्र में इस आसन के गुणों का कीर्तन करते हुए कहते हैं कि जैसे पंक में उत्पन्न और जल से पोषित कमल वृद्धि को प्राप्त करके उनसे निर्लिप्त (अलग) रहता है, इसी प्रकार साधक पद्म (कमल) आसन को साधकर संसार रूप कीचड़ में उत्पन्न होकर एवं भोग जल से वृद्धि पाकर भी दोनों से मुक्त होकर योग रूप अभ्यास करके आत्मा में स्थित हो जाता है।
2. इस आसन के अभ्यास से खिन्नता, व्याकुलता एवं चंचलता पलायन कर जाती है।
3. नयन की तेजस्विता, मुख की सौम्यता व बुद्धि की तीक्ष्णता बढ़ती है। चित्त उल्लास से भरा रहता है। चिन्ता, शोक आदि नष्ट हो जाते हैं।
4. इस आसन से आत्म विश्वास बढ़ता है। इसका प्रभाव तो यहाँ

तक कहा गया है कि बुरे से बुरे एवं लम्बे से लम्बे सिगरेट, तम्बाकू, गांजा, चरस, अफीम, शराब आदि व्यसन छूट जाते हैं।

5. पक्षाघात, कुष्ठ, दमा, कैंसर, उदर कृमि, त्वचा के रोग, वात-पित्त-कफ आदि बीमारियाँ शान्त हो जाती हैं।
6. मानसिक विकार, कषाय, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, वैर-विरोध आदि रोगों से छुटने के लिये यह आसन अमोघ उपाय है।
7. धातु क्षय में यह उपयोगी आसन



है। इससे स्मरण शक्ति एवं आत्म बल बढ़ता है।

इस आसन की महिमा अपार है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है—

**इदं पद्मासनं प्रोक्तुं, सर्वव्याधिविनाशनम् ।
दुर्लभं येन केनापि, धीमता लभ्यते भुवि ॥**

इस प्रकार सर्वव्याधियों को समाप्त करने वाले पद्मासन की प्राप्ति किसी विरल बुद्धिमान् पुरुष को ही होती है। ध्यान रहे— दुर्बल व्यक्ति पद्मासन न करें अन्यथा विपरीत परिणाम आ सकते हैं।

प्र.672. सिद्धासन किस प्रकार साधा जाता है?

उ. अलौकिक शक्तियों/सिद्धियों को प्रदान करने में समर्थ होने इस आसन को सिद्धासन कहते हैं। जिस प्रकार व्रतों में ब्रह्मचर्य श्रेष्ठ है, उसी प्रकार आसनों में सिद्धासन श्रेष्ठ है। इसे सिद्धिप्रिय योगियों का आसन कहा गया है।

विधि— बायें पांव की एडी को योनि के मध्य जिसे सीवन स्थान कहा जाता है, वहाँ लगायें। गुदा और जननेन्द्रिय के मध्य का भाग योनि कहलाता है। उस स्थान को एडी से दबाकर रखें। तथा दाहिने पांव की एडी को



जननेन्द्रिय की जड़ में लगावे और नेत्रों को अचल दृष्टि से आज्ञा चक्र में स्थापित करें।

श्वासोच्छ्वास स्वाभाविक, आँखें

खुली हो चाहे बन्द, हाथ नाभि के सम्मुख उपर—नीचे, चित्त शान्त! परम मौन और निर्विचार! कोलाहल रहित प्रशान्त वायुमण्डल! स्वच्छ स्थान! उत्तम दिशा! ढीले वस्त्र।

लाभ—इस आसन से नाडियों का शुद्धिकरण, नियमित पाचन—क्रिया, एकाग्र मन, प्राणों का उर्ध्वारोहण, वीर्य रक्षण एवं ब्रह्मचर्य पालन में यह आसन विशेषोपयोगी है। इस आसन से स्वप्न दोष का निवारण हो जाता है। दिव्यशक्ति, मेधा विकास, मानसिक एकाग्रता आदि जो गुण पद्मासन से प्राप्त होते हैं, वे इस आसन से भी मिलते हैं।

विद्यार्थी लिये यह उत्तम आसन है। इस आसन में बैठकर जो भी पढा जाये, वह शीघ्र ही कंठस्थ होता हुआ दीर्घावधि पर्यन्त स्मृति में बना रहता है। इस आसन को सामान्य व्यक्ति न करें अन्यथा विपरीत परिणाम हो सकते हैं।

प्र.673. स्वास्तिकासन किसे कहते हैं?

उ. स्वस्ति अर्थात् मंगल और शुभ करने वाला। इसे मूलासन भी कहा जाता है। समस्त आसनों में सुगम स्वस्तिकासन कल्याणकारी और शान्तिप्रदायक है।

विधि— दोनों ओर के जानु (घुटने) और जंघा के मध्य दोनों पांवों के तलवों को रखकर स्थिर होने वाला आसन स्वस्तिकासन है। शेष बातें पूर्ववत् जान लेनी चाहिये। ध्यान

रहे—इस आसन में बायां पांव नीचे
और दायां पांव उपर रहे तथा दोनों
हाथ नाभि के सामने उपर—नीचे ।

लाभ—

1. मोक्षार्थी जीवों के लिये यह उत्तम

आसन है ।

2. इस आसन में बैठने से
आलस / प्रमाद दूर होता है ।
3. हर व्यक्ति सहजतया इस आसन
को साध सकता है ।



बन्ध, नाडी और चक्रों का वर्णन

प्र.674. तीन प्रकार के बंध कौनसे हैं?

- उ. (1) मूलबन्ध (2) उड्डीयान बंध
(3) जालन्धर बन्ध।

प्र.675. मूल बंध किस प्रकार किया जाता है?

- उ. एडी से गुदा और जननेन्द्रिय के मध्य का भाग, जिसे सीवन या योनि कहते हैं, उसे दबाना और गुदाद्वार को संकुचित करते हुए (भीतर की ओर खींचते हुए) किया जाने वाला मूलबंध कहलाता है।

लाभ— इस बंधन—विधान से बिगडते स्वास्थ्य की रक्षा, शरीर में नयी शक्ति का संचार, वीर्य की पुष्टि एवं जठराग्नि का प्रदीप्तिकरण होता है। बालों का श्वेत होना और वीर्य का विनाश रूक जाता है।

अपान वायु ऊर्ध्वगति पाकर प्राणवायु के साथ सुषुम्ना में प्रविष्ट होती है, जिससे अनहद आनंद का कोष खुल जाता है। इस बंध से यहाँ तक कि बुढ़ापे को भी जीता जा सकता है।

प्र.676. उड्डीयान बंध किसे कहते हैं?

- उ. सम्पूर्णतया रेचन करके पेट को इस

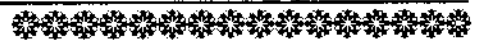
तरह भीतर खींचे कि वह पीठ से लग जाये और शरीर को थोडा आगे झुकाये, यह उड्डीयान बंध की विधा है।

लाभ—इस बंध से ब्रह्मचर्य पालन तथा कब्ज रोग का विनाश होता है और पेट की अनावश्यक चर्बी नष्ट हो जाती है।

प्र.677. जालन्धर बन्ध किसे कहते हैं?

- उ. पद्मासन में स्थित होकर पूरकपूर्वक कुम्भक करके टुड्डी को झुकाकर सीने के साथ लगाना जालन्धर बन्ध कहलाता है।

लाभ— इसके अभ्यास से कंठ संबंधी समस्त रोग दूर हो जाते हैं, प्राणों का व्यवस्थित संचरण होता है तथा इडा, पिंगला नाडी बंद होकर प्राण, अपान सुषुम्ना में प्रविष्ट होता है। इस आसन में बैठकर सम्पूर्ण श्वास निकालकर मूल व उड्डीयान बंध करना। बाद में पूरक और कुम्भकपूर्वक जालन्धर बंध करके ऊँकार अथवा इष्ट देव के मंत्र का जाप करने से विकारों का विनाश, चित्त की स्वस्थता, शोक—रोग से



मुक्ति एवं आत्म स्वरूप का दर्शन होता है।

प्र.678. इडा, पिंगला एवं सुषुम्ना को समझाईये।

उ. प्राणों को वहन करने वाली बारीक नलिकाओं को नाड़ी कहते हैं। तन्दुलवेयालिया सूत्र में करोड़ों नाडियाँ कही हैं, अन्य धर्मावलम्बी 72000 नाडियाँ मानते हैं, फिर भी साढ़े तीन करोड़ रोमावली सर्वमान्य है। शरीर में इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू, शंखिनी, ये दस नाडियाँ मुख्य हैं। इनमें भी प्रथम तीन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी उत्पत्ति आज्ञा चक्र से हुई है और सहस्रार चक्र व मेरु से होती हुई गुह्य स्थान से होकर नाभि के केन्द्र में मिल गयी हैं।

शरीर में मेरुदण्ड के दक्षिण (दायीं) दिशा में पिंगला और वाम (बायीं) दिशा में इडा नाड़ी है। इन नाडियों के मध्य में सुषुम्ना (सुखमना) नाड़ी है।

जब बायां स्वर (श्वास) चले तब चन्द्र का उदय एवं दायां स्वर (श्वास) चले तब सूर्य का उदय जानना चाहिये। दोनों स्वर (श्वास) चलने पर सुषुम्ना

जानना चाहिये। इनका विस्तृत वर्णन अन्य ग्रन्थों से एवं गुरुगम से जानना चाहिये।

प्र.679. मूलाधार आदि चक्रों को समझाईए।

उ. चक्र आध्यात्मिक ऊर्जा के केन्द्र हैं। ये सूक्ष्म शरीर में होने से चर्मचक्षु से दिखते नहीं हैं। अतः स्थूल शरीर में स्थित स्नायु केन्द्र, ज्ञान तन्तु आदि से इनकी साम्यता घटित करते हुए इनका कथन किया जाता है। ऐसे सात चक्र हैं।

1. मूलाधार चक्र — गुदा से दो अंगुल उपर और मेरुदण्ड के अन्तिम मणके पास स्थित चक्र को मूलाधार कहा जाता है। इसे गणेश चक्र भी कहा जाता है। इसका रक्त वर्ण कहा गया है।

इस चक्र का ध्याता एक वर्ष के अन्दर-अन्दर नहीं पढे हुए क्लिष्टतम शास्त्रों और उनके रहस्यों को आत्मसात् करता है। उसके सम्मुख सरस्वती नृत्य करती है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र — पीतमयी उष्मा से युक्त रक्तवर्णीय यह चक्र जननेन्द्रिय के मूल में स्थित है।

इसके ध्यान से व्यक्ति कवि बनता है।

3. **मणिपुर चक्र** — नाभिकेन्द्र में स्थित मणिपुर चक्र सूर्य के समान प्रकाशित है। इसके ध्यान से स्वर्ण सिद्धि आदि लब्धियाँ प्राप्त होती हैं एवं देव दर्शन सुलभ होते हैं।
4. **अनाहत (अनहद) चक्र** — रक्तवर्णीय अनाहत चक्र हृदय में स्थित है, जिसके ध्यान से निरंजन, निराकर आत्म स्वरूप का दर्शन होता है।
5. **विशुद्धि चक्र** — धुँएँ के समान

वर्ण वाले कण्ठ में स्थित इस चक्र को साधने वाला शास्त्र ज्ञाता, योगी— शिरोमणि बनता है।

6. **आज्ञा चक्र** — दोनों भृकुटियों के मध्य में स्थित श्वेत वर्ण वाले आज्ञा चक्र के ध्यान से मन की चंचलता नष्ट होती है, व्यक्ति युग पुरुष बनता है।
7. **सहस्रार चक्र** — मस्तिष्क में चोटी के स्थान में स्थित सहस्रार चक्र के ध्यान से व्यक्ति तेजस्वी बनता है।



1. अगुरुलघुत्व — जो भारीपन और हल्केपन, दोनों से मुक्त हो। सिद्ध परमात्मा के आठ गुणों में से एक गुण।
2. अतिशय — चमत्कार, विशिष्ट, प्रभाव।
3. अध्यवसाय— मन के विचार, परिणाम।
4. अनादि — जिसका प्रारंभ न हो।
5. अनुश्रुति — परम्परा से सुनी जा रही बात।
6. अमक्ष्य — जो पदार्थ खाने योग्य न हो।
7. अभिगम — दर्शनार्थ जाते समय जिन पांच बातों का ध्यान रखा जाये।
8. अमनोज्ञ — अप्रिय, जो मन को अच्छा न लगे।
9. अममत्व — मोह—राग रहित।
10. अरति — संसार के भोग प्राप्त नहीं होने पर या प्राप्त भोग—उपभोग के साधनों का वियोग होने पर दुःख की अनुभूति।
11. अर्जुन — श्वेत वर्ण।
12. अवगाहना— जैन दर्शन में शरीर की ऊँचाई (Height) को अवगाहना कहते हैं।
13. अविनाभावी— जो तत्त्व जो एक दूसरे के बिना नहीं रहते हो। जैसे जीव तत्त्व के बाहर जीवात्मा (आत्मा) नहीं होती।
14. असंयती — असंयमी।
15. असंख्य — जिसे संख्या में अभिव्यक्त नहीं किया जा सके।
15. आदान — ग्रहण करना।
16. आमलक— आवला।
17. आश्रव — कर्मों के आने का द्वार।
18. उत्कृष्ट — सर्वाधिक (Maximum)

19. उदरशूल – पेट दर्द ।
20. एषणीय – एषणा (याचना) के योग्य ।
21. कल्पनीय – आचार के योग्य ।
22. कल्याणक – कल्याण करने वाला ।
23. कालातिक्रम – जिसका जो समय है, उससे अधिक हो जाना ।
24. काष्ठ – लकड़ी ।
25. गन्तव्य – जाने योग्य, जहाँ पहुँचना है, वह स्थान ।
26. ग्राह्य – ग्रहण करने योग्य ।
27. छद्मस्थ काल – दीक्षा से केवलज्ञान होने के मध्य का काल ।
28. जघन्य – कम से कम (Minimum)
29. जंघाचारण – ऐसे मुनि, जो जंघाओं पर हाथ रखकर आकाश में विचरण करते हैं ।
30. त्रियोग – मन, वचन और काया रूप तीन योग ।
31. द्वय – दो
32. धर्मास्तिकाय – छह द्रव्यों में से एक ।
33. ध्यातव्य – ध्यान देने योग्य ।
34. नववाड – ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये नौ प्रकार के नियम ।
35. निक्षेपण – रखना ।
36. निदान – धर्म के बदले में संसार की याचना । जैसे द्रौपदी ने पूर्वभव में याचना की थी ।
37. निरवद्य – हिंसा रहित ।
38. निर्मद – अभिमान रहित ।
39. निर्वाण – मोक्ष ।
40. निर्वेद – वैराग्य ।
41. पल्य – जैन दर्शन में काल गणना का एक मापदण्ड । असंख्य वर्षों की कालावधि ।
42. परठना – गिराना, छोड़ना, त्याग देना ।
43. परिणमनशील – बदलने वाला ।



44. परीषह – कष्ट
45. पर्युपासना— हर तरह से सेवा, पूजा, सत्कार, उपासना ।
46. पर्षदा – सभा ।
47. प्रच्छन्न – छिपा हुआ ।
48. प्रत्याख्यान— पच्चक्खाण, नियम, मर्यादा ।
49. प्रमाद – यथासमय में कार्य आदि न करना और असमय में करना ।
50. प्रर्माजना – अच्छी तरह देखना, साफ करना । जैन मुनि आसन आदि बिछाने से पहले और किसी भी पदार्थ को रखने से पहले रजोहरण, डंडासने से भूमि स्वच्छ करते हैं ताकि किसी भी जीव की हिंसा न हो ।
51. प्रव्रज्या – दीक्षा ।
52. प्रासुक – जीव रहित भोजन—सामग्री ।
53. भण्डमत्त— भाण्डोपकरण, बर्तन ।
54. मत्सरता— ईर्ष्या, जलन ।
55. मिथ्यात्व— गलत धारणा, विपरीत समझ ।
56. यथाख्यात— तीर्थकरों ने जैसा कहा, वैसा चारित्र ।
57. युगलिक— एक साथ जन्म लेने वाला नर—नारी युगल ।
59. रज्जू – लोक चौदह रज्जू प्रमाण है । असंख्य योजन का एक रज्जू । माप का एक भेद ।
60. रति – सांसारिक भोगों में आनंद का भाव ।
61. लौहपिण्डाग्नि— लोहे को जब बहुत तपाया जाता है तब लोहा अग्नि—वर्ण का हो जाता है यानि लोहा और अग्नि एकाकार हो जाते हैं ।
62. वर्ज्य – छोड़ने योग्य ।
63. वलय – गोल ।
63. वाचना. – देशना, प्रवचन, व्याख्यान ।
64. विजातीय – विपरीत जाति वाला जैसे, स्त्री के लिये पुरुष और पुरुष के लिये स्त्री ।
65. वेदत्रिक – पुरुष वेद, स्त्री वेद, नपुंसक वेद, इन तीनों को एक साथ बताने वाली संज्ञा ।

66. वेयावच्च – सेवा, वेयावृत्य ।

67. विद्याचरण— वे मुनि, जो विद्या से आकाश में विचरण करते हैं ।

68. विमूषा – शृंगार ।

69. विराधना – हिंसा ।

70. सज्जाय – स्वाध्याय ।

71. समवसरण— जहाँ तीर्थकर देशना देते हैं, देवनिर्मित वह पावन स्थान ।

72. संपातिम – उडने वाले छोटे जीव यथा मच्छर आदि ।

73. सागरोपम— जिसे सागर की उपमा दी गयी है, ऐसा असंख्य वर्षों का काल ।

74. सावद्य – हिंसाजन्य ।

75. हनन – विनाश ।

76. क्षयोपशम— कर्म के कुछ अंशों में क्षय से और कुछ अंशों में शमन से होने वाली प्रक्रिया ।



मुनि श्री मनिताप्रभासागरजी म.

- जन्म : मोकलसर, 26 अगस्त 1979
जन्म नाम : अशोक कुमार लूंकड़
पिता : श्री बाबूलालजी लूंकड़
माता : सौ. कमलादेवी लूंकड़
दीक्षा : मोकलसर पौष शुक्ला
तृतीया 16 जनवरी 2002
गुरुदेव : पू. उपाध्याय प्रवर
: श्री मणिप्रभासागरजी म.सा.

परिवार से दीक्षित :

- पू. उपा. श्री मणिप्रभासागरजी म.सा.-भाई म.
पू. माताजी म. रतनमालाश्रीजी म.सा.-ताई म.
पू. सा. डॉ. विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा.-बहिन म.
पू. सा. डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.सा.-जीजी म.

व्यवहारिक शिक्षण - जयनारायण व्यास युनिवर्सिटी जोधपुर से प्रथम श्रेणी में एम. कॉम एवं जैन विश्वभारती युनिवर्सिटी लाडनूं से प्रथम श्रेणी में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण। संप्रति पंचलिंगी प्रकरण पर शोधरत। जैन ग्रन्थों, आगमों एवं वृत्तियों के अभ्यासी। तत्त्वज्ञान में जीव एवं कर्म पदार्थका तलस्पर्शी अध्ययन।

विशेष - संयम के प्रति प्रतिक्षण जागरुक, प्रतिपल अध्ययन-चिन्तन-लेखनरत। तत्त्वज्ञान की विशेष अभिरुचि। लेखन-वक्त्वकला में अनोखी छटा।

लेखन - जैन जीवन शैली, प्यासा कंठ मीठा पानी, खुशबू कहानियों की, गच्छ गौरव गाथा, दस महाश्रावक, जीव विचार सार्थ-प्रश्नोत्तरी, दण्डक प्रकरण सार्थ-प्रश्नोत्तरी, प्रत्याख्यान भाष्य अर्थ-प्रश्नोत्तरी, पथम कर्म गन्था सार्थ-प्रश्नोत्तरी, प्रवाह (दो भाग) लाईफ मेनेजमेंट, श्रावकाचार, प्रिय-मधुर कहानियाँ आदि लेखन के साथ अनेक पुस्तकों का संपदन।

जैव जीवव शैली

Jain Life Style यानि Whole Life Smile

‘जैव जीवव शैली’ मात्र पुस्तक नहीं अपितु...

- अंधेरे में दीप जलाने वाला गुरु है।
- दुःख में धीरज देने वाला दोस्त है।
- भटकते कदमों को अनुशासित करने वाला पिता है।
- उदासी के क्षणों में खुशी बरसाने वाली माँ है।
- यह राह भी है और हमराही भी।
- यह सकारात्मक सोच देती है तो पुरुषार्थ की पूंजी भी।

Best Life Style की Bright Smile को सजाकर रखिये :-

- घर की मेज पर
- दुकान की रैंक में
- किताबों के शो-केस में
- पुस्तकालय और वाचनालय में
- मन के स्टेज पर
- सामायिक के बेग में
- यात्रा के सुटकेस में
- अन्तःकरण और आचरण में

इस Life Style को भेंट में दीजिये :-

- ✦ जन्मदिन के उपहार में
- ✦ प्रभावना और पुरस्कार में
- ✦ विवाह दिन की बधाई में
- ✦ ज्ञानशाला और संस्कारशाला में